भारवि

किरातार्जुनीयम्

चन्द्रपाल यादव

द्वितीयः
सर्गः

रामनारायण लाल बेनीमाधव

5

महाकवि भारवि प्रणीतं

किरातार्जुनीयम्

द्वितीयः सर्गः

(मल्लिनाथ कृत घण्टापथ संस्कृत टीका, अन्वय, हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद, संस्कृत-भावार्थ, वाच्य-परिवर्तन, शब्दार्थ, व्युत्पत्ति, सामास-विग्रह आदि सहित प्रामाणिक संस्करण)

Chandrapal Yadav
Nov 1979.

प्रणेता

श्री बद्रीनाथ मालवीय

अध्यक्ष, संस्कृत-हिन्दी विभाग
दा० ना० जैन महाविद्यालय
जबलपुर

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya ★ Bharatiya Vidya
580

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीमाधव

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

२, कटरा रोड, इलाहाबाद–२

तीय संस्करण] १९६६ [मूल्य १ रु० २५ पैं०

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद

द्वितीय संस्करण
२ अप्रैल १९६६

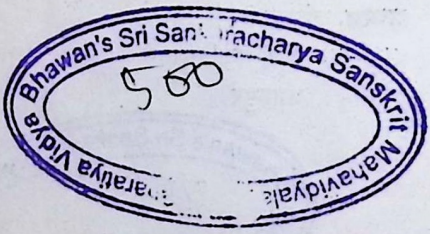

मुद्रक
विजय कुमार अग्रवाल
नव साहित्य प्रेस
इलाहाबाद

निवेदन

कुछ समय पूर्व 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य का प्रथम सर्ग प्रस्तुत किया जा चुका है। प्रथम सर्ग की भूमिका में भारवि के स्थिति-काल एवं कवित्व-शैली पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। इसके अतिरिक्त काव्य के विकास का भी ज्ञान कराया गया है। इस द्वितीय सर्ग की भूमिका में 'किरातार्जुनीयम्' के कथानक का उसके मूलस्रोत महाभारत की कथा से तुलना की गई है तथा आवश्यकतानुसार कवि ने जो परिवर्तन किये हैं उनका भी विवेचन है। प्रथम सर्ग के समान इसमें भी मल्लिनाथ, अन्वय, हिन्दी अनुवाद, अंग्रजी अनुवाद, संस्कृत भावार्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी विशद रूप से संवलित है। पुस्तक के अन्त में परीक्षोपयोगी प्रश्न भी दे दिये गए हैं। यदि छात्रों के मध्य इसका समादर हुआ जिनके लिए यह विशेष रूप से लिखी गई है, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत विभाग
दा० ना० जैन महाविद्यालय, जबलपुर

बद्रीनाथ मालवीय

विषय-सूची

काव्य का विकास	...	१
काव्य का स्वरूप	...	८
भारवि का जीवनवृत्त	...	१३
रवि का स्थितिकाल	...	१७
किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व	...	१९
किरातार्जुनीयम् का कथानक	...	२४
महाभारत की कथा से किरात में भारवि कृत परिवर्तन	...	३१
भारवि की काव्य-प्रतिभा	...	३३
भारवि तथा माघ	...	४३
संस्कृत साहित्य में भारवि का स्थान	...	४६
किरातार्जुनीयम् का प्रथम सर्ग	...	४९
किरात के द्वितीय सर्ग का कथानक	...	५२
द्वितीय सर्ग की सूक्तियाँ	...	६१
किरातार्जुनीयम् द्वितीयः सर्गः	...	१

॥ श्रीः ॥

आमुख

काव्य का विकास

भारतीय काव्य का जन्म सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ है। इसका अनुशीलन सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक है। स्वयं वैदिक ऋचाओं में उत्कृष्ट कोटि का काव्यत्व मिलता है। वेदों में देवस्तुतियों के अतिरिक्त तत्कालीन उदार राजाओं की कीर्ति भी गाई गयी है। वैदिक सूक्तियों में नाराशंसियों तथा प्रशस्तियों का उल्लेख पाया जाता है जिसमें अपने स्वामी की प्रशंसा में रचयिता लोग अतिशयोक्ति से काम लेते थे। ऋग्वेद[1] में श्यावाश्य ऋषि ने अपने आश्रय-दाता राजा तथा उनकी रानी के दान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस प्रकार प्रशस्तिकर्त्ताओं के पारितोषिक पाने का वर्णन अनेक स्थलों पर [illegible] जाता है। अथर्ववेद के काण्ड २० में महाराज परीक्षित के शासन में प्रजा के अत्यन्त सुखो तथा धनधान्य से परिपूर्ण होने का वर्णन किया गया है। संहिता तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनेक यशस्वी राजाओं की कथाएँ हैं जिनकी वीरता एवं दानशीलता का मुक्त-कण्ठ से गान किया गया है। उपनिषदों से ज्ञात होता है कि राजाओं के आश्रय में दार्शनिकों के शास्त्रार्थ होते थे जिसमें सफलता पाने वाले को पुरस्कृत किया जाता था। राजाओं को अपने तथा अपने वंशानुकीर्तन सुनने में आनन्द आता था। वे स्तुतिकर्त्ता को उत्साहपूर्वक पारितोषिक देते थे। संस्कृत में लोककथा अर्थात् राजकुमारों और उनके साथियों के व्यावहारिक जीवन का वर्णन शिक्षा देने के उद्देश्य से सरल भाषा में लिखने की प्रथा थी जिससे काव्य के विकास में सहायता मिल सकी। पौराणिक काव्य की सरलता से भी इस दिशा में प्रोत्साहन मिला। शैली में उत्कृष्टता लाने के लिए प्रेममय गीतिकाव्य के लेखकों ने जटिल छन्दों में रचना की जो

१—ऋग्वेद ५।६१

पौराणिक काव्य के लिए उपयुक्त नहीं थे। वैदिक कवियों ने उषादेवी को तुलना एक सुन्दरी नर्तकी अथवा प्रेमी के लिए वक्षःस्थल प्रदर्शित करने वाली कुमारिका से की है। कविकुलगुरु कालिदास ने अपने विक्रमोर्वशीय नाटक की रचना ऋग्वेद में आये हुए उर्वशी-पुरुरवा के संवाद के आधार पर की है। निम्नोद्धृत मन्त्र की उपमाओं का अश्वघोष एवं कालिदास की उपमाओं से साम्य द्रष्टव्य है :—

सूर्यस्येव वक्षयो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवेवः ॥

अर्थात् इन ऋषियों का तेज सूर्य के तेज के समान, महिमा समुद्र की गहराई के समान अगाध और बल वायु के वेग के समान है।

अश्वघोष नन्द का वर्णन अपने महाकाव्य 'बुद्धचरित' में इस प्रकार करते हैं—'दीर्घबाहुर्महावक्षः सिंहांसो वृषभेक्षणः'।

अर्थात् दीर्घ भुजाओं वाला, महान् वक्षवाला, सिंहांस तथा वृषभ के समान बड़े-बड़े नेत्रों वाला।

कालिदास 'रघुवंश' में दिलीप के संबंध में कहते हैं :—

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महीभुजः ।

मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने ईसा से पूर्व एवं पश्चात् कुछ सदियों तक संस्कृत-काव्य का अन्धकार युग माना है। उनका कथन है कि उस समय ग्रीक, पार्सियन एवं शक जातियों के प्रबल आक्रमण के कारण भारत का वातावरण एकदम क्षुब्ध हो गया था। काव्य के पनपने के लिए शान्ति अपेक्षित होती है अतः गुप्त-साम्राज्य के उदय होने के पूर्व तक कविता का अभाव था, परन्तु इतिहास के साक्ष्य पर यह बात निराधार एवं निर्मूल सिद्ध होती है। शक राजा संस्कृत के उन्नायक थे न कि ध्वंसक। शकों ने भारतीयता स्वीकार कर अपना नाम भारतीय रखा तथा भारतीय कला एवं धर्म को आश्रय दिया। कुशान राजाओं में कनिष्क, हुविश्क और वासुदेव हुए हैं। कनिष्क

की राज्य-सभा में प्रमुख विद्वान् थे, जिनमें प्रसिद्ध कवि अश्वघोष तथा आयुर्वेद विज्ञान के प्रणेता चरक का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वासुदेव के नाम से ही स्पष्ट है कि बाद वाले कुषाणवंशी राजा हिन्दू धर्म की ओर झुके हुए थे। उनके सिक्कों पर शिव और नन्दी की प्रतिमाएँ अंकित हैं जो उनके परम माहेश्वर होने का द्योतक है। इन शकों के ही कारण १५० ईसवी में संस्कृत राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो गयी।

जैसा पहले कहा जा चुका है कि रामायण और महाभारत ही संस्कृत काव्यों के अक्षय स्रोत हैं तथा संस्कृत गीतिकाव्यों का मूलाधार श्रीमद्भागवत की मनोरम गीतियाँ हैं। रामायण के बालकाण्ड में काव्यरसों का उल्लेख पाया जाता है :—

रसैः शृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभिः रसैर्युक्तं.....

किन्तु कुछ विद्वान् इसे प्रक्षिप्त मानते हैं। संभव है कि यह प्रामाणिक न हो पर क्रौञ्चवधजनित शोक में उसके उदय होने की बात बहुत प्राचीन समय से चली आती है। एक व्याध ने क्रौञ्चमिथुन में से एक (नर) का वध कर दिया। इस पर क्रौंची अत्यन्त क्षुब्ध होकर विलाप करने लगी। उसकी विरह-कातर दशा ने आदि कवि वाल्मीकि के हृदय में वेदना का संचार किया 'निशम्य रुदतीं क्रौंचीमिदं वचनमब्रवीत्' इस प्रकार क्रौंची को विलाप करते देख उनका हृदयोद्गार निम्न श्लोक-रूप में प्रस्फुटित हुआ :—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

अर्थात् हे निषाद, क्रौंचमिथुन में से एक (नर) का वध करने से वर्षों तक तुम्हारी प्रतिष्ठा नहीं होगी। कवि ने स्वयं कहा है :—

शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोकः भवतु नान्यथा।

दूसरों ने भी इसे कवितारूप में स्वीकार किया है। यह श्लोक ही काव्य का बीज है, इसी से वाल्मीकि आदिकवि कहे जाते हैं तथा हमारे आदिकाव्य

का जन्म ही करुण रस में हुआ। इसका उल्लेख कालिदास ने 'रघुवंश'[१], भवभूति न 'उत्तररामचरित'[२] तथा आनन्दवर्धनाचार्य ने 'ध्वन्यालोक'[३] में किया है।

रामायण में विकसित शैली के दर्शन होते हैं। उसकी भाषा की एक-रूपता तथा छन्दोविषयक परिपूर्णता द्रष्टव्य है। रामायण में ऋतुओं, पर्वतों, नदियों, यज्ञ, सन्ध्या, रजनी, विवाहादि का वर्णन अत्यन्त ही हृदयग्राही हुआ है तथा 'हर्षोत्फुल्लनयनः लोचनाभ्यां पिवन्निव, स्निग्धगंभीरघोष एवं फेननिर्मलहासिनी' आदि उपमाओं का बड़ा सुन्दर प्रयोग पाया जाता है जिनका उपयोग परवर्त्ती कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है। आचार्यों ने रामायण के आधार पर ही महाकाव्य के लक्षणों का उल्लेख किया है ऐसा अनुमान किया जा सकता है। रामायण का झुकाव कामोद्दीपक वर्णनों की ओर नहीं है उसकी शैली गंभीर और गौरवयुक्त है। परवर्ती काव्य उसकी भाषा और छन्दोरचनापद्धति से पूर्णतया प्रभावित हैं। महाभारत के अन्तर्गत विषयों से परवर्ती कवियों को अपनी कृतियों के लिए अनन्त सामग्री मिली है।

महाभाष्य के प्रमाण से सिद्ध होता है कि संस्कृत साहित्य का सृजन १५०ई० पू० से पहले हुआ था। पतञ्जलि ने पाणिनि के विवादग्रस्त सूत्रों की विशद व्याख्या की है। पाणिनि के नाम से ललित पद्य सूक्तिग्रन्थों, कोशग्रन्थों

१—निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।

—रघुवंश १४।२७॥

२—अथ स ब्रह्मर्षिरेकदा माध्यन्दिनसवनाय नदीं तमसामनुप्रपन्नः। तत्र युग्मचारिणोः क्रौंचयोरेकं व्याधेन विध्यमानं ददर्श। आकस्मिकप्रत्यवभासां च देवीं वाचमव्यक्तानुष्टुभेन छन्दसा परिणतामभ्युदैरयत्।

—उत्तररामचरित।२।४ के बाद गद्य।

३—काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौंचद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥

—ध्वन्यालोक १।५

तथा अलंकार शास्त्रीय पुस्तकों में उद्धृत किये गये हैं। कुछ विद्वान्, पाणिनि को कोरा वैयाकरण मानते हैं और कहते हैं कि काव्य-प्रणेता पाणिनि कोई अन्य हैं पर अन्य विद्वानों का मत है कि पाणिनि वैयाकरण होते हुए भी सरस-हृदय थे तथा हृदयग्राही काव्य रचने की उनमें क्षमता थी। सदुक्तिकर्णामृत में विशिष्टकवि-प्रशंसा में उद्धृत एक पद्य[1] में सुबन्धु, कालिदास, भारवि, भवभूति के साथ दाक्षीपुत्र[2] (पाणिनि) का भी उल्लेख है। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में यह विशेषण पाणिनि के लिए प्रयुक्त किया है। कतिपय विद्वान् उनको महाकाव्य का प्रणेता मानते हैं कहीं महाकाव्य का नाम 'जाम्बवती जय' है तो कहीं 'पातालविजय'। पाणिनि की कविता मधुर तथा सरस है। उत्प्रेक्षादि अलंकारों की छटा अवलोकनीय है तथा प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अतीव हृदयग्राही है। पतञ्जलि ने भी कृष्ण द्वारा कंसवध और विष्णु द्वारा वलिबन्धन के उल्लेख से अपने पौराणिक काव्य के ज्ञान का परिचय दिया है। महाभाष्य में ऐसे पौराणिक कथावाचकों के नाम उद्धृत किये गये हैं जो अपनी कथाओं को प्रातःकाल तक सुनाते थे। पतञ्जलि के साक्ष्य का समर्थन पिङ्गल के छन्दःसूत्र से भी होता है। इस ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्द प्रायः प्रेयसी के विशेषण के रूप में (कुटिलगति, चारुहासिनी) अथवा कवि द्वारा पशुजीवन के निरीक्षण से संबद्ध (यथा अश्वललित, शार्दूलविक्रीडित) हैं।

वास्तव में संस्कृत-साहित्य के इतिहास के लेखक के अभाव में काव्य-परंपरा के अविच्छिन्न रूप से जारी रहने के क्रम का पता नहीं चलता। कालिदास, भारवि आदि के पूर्व कवियों की कृतियों तथा उनके नाम भी विस्मृत हो गये होंगे। हस्तलिखित पुस्तकें भी सुरक्षित न रह सकीं। संभव है, छोटे कवियों के नाम भी विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गये। अनेकानेक ग्रन्थों के नष्ट हो

१—सुबन्धौ भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिश्चन्द्रोऽपि हृदयम्।
विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिर-
स्तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते॥

२—सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः। (महाभाष्य १।१०२)

जाने पर असन्दिग्धरूप से कहा जा सकता है कि ईसा के २०० वर्ष पूर्व से २०० ई० तक के समय में काव्य का विकास चालू था। शिलालेखों के अध्ययन से भी संस्कृत-साहित्य के विकास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। शक महाक्षत्रप रूद्रदामन् का गिरनार शिलालेख उत्कृष्ट गद्यकाव्य का एक नमूना है। उसमें पौराणिक काव्य की सरल शैली से महाकाव्य-शैली के विकास का अच्छा निदर्शन है। उसमें व्याकरण के नियम के साथ-साथ पौराणिक काव्य का नियम पालन भी किया गया है। इस शिलालेख में पौराणिक काव्य से भिन्नता समासों के प्रयोग में दृष्टिगोचर होती है। लम्बे-लम्बे समासों[1] की छटा अवलोकनीय है। इसमें रुद्रदामन को अलंकृत गद्यपद्य की रचना में प्रवीण बतलाया गया है। उक्त कविता, स्फुटता, स्पष्टता, सरलता, उदारता और सौन्दर्य से युक्त है। शैली अत्यन्त रोचक है। 'अभ्यस्तनाम्नो रुद्रदाम्नो' में अनुप्रास तथा 'पर्वतप्रतिस्पर्द्धि' में उपमा देखने योग्य है। कुषाण साम्राज्य के अन्त होने पर लिच्छवि वंश ने फैली हुई अव्यवस्था का लाभ उठाकर पाटलिपुत्र पर अधिकार जमाया। लिच्छवियों के संबंध का उपयोग कर चन्द्रगुप्त-प्रथम पाटलिपुत्र का राजा बन गया। उसके पुत्र समुद्रगुप्त के राजत्वकाल से गुप्त-साम्राज्य की उन्नति होने लगी। गुप्तकाल कला एवं काव्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस समय की दो प्रशस्तियों से गुप्तकाल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। एक तो प्रयाग के एक स्तंभ पर खुदी हुई हरिषेण द्वारा रचित समुद्रगुप्त की प्रशस्ति है दूसरी मंदसोर के सूर्यमन्दिर में वत्सभट्टि का अभिलेख है (४७३ ई०)। प्रयाग-प्रशस्ति (३४५ ई० लगभग) में समुद्रगुप्त के दिग्विजय का वर्णन गद्यपद्य मिश्रित भाषा में किया गया है। इस प्रशस्ति में पूरी कविता एक ही वाक्य में है जिसमें पहले आठ पद्य कविता के हैं फिर गद्य में लिखा हुआ एक लम्बा वाक्य है और अन्त में एक समाप्ति का पद्य है। इसकी रचना सुबन्धु और बाण के गद्य-काव्यों के सदृश है। अर्थालंकारों में रूपकों का प्रयोग सबसे अधिक है उपमा तथा श्लेष का बहुत कम। जैसा कि समुद्रगुप्त के इस विशेषण से स्पष्ट है 'साध्वसाधूद्यप्रलयहेतुपुरुषस्याचिन्त्यस्य'। वह सावधानी से लम्बे समासों

१—'परवललाघवसौष्ठवक्रियेणाहरहर्दात्रमात्रावमानशीलेन स्थूललक्षेण यथावत्प्राप्तैर्बलिशुल्कभागैः' इत्यादि।

के बीच छोटे-छोटे शब्दों का प्रयोग कर आकर्षक बनाता है। शब्दों के सुन्दर चुनाव और उनके सजाने का चातुर्य पद्य में भी दिखाई पड़ता है। केवल इसी शिलालेख से स्पष्ट है कि गुप्तराज्य के सम्पूर्ण काल में विकसित काव्य के ढंग की कविता वर्तमान थी। इसका लेखक हरिषेण समुद्रगुप्त का परराष्ट्रमंत्री और सेनापति होते हुए भी एक विशिष्ट प्रतिभासंपन्न कवि था, वत्सभट्टि की रचना इससे नितान्त भिन्न है। यह प्रशस्ति अनेक छन्दों में निबद्ध ४४ पद्यों में है। इसमें लाट देश और दशपुर नगर का कवित्वपूर्ण वर्णन है। उसकी शैली गौड़ी है जैसा कि पद्यों में दीर्घ समासों के प्रयोग तथा एक ही पद्य में परिवर्तित होते हुए इसके अनूकूल विभिन्न पादों में वर्ण की योजना से सिद्ध होता है। यथा—

१. चलत्पताकान्यवलासनाथान्यत्यर्थशुवलान्यधिकोन्नतानि।
तडिल्लताचित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र ॥१०॥

कालिदास के मेघदूत से तुलना कीजिए

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगंभीरघोषम्।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुंगमभ्रंलिहाग्राः,
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः॥

२. स्मरवशगततरुणजनवल्लभाङ्गनाविपुलकान्तपीनोरु-
स्तनजघनघनालिङ्गननिर्भर्त्सिततुहिनहिमपाते ॥३३॥

३. पयोधरैः कुंकुमरागपिञ्जरैः सुखोपसेव्यैर्नवयौवनोष्मभिः।
विलासिनीभिः परिपीडितोरसः स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिनः॥
ऋतुसंहार ५।८

अधिकांश विद्वानों के मत से कालिदास की रचना भी गुप्तकालीन मानी जाती है। तदनन्तर भारवि के समय तक १५० वर्ष का व्यवधान माना जा सकता है। इस बीच वत्सभट्टि के शिलालेख के अतिरिक्त अन्य कोई काव्य उपलब्ध नहीं। भारवि के समय से कविता में कृत्रिमता आ गयी। भाषा को

अलंकृत करने एवं उसमें ओज लाने की चेष्टा परवर्ती कवियों ने की है। भारवि, माघ, भट्टि, कुमारदास तथा श्रीहर्ष भाषा की कलात्मकता के समर्थक थे। इन परवर्ती कवियों ने कलापक्ष पर ही विशेष बल दिया।

काव्य का स्वरूप

काव्य के शरीर का निर्माण शब्द और अर्थ से होता है। ये दोनों एक-दूसरे से अभिन्न-से हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है इसीलिए कविकुलचूडामणि कालिदास ने रघुवंश के प्रारंभिक श्लोक[1] में शब्द और अर्थ की एकता को पार्वतीपरमेश्वर की एकता का उपमान बनाकर इस अटूट संबंध को स्थिर किया है। पौर्वात्य एवं पाश्चात्य मनीषियों ने काव्य के स्वरूप के संबंध में भिन्न-भिन्न मतों का प्रतिपादन किया है। 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' के अनुसार सभी आचार्य एकमत न हो सके। कोई अलंकार को काव्य की आत्मा मानता है, कोई रस को, कोई रीति को, किसी ने ध्वनि पर बल दिया तो किसी ने वक्रोक्ति को ही प्रधानता दी। इस प्रकार भारतीय विचारधारा के अनुसार पाँच प्रमुख सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं :—

	आचार्य
१—अलंकार सम्प्रदाय.....	दण्डी, भामह, उद्भट
२—रससम्प्रदाय.....	भरतमुनि, विश्वनाथ
३—रीतिसम्प्रदाय.....	वामन
४—ध्वनिसम्प्रदाय.....	ध्वनिकार आनन्दवर्धन
५—वक्रोक्तिसम्प्रदाय.....	कुन्तल व कुन्तक

अलंकारसम्प्रदाय—भामह और दण्डी काव्य का मुख्य गुण अलंकार मानते हैं। इन आचार्यों ने तो इसे काव्य के लिए अनिवार्य माना है। बिना

१—वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥ —रघुवंश १।१

अलंकार के काव्य काव्य ही नहीं कहा जा सकता। भामह[१] का कथन है 'सुन्दर होते हुए भी आभूषणों के विना वनिता का मुख शोभा नहीं देता' दण्डी[२] ने अलंकारों को शोभा का कारण बताया है। जयदेव[३] ने अपने ग्रन्थ चन्द्रालोक में यहाँ तक कह डाला है कि यदि कोई काव्य को अलंकार-रहित मानता है तो वह अग्नि को भी उष्णताहीन क्यों नहीं कहता। आचार्य वामन[४] ने गुणों को शोभा-विधायक मानते हुए भी अलंकारों को शोभा बढ़ाने वाला कहा है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने रससम्प्रदाय के समर्थक होते हुए भी अलंकारों[५] को शब्द और अर्थ का अस्थिर धर्म कहा है। जब तक अलंकार आन्तरिक उत्साह के द्योतक हैं तब तक वे शोभावर्धक हैं। उनका महत्त्व अवश्य है पर वे मूलपदार्थ का स्थान नहीं ले सकते। अग्निपुराण में रस को काव्य का जीवन स्वीकार करते हुए भी अलंकार[६] का महत्त्व बतलाया गया है।

१—न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।
—काव्यालंकार १।१३

२—काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।
—काव्यादर्श २।१

३—अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥
—चन्द्रालोक १।८

४—काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मागुणाः।
तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः। —काव्यालंकार ३।१।१।२

५—शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्॥
—साहित्यदर्पण १०।१

६—अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती।
—अग्निपुराण ३४५।२

रससम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के मूलप्रवर्त्तक हैं भरतमुनि जो ईसा पूर्व पहली शताब्दी से पूर्व हुए। उनके पश्चात् ९वीं शताब्दी तक अलंकार-सम्प्रदाय की प्रधानता रही, पर रस का अस्तित्व वे भी स्वीकार करते थे। अन्त में विश्वनाथ ने रस[1] की महत्ता घोषित की। इसका साहित्य में व्यापक प्रभाव रहा है। बाद में चलकर हिन्दी के आचार्यगण भी 'रस' से ही प्रभावित हुए।

रीतिसम्प्रदाय—वामन ने रीति[2] को काव्य की आत्मा माना है। श्रेष्ठपदरचना[3] रीति कहलाती है। वामन का कथन है कि वर्णन-शैली के कारण काव्य ग्राह्य होता है। काव्यगत सौन्दर्य को वर्णन-शैली कहते हैं। उन्होंने अलंकारों के कारण काव्य की ग्राहकता[4] बतलाई है किन्तु उनको सौन्दर्य[5] के व्यापक अर्थ में माना है। रीति का सम्बन्ध गुणों से है और गुणों का संबंध काव्य की आत्मा रस से है। इस प्रकार रस की महत्ता उन्हें भी स्वीकृत है।

ध्वनिसम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के आचार्य ध्वनिकार माने गये हैं और उनके व्याख्याकार आनन्दवर्धन को उतना ही महत्त्व दिया गया है यहाँ तक कि कुछ लोग दोनों को एक ही मानते हैं। ध्वनिकार कहते हैं कि जहाँ पर अभिधा का अर्थ व्यञ्जना से दब जाता है वही रचना ध्वनि[6] कहलाती है। ध्वनि में व्यञ्जना होने के कारण और व्यंग्यार्थ की प्रधानता होने से एक प्रकार की

१—वाक्यं रसात्मकं काव्यम्—साहित्यदर्पण।

२—रीतिरात्मा काव्यस्य—काव्यालंकार सूत्र १।२।६

३—विशिष्टपदरचना रीतिः—काव्यालंकारसूत्र १।२।२७

४—काव्यग्राह्यमलंकारान्—काव्यालंकारसूत्र १।१।१

५—सौन्दर्यमलंकारः—काव्यालंकारसूत्र १।१।२

६—यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥
—ध्वन्यालोकः १।१३

विलक्षणता रहती है जिसके कारण काव्य में सौन्दर्य आ जाता है। ध्वनि के चमत्कार के आधार पर काव्य तीन श्रेणियों में विभक्त हुआ। पहला 'ध्वनि काव्य' जिसमें अभिधार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ की प्रधानता हो। दूसरा 'गुणीभूत व्यंग्य' जिसमें व्यंग्यार्थ गौण हो गया हो। तीसरा 'चित्रकाव्य' जिसमें बिना व्यंजना के भी शब्दचित्रों (शब्दालंकारों) और वाच्यचित्रों (अर्थालंकारों) का चमत्कार होता है। काव्यप्रकाशकार ने 'ध्वनिकाव्य'[१] को उत्तम 'गुणीभूत व्यंग्य'[२] को मध्यम तथा 'चित्रकाव्य'[३] को अवर (अधम) कहा है। यह सम्प्रदाय रससम्प्रदाय के समान ही लोकप्रिय हुआ है।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य कुन्तक अथवा कुन्तल हैं। वे सब प्रकार के चमत्कारों को वक्रोक्ति मानते हुए काव्यान्तर्गत वचन-भंगिमा[४] को ही रोचकता का प्रधान कारण मानते हैं। उन्होंने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—

'कवि के वक्रोक्ति वाले व्यापार से युक्त जिस बन्ध[५] में शब्द और अर्थ उस वक्रता के उपकारक होकर गुँथे रहते हैं उस बन्ध को काव्य कहते हैं। इनके अतिरिक्त अग्निपुराण[६] में अभीष्ट अर्थ व्यक्त करने वाला वाक्यविधान

१—इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।
—काव्यप्रकाश १।४

२—अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम् —काव्यप्रकाश १।५

३—शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम् —काव्यप्रकाश १।५

४—वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणितिरुच्यते —वक्रोक्तिजीवित १।११

५—शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तदविदाह्लादकारिणि॥
—वक्रोक्तिजीवित १।८

६—संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली। —व्यास

काव्य कहा गया है। मम्मटाचार्य[1] दोषरहित गुणवाली रचना को जिसमें कहीं-कहीं अलंकार न भी हो काव्य मानते हैं।

रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं—'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'। इसमें रस और अलंकार दोनों के चमत्कार आ जाते हैं।

सब मतों की समीक्षा करते हुए निष्कर्ष यह निकलता है कि जिस रचना को पढ़ने से अलौकिक आनन्द की उपलब्धि हो वही काव्य है। काव्य के लिए भाव और अभिव्यक्ति दोनों ही की आवश्यकता है। अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीतिशोभाविधायक हैं। रसवादी विश्वनाथ ने भी कहा है—

उत्कर्षहेतवः प्रोक्ताः गुणालंकाररीतयः।

इनका संबंध अभिव्यक्ति से है। रस[2] में कर्त्ता (कवि), कृति (काव्य) और भोक्ता (पाठक) तीनों का ही समान महत्त्व है। उसमें प्रभाव है, गति है, जीवन की तरलता है। काव्य का सार होने के कारण उसमें फलों के रस की भी अभिव्यक्ति है। रस (आनन्द) तो उसका निजी रूप है। वह रमणीयता का चरम लक्ष्य है और अर्थ को अर्थस्वरूपा ध्वनि का भी विश्रामस्थल है। इसलिए वह परमार्थ है। स्वयंप्रकाश्य चिन्मय, अखण्ड ब्रह्मानन्दसहोदर है—'रसो वै सः'।

काव्यविषयक पाश्चात्य विचारधारा—पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य की परिभाषा भाव, कल्पना, बुद्धि एवं शैली इन चार तत्त्वों पर आधारित की है। काव्य में इन चारों बातों का समावेश रहता है पर किसी ने एक तत्त्व पर बल दिया है दूसरे ने दूसरे पर। शेक्सपियर कल्पना को प्रधानता देते हैं।

१—तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृतौ पुनः क्वापि—

—काव्यप्रकाश

२—सिद्धान्त और अध्ययन—गुलाबराय p. 6

शेली ने भी कल्पना पर बल दिया है। किन्तु वर्ड्सवर्थ[1] ने भाव को महत्त्व देते हुए कहा है काव्य शान्ति के समय में स्मरण किये हुए प्रबल मनोवेगों का स्वच्छन्द प्रवाह है। कोलरिज[2] के शब्दों में कविता उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम विधान है। मिल्टन[3] ने कविता को सादा, प्रत्यक्षमूलक और रागात्मक कहा है। मैथ्यू आर्नल्ड[4] ने कविता के मूल्य को जीवन की व्याख्या कहा है। हडसन[5] इन सब दृष्टियों का समन्वय करते हुए कहते हैं कि कविता कल्पना और मनोवेगों द्वारा जीवन की व्याख्या करती है। आचार्य जान्सन[6] ने अपनी परिभाषा में चारों तत्त्वों का समावेश कर लिया है। उनका कथन है कि कविता सत्य और प्रसन्नता के सम्मिश्रण की कला है जिसमें बुद्धि के सहायतार्थ कल्पना का प्रयोग किया जाता है।

भारवि का जीवनवृत्त

कालिदास की भाँति भारवि नें भी अपने संबंध में कुछ प्रकाश नहीं डाला। उनका एक मात्र ग्रन्थ किरातार्जुनीय इस संबध में मौन है। कुछ किंवदंतियों के अनुसार वे भी भोज के दरबार से संबद्ध हो जाते हैं। कुछ के अनुसार वे अपने पिता से रुष्ट होकर ससुराल चले गये थे। सौभाग्य से उनका

1—Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings. It takes its origin from emotion recollected in tranquillity.

2—Poetry is the best words in the best order.

3—Poetry should be simple, sensuous and passionate.

4—Poetry is at its bottom a criticism of life.

5—Poetry is an interpretation of life through imagination and emotion.

6—Poetry is the Art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason.

नामोल्लेख ऐहोल शिलालेख में मिलता है। यह शिलालेख दक्षिण के चालुक्य-वंशी नरेश पुलकेशी द्वितीय के समय का है। यह शिलालेख बीजापुर जिले के ऐहोल नामक गाँव के एक जैन मन्दिर में मिला था जो ६३४ ई० में उत्कीर्ण हुआ माना जाता है। इस प्रशस्ति का लेखक रविकीर्त्ति[1] कविता करने में अपने को कालिदास और भारवि के समान मानता है। दक्षिण भारत से प्राप्त गद्यकाव्य 'अवन्तिसुन्दरी' (जो दण्डीकृत कहा जाता है) के आधार पर भारवि दण्दी के प्रपितामह ठहरते हैं। जिस पद्य के आधार पर यह माना गया है उसका पाठ अशुद्ध है अतः यह बात अग्राह्य है। भारवि दण्डी के प्रपितामह नहीं थे वरन् प्रपितामह के मित्र थे क्योंकि भारवि की सहायता से ही दामोदर राजा विष्णुवर्धन की सभा में प्रवेश पा सके थे। इस 'अवन्ति सुन्दरी-कथा' और उसी के आधार पर पद्यात्मक रूपान्तर 'अवन्ति सुन्दरीकथासार' के अनुसार ये बातें ज्ञात होती हैं कि काञ्ची का पल्लवनरेश सिंहविष्णु महान् प्रतापी नरेश था। एक बार एक गंधर्व ने आर्या छन्द में उसकी बड़ी प्रशंसा की। उसे सुनकर इसके रचयिता के बारे में जानने की बड़ी उत्कण्ठा हुई तथा गन्धर्व से पूछा तब गन्धर्व ने कहा—

देव परमनुगृहीतोऽस्मि क्षणमवधानादनुगृहीततमः.....णावासः ततो हि निस्सृता सरस्वतीव ब्रह्मलोकादगस्त्यमूर्त्तिरिव गीतोद्गीर्णव.....रचलस्य कृतनिवेशितमचलपुरं नाम गवप्रोदकपुष्पवासितकलकाननायासि.....सम्भृत-धृतिरधिवसति कुशिकवंशवर्धिनी सर्वातिथिरप्रतिगृहीत्री महत्यु...(ना) रायणस्यामिनो नाभीपद्म इवब्रह्मैकधाम दामोदरस्वामिनामात्तमेव.....सर्वाङ्ग-मनोहरया सर्वज्ञया विदग्धया सर्वभाषाप्रवीणयाप्रमाणयुक्त्या ललितपद-विन्यास .....स्नेहमस्वजत। को हि नाम भगवतीभवितव्यतामतिक्रम्य यथासमीहितेन साधयति पथा।

१—येनयोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिनाजिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्त्तिः॥

इस अंश तथा अन्य भागों की तुलना 'अवन्तिसुन्दरीकथासार' से करने पर निम्नलिखित बातें विदित होती हैं—

"पश्चिमोत्तर प्रदेश में आनन्दपुर है। वहाँ आर्य देश के बहुत से ब्राह्मण थे। ब्रह्मलोक से आई हुई पुण्यतीर्था—सरस्वती के समान कौशिक गोत्रीय ब्राह्मणों ने उन्हीं से जन्म ग्रहण किया। उत्सुकतावश नासिक भूमि में मूलदेव से अधिष्ठित अचलपुरी में आकर वे रहने लगे। उसमें कमलनाभि के समान नारायण नामक व्यक्ति से दामोदर उत्पन्न हुए। उस मेधावी विद्वान् ने विष्णुवर्धन राज्य से मैत्री की। एक बार दामोदर (भारवि) को आमिष खिला दिया गया। इस पाप से मुक्ति पाने के लिए माता-पिता के पास न जाकर तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़ा। मार्ग में दुर्विनीत नामक राजा से उसकी भेंट हो गयी जो भारवि के काव्य से बहुत प्रभावित हुआ।

इससे विदित होता है कि भारवि का नाम दामोदर था। उनका जन्म कुशिक गोत्र में हुआ था। पिता का नाम नारायण स्वामी था। विष्णुवर्धन से उनकी भेंट हुई। आगे के ग्रन्थ से यह पता चलता है कि पल्लवनरेश सिंहविष्णु द्वारा उनका सत्कार किया गया। यह भी ज्ञात होता है कि उस समय वे बीस वर्ष के थे। प्रो० आर० आर० भागवत ने किरातार्जुनीय के १८ सर्ग के पाँचवें श्लोक के आधार पर सिद्ध किया है कि भारवि दक्षिण के निवासी थे यथा—

उरसि शूलभृतः प्रहिता मुहुः प्रतिहतिं ययुरर्जुनमुष्टयः।
भृशरया इव सह्यमहीभृतः पृथुनिरोधसि सिन्धुमहौदधि ॥

अर्थात् भगवान् शंकर के सीने पर बार-बार प्रहार किये गये अर्जुन के मुक्के (मुष्टि) उसी प्रकार निष्फल हुए जिस प्रकार सह्यपर्वत के तट पर वेग के साथ टकराने वाली समुद्र की विशाल लहरें (विफल हो जाती हैं)।

अग्राङ्कित श्लोकों को आधार मान कर यह निष्कर्ष निकलता है कि

१—स मेधावी कविर्विद्वान् भारविः प्रभवो गिराम्।
अनुसाध्याकरोन्मैत्री नरेन्द्रे विष्णुवर्धने ॥

भारवि नासिक के आस-पास पश्चिमी तट पर स्थित अचलपुर ग्राम के रहने वाले थे :—

'शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ'—किरात १, ४६
'तत्प्रियार्थमिव यातुमुद्यतं भानुमानुपपयोधि ललम्बे'—किरात; ९,१.
साभिमज्जति रवौ न विरेजे खिन्नजिह्म इव रश्मिसमूहः—किरात; ९,५

इन उल्लेखों से भारवि सूर्य को समुद्र में अस्तंगत होते हुए बतलाते हैं जो केवल दक्षिण भारत का ही निवासी कह सकता है। भारवि दक्षिण भारत के निवासी थे और चालुक्यवंशी नरेश विष्णुवर्धन के सभा-पण्डित थे। भारवि परम शैव थे। इसका समर्थन किरातार्जुनीय के कथानक और अवन्तिसुन्दरी[1] के उल्लेख से होता है क्योंकि किरातार्जुनीय में शिव की भक्ति के द्योतक पद्य बहुत से हैं किन्तु विष्णु के विषय में आपेक्षाकृत बहुत कम। अठारहवें सर्ग में जिस भावविभोरता के साथ अर्जुन ने भगवान् शंकर की स्तुति की है उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह उसके वेश में स्वयं भारवि की ही आराधना है। राजाओं के संसर्ग से उन्होंने राजनीति का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उन्होंने काव्यशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र आदि शास्त्रों का अच्छा अध्ययन किया था। राजशेखर के कथनानुसार राजा लोगों को काव्य एवं शास्त्र की परीक्षा के लिए ब्रह्मसभाएँ करनी चाहिए। कालिदास तथा भर्तृमेण्ठ के समान भारवि की भी उज्जयिनी में काव्यपरीक्षा[2] हुई थी। भारवि के व्यक्तित्व का सच्चा प्रदर्शन प्रथम और द्वितीय सर्ग की द्रौपदी, भीम तथा युधिष्ठिर की उक्तियों और तेरहवें और चौदहवें सर्ग की किरातदूत तथा अर्जुन की उक्तिप्रत्युक्तियों में है। भारवि राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित हैं। युधिष्ठिर

१—यतः कौशिककुमारो (दामोदरः) महाशैवं महाप्रभावं गवां प्रभवं प्रदीप्तभासं भारविं रविमिवेन्दुरनुरुध्यदर्श इव पुण्यकर्मणि विष्णुवर्धनाख्ये राजसूनौ प्रणयमन्वबध्नात्।

२—श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा—
इह कालिदासमेण्ठावत्रामररूपसूरभारवयः ।
हरिश्चन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षितावित्र विशालायाम् ॥

द्रौपदी और भीम को समझाते हुए कहते हैं कि किसी काम में जल्दीबाजी[1] नहीं करनी चाहिए। बिना सोचे-समझे कोई काम करने से अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। जो सोच-समझ कर काम करता है उसके गुणों से आकृष्ट सम्पत्ति स्वयं उसके पास चली आती है। जो कोपजन्य अंधकार को दबाकर शक्तियों[2] (प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साहशक्ति) का संचय नहीं करता वह कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की कला के समान अपनी तीनों शक्तियों से हाथ धो बैठता है।

भारवि कामशास्त्रों के भी प्रकाण्ड पंडित हैं रसिक नहीं। वह शृंगार के कलापक्ष के कवि हैं। कालिदास प्रणय के कवि हैं भारवि प्रणयकला (technique of love) के कवि। इसके अतिरिक्त अलंकार, पिंगल आदि पर उनका पूर्ण अधिकार है।

भारवि का स्थितिकाल

भारवि ने अपने सम्बन्ध में अपने काव्य में कुछ नहीं लिखा किन्तु सौभाग्य-वश बहिरंग प्रमाणों के आधार पर उनके विषय में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है। दक्षिण के चालुक्यवंशीय नरेश पुलकेशिन द्वितीय के समय के ऐहोल शिलालेख में भारवि के नाम का कालिदास के साथ उल्लेख है। प्रशस्ति पुलकेशी के आश्रित रविकीर्त्ति[3] नामक किसी जैन कवि द्वारा रचित है। वह अपने को कविता निर्माण करने में कालिदास और भारवि के समान बतलाता

१—सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥२।३०॥

२—बलवानपि कोपजन्मनस्तमसो नाभिभवं रुणद्धि यः।
क्षयपक्ष इवेन्दवीः कलाः सकला हन्ति स शक्तिसम्पदः ॥२।३७॥

३—येनायोजि नवेऽश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्त्तिः कविताश्रितश्रीकालिदासभारविकीर्त्तिः ॥

है। शिलालेख का समय उसमें ५५६ शकाब्द[1] अर्थात् ६३४ ई० दिया हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि भारवि ६३४ ई० तक इतने प्रसिद्ध हो चुके थे कि उनका नाम कालिदास के साथ लिखा जा सकता था अतः इस शिलालेख से अवश्य ही कम से कम सौ वर्ष पूर्व उनकी स्थिति रही होगी।

भारवि के समय निर्धारण के लिए यह जानना आवश्यक है कि विष्णुवर्धन, दुर्विनीत तथा पल्लवनरेश सिंहविष्णु कौन थे। विष्णुवर्धन पुलकेशिन् द्वितीय का छोटा भाई कहा गया है। इसने सेनापति को हैसियत से हर्षवर्धन को पराजित किया। वह युवराज था और गोदावरी जिले में पिष्टपुर को राजधानी बनाकर पूर्वी चालुक्यवंश को स्थापना[2] ६१५ ई० में की।

दुर्विनीत कोङ्कणी के गंगनरेश अविनीत का पुत्र था। पिता द्वारा अपने अधिकार से वंचित किए जाने पर दूर-दूर देशों में घूमता-फिरता था। उसने वृहत्कथा का संस्कृतरूपान्तर 'शब्दावतार' नाम से किया और 'किरातार्जुनीयम्' के पन्द्रहवें सर्ग पर टीका लिखी[3]। दुर्विनीत सिंहविष्णु का समकालीन था।

अवन्तिसुन्दरी के आधार पर भारवि और दण्डी का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इसी में कहा गया है कि दुर्विनीत और सिंहविष्णु भारवि के आश्रयदाता थे। काञ्ची के पल्लव नरेश सिंहविष्णु का शासन काल ५७५ से ६०० ई० के बीच है। इन्हीं सिंहविष्णु ने भारवि को सम्मानित किया था। दुर्विनीत का समय ५८० ई० है। सिंहविष्णु से भेंट होने के समय भारवि बीस

१—पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥

२—History of classical Sanskrit Literature—M. Krishnamachari.

३—श्रीमत्कोङ्कणमहाराजाधिराजस्य अविनीतनाम्नः पुत्रेण शब्दावतारकारेण देवभारतीनिबद्धबृहत्कथेन किरातार्जुनीयपंचदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीतनामधेयेन...Archaeological report.—M. Krishnamachari (1916) 36.

वर्ष के थे इस प्रकार भारवि का समय छठीं शताब्दी का उत्तरार्ध ठहरता है। ६६०ई० में जयादित्यकृत काशिका में पाणिनि सूत्र (१. ३. २३) की वृत्ति में 'संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः' (किरात ३,१४) को उदाहरण रूप में उल्लिखित किया गया है। ज्ञात होता है कि जयादित्य के समय तक भारवि की पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी होगी। यदि इस प्रसिद्धि के लिए सौ वर्ष का समय माना जाय तो ५६०ई० भारवि का समय आता है जो अन्य प्रमाणों से भी समर्थित होता है। प्रो० कीथ भी इस तिथि की पुष्टि करते हैं :—

'बाह्यसाक्ष्य से सिद्ध होता है कि भारवि[1] ६३४ ई० के पूर्व हुए क्योंकि उसी समय के ऐहोल शिलालेख में कालिदास के साथ उनका भी उल्लेख आता है तथा काशिकावृत्ति में भी वे उद्धृत हुए। दूसरी ओर वे स्पष्टतया कालिदास से प्रभावित हैं और साथ ही माघ पर भी उनका प्रभाव अत्यधिक पड़ा है। बाण ने उनका उल्लेख नहीं किया क्योंकि वे बाण के इतने अधिक पहले नहीं हुए होंगे कि उनकी प्रसिद्धिवश बाण को उनका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता। अतः यह अधिक युक्तिसंगत है कि भारवि को ५०० ई० की अपेक्षा ५५० ई० के लगभग रखा जाय।'

किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व

'किरातार्जुनीयम्' संस्कृत साहित्य के पाँच महाकाव्यों में से एक उत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है। कालक्रमानुसार कालिदास-रचित कुमारसंभवम्

१—External evidences prove that he was older than A. D. 634 when he is mentioned with Kalidasa in the Aihole inscription, and he is cited in the Kasika Vritti, on the other hand he manifestly is influenced by Kalidasa while he strongly affected Magha, Bana ignores him, so that he can hardly have preceded him long enough for his fame, to compel recognition. It is, therefore, wiser to place him A.D. 550 than as early as A. D. 500.

(A History of Sanskrit Literature—A.B. Keith page 109.)

और रघुवंश इससे पूर्व के हैं पर माघकृत शिशुपालवध और श्रीहर्षप्रणीत नैषधीयचरित इसके परवर्त्ती हैं। संस्कृत साहित्य में रघु, कुमार, मेघदूत लघुत्रयी तथा नैषध, माघ और किरात वृहत्त्रयी के अन्तर्गत माने जाते हैं। इस प्रकार किरातार्जुनीय वृहत्त्रयी में अन्यतम महाकाव्य माना जाता है। साहित्य शास्त्रग्रन्थों में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है। विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ-साहित्य दर्पण के षष्ठ परिच्छेद में निम्नाङ्कित श्लोक महाकाव्य के लक्षण के सम्बन्ध में दिये हैं :—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम् ।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।।
नातिस्वल्पा नाति दीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।
वर्णनीयं यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ।।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथयासर्गनाम तु ।।

आचार्य दण्डी ने भी अपने काव्यादर्श में महाकाव्य के उपर्युक्त प्रायः सभी लक्षण दिये हैं। यथा—

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ॥
इतिहासकथोद्भूतमन्यद्वापि सदाश्रयम् ।
चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकम् ॥
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः ॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ॥
अलंकृतमसंक्षिप्तरसभावनिरन्तरम् ।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः ॥
सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जनम् ।
काव्यं कल्पोत्तरस्थायि जायेत तदलङ्कृतिः ।

भामह का महाकाव्य लक्षण निम्नलिखित है :—

सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत् ।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम् ॥
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत ।
पंचभिः सन्धिभिर्युक्तं जातिव्याख्येयमृद्धिमत् ॥
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत् ॥
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् ॥

"जिसमें[1] सर्गों का निवन्धन हो वह महाकाव्य कहाता है। इसमें एक देवता या सद्वंश क्षत्रिय जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुण हों—नायक होता है। कहीं एक वंश के सत्कुलीन अनेक भूप भी नायक होते हैं। शृंगार, वीर और

१—साहित्यदर्पण की शालग्रामशास्त्रीकृत विमला नाम की हिन्दी टीका पृष्ठ ३०८

शान्त में से कोई एक रस अंगी होता है । अन्य रस गौण होते हैं । सब नाटक सन्धियाँ रहती हैं । कथा ऐतिहासिक या लोकप्रसिद्ध सज्जन संबंधिनी होती है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है । आरंभ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य वस्तु का निर्देश होता है । कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण वर्णन होता है । इसमें न बहुत छोटे, न बहुत बड़े आठ से अधिक सग होते हैं । उनमें प्रत्येक में एक ही छन्द होता है किन्तु अन्तिम पद्य (सर्ग का) भिन्न छन्द का होता है । कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं । सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए । इसमें सध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु (छहों), वन, समुद्र, संभोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए । इसका नाम कवि के नाम से (माघ), या चरित्र के नाम से (जैसे कुमारसंभव) अथवा चरित्र नायक के नाम से (जैसे रघुवंश) होना चाहिए । कहीं इनके अतिरिक्त भी नाम होता है (जैसे भट्टि) । सग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रखा जाता है । भामह के महाकाव्य के लक्षण में किंचित विभिन्नता है शेष प्रायः वही हैं ।

'किरातार्जुनीयम्' में ये लक्षण पूर्ण रूप से घटित होते हैं । इस महाकाव्य का कथानक महाभारत के वनपर्व से लिया गया है तथा अठारह सर्गों में कथा का निबन्धन हुआ है । इसके नायक अर्जुन हैं, धीरोदात्तादि गुणों से सम्पन्न सद्वंश क्षत्रिय हैं । प्रधान रस वीर है शेष शृंगारादि उसके सहायक हैं । प्रारंभिक तीन सर्गों में आरंभावस्था से समन्वित मुखसन्धि है । यहाँ बीज पड़ जाता है । चौथे से छठवें सर्ग के मध्य तक यत्नावस्था से युक्त प्रतिमुख सन्धि है । कथा का सूत्र दोनों सर्ग से दसवें सर्ग तक प्रायः सब एक-सा जाता है क्योंकि इन सर्गों में बीच-बीच में षट् ऋतु, सूर्योदय, सूर्यास्त, पर्वत, नदी, जलक्रीड़ा, रतिक्रीड़ा आदि का वर्णन है । चौथे में शरद्वर्णन, पाँचवें में हिमालय वर्णन है, ग्यारहवें सर्ग में कथा पुनः मन्थर गति से आगे बढ़ती है । इस सर्ग के अन्त तक प्राप्त्याशा से संयुक्त गर्भ सन्धि है । सत्रहवें सर्ग तक नियताप्ति अवस्था से

समन्वित विमर्श सन्धि है। अन्तिम अठारहवें सर्ग में फलागम से सम्बद्ध निर्वहण सन्धि है। कथा ऐतिहासिक है, दिव्य पाशुपतास्त्र की प्राप्ति फल है।

श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णलिंगीं विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः॥

वर्ण्यवस्तु का निर्देश प्रारंभ में हुआ है। सज्जनों की प्रशंसा पाण्डवों की सज्जनता के उत्कर्ष के रूप में तथा खल-निन्दा दुर्योधन की दुर्जनता के अपकर्म के रूप में की गयी है। इसमें १८ सर्ग हैं जिनमें से प्रथम में ४६, द्वितीय में ५६, तृतीय में ६० श्लोक हैं, चतुर्थ में ३७ और पंचम में ५२ हैं। इस प्रकार अन्य सर्गों में भी लगभग यही क्रम है अतः सर्ग न तो स्वल्प ही हैं न दीर्घ ही। प्रत्येक सर्ग के अन्त में नियमानुसार छन्द बदल दिये गये हैं। पांचवें और अन्तिम सर्ग में से प्रत्येक में भिन्न-भिन्न छन्दों का प्रयोग करके भारवि ने 'नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते' की सार्थकता सिद्ध कर दी है। मल्लिनाथ का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है :—

नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशजः।
तस्योत्कर्षकृतेऽनुवर्ण्यचरितो दिव्यः किरातः पुनः॥
शृंगारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीरः प्रधानो रसः।
शैलाद्यानि च वर्णितानि बहुशो दिव्यास्त्रलाभः फलम्॥

प्रथम सर्ग के अन्त में 'विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि' के द्वारा कवि ने अगले सर्ग की कथा की सूचना दे दी है कि युधिष्ठिर सन्धि तोड़ने जा रहे हैं और अन्तिम श्लोक 'रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः' से ज्ञात होता है कि महाराज युधिष्ठिर की विपत्ति के बाद पुनः लक्ष्मी प्राप्त होगी। दूसरे सर्ग के ५४ वें श्लोक में व्यासागमन की सूचना द्वारा तृतीय सर्ग के विषय का उपक्रम बाँधा जा रहा है। इस प्रकार अन्य सर्गों में भी आगे के सर्ग की कथा का संकेत मिलता जाता है। दशम में ऋतुवर्णन, पंचम में हिमालय, चतुर्थ में काम्यक वन और शरद ऋतु, अष्टम में अप्सराओं की क्रीडा तथा नवम में सन्ध्यादि का विशद वर्णन किया गया है। चौदहवें सर्ग में किरात की सेना का अर्जुन के ऊपर आक्रमण तथा

पन्द्रहवें से अठारहवें सर्ग तक अर्जुन और किरात के युद्ध का सजीव वर्णन है। इसके नायक अर्जुन तथा प्रतिनायक किरात के नाम पर किरातार्जुनीयम् नाम रखा गया है। उक्त सामग्री के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'किरातार्जुनीयम्' में महाकाव्य के लक्षण पूर्णतया घटित होते हैं। अतः यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट महाकाव्य है।

किरातार्जुनीयम् का कथानक

प्रथम सर्ग—जब महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन के साथ द्यूत में हारकर अपने भाइयों तथा द्रौपदी के साथ द्वैतवन में निवास करते थे, उस समय उन्होंने दुर्योधन की राज्यव्यवस्था जानने के लिए एक वनेचर को ब्रह्मचारिवेष में भेजा। वह सब वृत्त जानकर महाराज युधिष्ठिर के पास लौट आया और यथार्थ समाचार बतलाने की क्षमायाचना कर कहने लगा कि दुर्योधन अनीति से प्राप्त पृथ्वी का नीतिपूर्वक शासन कर रहा है। वह शत्रु तथा मित्र को धर्मशास्त्रानुसार दण्ड देता है किसी के साथ कोई पक्षपात नहीं, राजा लोग उसे कर देते हैं तथा उसकी आज्ञा का सभी पालन करते हैं। प्रजा दुर्योधन के राज्य की सुव्यवस्था से अत्यन्त प्रसन्न है सर्वत्र कृषि उत्तमरूप से होती है। दुःशासन को युवराज बनाकर स्वयं यज्ञादि में निरत रहता है। इसके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने उसे पारितोषिक देकर विदा किया और स्वयं द्रौपदी के प्रासाद में जाकर अपने भाइयों के सामने वनेचर द्वारा प्राप्त समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर द्रौपदी अत्यन्त क्षुब्ध हुई और भर्त्सनापूर्वक महाराज को बहुत कुछ कह सुनाया। उसने कहा भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा मेरी जो दुर्दशा हुई है उस सबके एक मात्र कारण आप ही हैं, आपकी शान्ति-नीति के कारण आपको तथा आपके भाइयों को अगणित कष्ट उठाने पड़े हैं फिर भी आप नहीं चेतते। शान्ति से तो मुनियों को मोक्षरूप की सिद्धि प्राप्त होती है राजाओं को राज्योपलब्धि नहीं। राज्य तो पराक्रम से मिलता है जैसा कि कहा गया है 'वीरभोग्या वसुन्धरा।' यदि आप शान्ति को ही सुख का साधन मानते हैं तो धनुष का परित्याग कर जटा बढ़ा कर अग्नि में हवन कीजिए। हे महाराज! आप सब प्रकार से समर्थ हैं आपको समय की प्रतीक्षा नहीं करनी

चाहिए। विजयेच्छु राजा तो बहाने से सन्धि भी तोड़ देते हैं। इस प्रकार द्रौपदी उन्हें शीघ्र युद्ध के लिए प्रेरित करती है।

द्वितीय सर्ग—द्रौपदी की बातें भीम के मन के अनुकूल थीं अतः उन्होंने भी समर्थन करते हुए कहा कि द्रौपदी का कथन बहुत ही उपयुक्त है। आप में पुरुषार्थ होते हुए भी शत्रु को बढ़ते देख चुप रहना उचित नहीं है शीघ्र ही उसका दमन करना चाहिए आपके दिग्विजयी चारों भाइयों के तेज को कौन सहन कर सकता है। अतः आप शीघ्र ही युद्ध छेड़ दीजिए। सब सुनकर युधिष्ठिर ने कहा कि हे भीम! जो कुछ तुमने कहा वह सब समयोचित शास्त्रसंगत है तथापि मैं विचारपूर्वक काम करना चाहता हूँ क्योंकि बिना सोचे-समझे सहसा कोई काम नहीं करना चाहिए। असमय में कोध करना अत्यन्त अनुचित है। धैर्यपूर्वक प्रतिज्ञात अवधि की प्रतीक्षा करना उचित है। अवधि के बाद राजा लोग हमारी सहायता करें। अहंकारी मनुष्य से कोई प्रसन्न नहीं रहता समय पड़ने पर लोग उसका साथ छोड़ देते हैं। इस प्रकार जब महाराज युधिष्ठिर भीम को समझा रहे थे उस समय दैवसंयोग से भगवान् वेदव्यास वहाँ आ पहुँचे। सभी ने उठकर उनका स्वागत किया तथा सादर उन्हें उच्च आसन पर बैठाया तथा आज्ञा पाकर स्वयं भी सम्मुख बैठ गये।

तृतीय सर्ग—उन्होंने व्यास जी की सम्मति ली तो व्यास जी ने भी युद्ध की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहा कि प्रबल शत्रु को जीतने के लिए दिव्य अस्त्र की आवश्यकता है। अतः अर्जुन को मेरे कथनानुसार मुनियों की भाँति तपस्या करनी चाहिए। यक्ष तपःस्थल पर शीघ्र ही पहुँचा देगा। व्यास जी के अन्तर्धान होते ही यक्ष अर्जुन के सामने उपस्थित हो गया। उन्हें जाने के लिए उद्यत देख द्रौपदी ने कहा कि जब तक तपस्या पूरी न हो हम लोगों के लिए व्यग्र न होना क्योंकि दृढ़ आग्रह के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। तेजस्वी का अपमान प्राणहानि से बढ़कर होता है। शत्रुकृत दुर्व्यवहार अब तक मुझे पीड़ा देता है। इन्द्र भगवान से सफलता की कामना करती हुई द्रौपदी ने अर्जुन को विदा दी। उन्होंने कवच पहन कर तलवार, धनुष और तरकश लेकर यक्ष द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने के लिए प्रस्थान किया। उनके चले जाने पर लोगों को अत्यन्त दुःख हुआ पर समझा-

बुझाकर सबों ने अपने चित्त को शान्त किया। आकाश में दुन्दुभी बजने लगी तथा पुष्पवृष्टि देवताओं ने की।

चतुर्थ सर्ग—यक्ष अर्जुन का मार्ग प्रदर्शन करता है तथा इन्द्रकील पर्वत की ओर जाते हुए अर्जुन शरद् की शोभा देख कर अत्यन्त मुग्ध हो गये। इस प्रकार अर्जुन को शरद की शोभा को देखने में आसक्त जानकर यक्ष भी शरद् सम्बन्धी बातें करते हुए शीतलमन्दसुगन्ध वायु का बहना तथा गोपाङ्गनाओं के मधुर गीतों का वर्णन करने लगा जिन सुमधुर गीतों को सुनकर हरिणियाँ तृण चरना भूल गई थीं। इस सर्ग में शरत्कालीन दृश्य का अंशतः कवि के वर्णन द्वारा और अंशतः यक्ष के शब्दों द्वारा एक सुन्दर चित्र खींचा गया है।

पंचम सर्ग—इन्द्रकील पर्वत की ओर जाते हुए अर्जुन ने हिमालय की शोभा का अवलोकन किया। कवि ने बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है। यक्ष हिमालय की रहस्यमय स्थिति पर तथा शिव और पार्वती के साथ उसके घनिष्ठ संबंध पर जोर देता है। यक्ष अर्जुन को इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने के लिए इस प्रकार उदेश देता है—

हे अर्जुन शस्त्रधारण कर इस पर्वत पर आप तपस्या करें। तप में बहुत-सी विघ्नबाधाओं के बाद आपको सिद्धि प्राप्त होगी। अतः जितेन्द्रिय होकर तप में संलग्न हो जाइये भगवान् शंकर से वर प्राप्ति में सफलता मिलेगी इस प्रकार आशीर्वाद देकर यक्ष अन्तर्हित हो गया।

षष्ठ सर्ग—अर्जुन तप में संलग्न हो गये। उनकी तपस्या से इन्द्रकील पर रहने वाले गुह्यक अत्यन्त भयभीत हो गये। वे इन्द्र से सहायतार्थ प्रार्थना करते हैं तथा तप भंग करने के लिए गन्धर्वों और अप्सराओं को भेजते हैं। इन्द्र के आदेश से वे अप्सराएँ अनेक आभूषणों से आभूषित होकर स्तनभारों से अवनत एवं अत्यन्त भ्रूविक्षेप, कटाक्षपात आदि चेष्टाओं से सबको मोहित करती हुई इन्द्र को प्रणाम कर अर्जुन के पास इन्द्रकील पर्वत की ओर चल पड़ीं।

सप्तम सर्ग—इन्द्र ने इन अप्सराओं की रक्षा के लिए रथ, हाथी, घोड़ों

के साथ अपने सेवकों को भेजा। मार्ग-गमनजनित क्लेशों का कवि मनोहर वर्णन करता है। क्रमशः वे अप्सराएँ मन्दाकिनी के पास पहुँचीं। वहाँ नदी के तरंगों के संपर्क से शीतल एवं सुगन्धित पवन ने उनकी श्रान्ति को दूर किया। अर्जुन के तप में विघ्न डालने के लिये अनेक प्रकार की वार्त्तालाप करती हुई वे इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचीं। बाद में गंधर्व वहाँ पहुँच कर हरी-हरी घासों से भरी हुई भूमि की शोभा बढ़ाने लगे। वहाँ वे निवास करने लगे। उन लोगों के रहने से उस पर्वत की शोभा भी नगर के समान हो गयी।

अष्टम सर्ग—ये अप्सराएँ गन्धर्वगणों से युक्त, अनेक सुख-साधनों से सम्पन्न कांतियुक्त होती हुई बिजली की तरह चमकने लगीं और अपनी माया की शक्ति से तुरन्त बनाये गये प्रासादों का त्याग कर पुष्पचयनार्थ भ्रमण करती हैं। बाद में गंगा-स्नान के लिए गन्धर्वों को आमंत्रित करती हैं। स्नान के दृश्य का एवं गन्धर्वों और अप्सराओं के जलक्रीड़ादि का वर्णन अत्यन्त आकर्षक एवं हृदयग्राही है।

नवम सर्ग—इस सर्ग में सायंकाल, चन्द्रोदय, सुरापान तथा प्रभात-वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम कवि उत्प्रेक्षा द्वारा सूर्यास्त का वर्णन करता है। एक ओर तो सूर्य के अस्त होने पर चक्रवाक विरह का अनुभव करने लगा। दूसरी ओर स्वच्छ चन्द्र-चन्द्रिकाएँ दिगन्तों को व्याप्त कर प्रकाशित होने लगीं। हिमवत शुभ्र चन्द्रकिरणसमूह नीलाकाश में समुद्रजल मध्य प्रविष्ट स्वच्छ गंगाजल के समान फैल कर शोभायमान होने लगा, इस अनुकूल समय को सहायक मानकर कामदेव ने विश्वविजयी चाप का सन्धान किया। सुरवनिताएँ केलि के लिए उन्मन्त हो गईं तथा शृंगारादि से अपने को सुसज्जित करने लगीं। अपने प्रेमियों के साथ सुरापान करने लगीं तथा प्रेमानन्द में विभोर हो गईं। इतने में ही रात बीतकर प्रभात होने आया। प्रभात-पवन धीरे-धीरे बहने लगा।

दशम सर्ग—अर्जुन को लुभाने के लिए उत्तम आभूषणों से आभूषित, सुगन्धित साधनों से सम्पन्न होकर अप्सराएँ आईं। अनेक प्रकार के हाव-भाव, नृत्यादि प्रदर्शित करने लगीं; गन्धर्वगण मृदंग-वीणा बजाने लगे। सारी ऋतुएँ

एक साथ एकत्र हो गईं। शीतल मन्द सुगन्ध पवन प्रवाहित होने लगा। सुरागंनाओं की सारी शृंगार चेष्टाएँ विफल हो गईं। कोई दूती द्वारा सन्देश भेजतीं, कोई कटाक्ष विक्षेप करती हुई हाव-भाव चेष्टा द्वारा लास्य कर रही थीं। परन्तु जितेन्द्रिय अर्जुन के प्रति उन अप्सराओं के सारे हाव-भाव, शृंगार, रति चेष्टा, कटाक्षपात, हंसगमनादि प्रयास निष्फल ही होते गये। इस प्रकार दृढ़प्रतिज्ञ अर्जुन को तपश्च्युत करने में असमर्थ होकर वे गन्धर्व और अप्सराएँ अपने-अपन स्थान चली गईं।

एकादश सर्ग—अप्सराओं के लौट जाने पर उनके मुख से अर्जुन की जितेन्द्रियता का वृत्त श्रवण कर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा स्वयं अत्यन्त भद्र मुनिवेश में प्रकट हुए। उन्होंने अर्जुन की तपस्या के उत्साह की प्रशंसा की। साथ ही यह भी कहा कि शस्त्र धारण करना और तपस्या करना परस्पर विरोधी हैं। अर्जुन ने उनके कथन को सत्य मानते हुए अपनी परिस्थिति बतलायी कि दुर्योधनादि शत्रुओं से अपमानित होकर वे तपःप्रवृत्त हुए हैं। अपने कुटुम्ब के सम्मान की रक्षा में उन्हें सब कुछ करना है। भगवान व्यास से आदिष्ट होकर अस्त्र ग्रहण कर क्षत्रिय कुल के इष्टदेव इन्द्र की आराधना के लिए आये हैं। मेरे ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शत्रुवधार्थी होकर मेरी प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। मेरी प्रतिज्ञा है कि या तो मैं इस पर्वत में विलीन हो जाऊँगा या अपने इष्टदेव इन्द्र की आराधना कर अपयश मिटाऊँगा। इन्द्र इससे बहुत प्रभावित हुए और अर्जुन को महादेव की आराधना करने के लिए विजयार्थ उपदेश देकर अन्तर्हित हो गये।

द्वादश सर्ग—शिव जी के आराधनार्थ अर्जुन कठिनतम तपस्या करने लगे। कठिन तप से शरीर के कृश होने पर भी ओज नहीं घटा बल्कि बढ़ता ही गया। महर्षिगण अर्जुन की घोर तपस्या से व्याकुल होकर शिव जी की शरण में पहुँचे तथा उनसे प्रार्थना करने लगे। उन्होंने कहा कि इस तपस्वी में एक विचित्रता है कि तपस्वी होते हुए भी तापसवेष के विरुद्ध धनुष, बाण, कवच तथा खड्ग भी धारण किये हुए है। भगवान् शंकर ने उनसे कहा यह तो कृष्ण का मित्र अर्जुन है जो भगवान् नारायण का अंश होकर पृथ्वी पर अवतीर्ण

हुआ है। अपने प्रबल शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की कामना से तप में निरत हुआ है। देव-कार्य में संलग्न इसके तप में विघ्न डालने के लिए मूक दानव छल से वराह रूप धारण करेगा। अर्जुन की रक्षा के लिए मैं भी किरात वेष में अपने गणों के साथ वहाँ उपस्थित रहूँगा। मेरे बाण द्वारा वराह के मारे जाने पर अर्जुन अपने बाण द्वारा विद्ध जानकर मृगया के लिए मुझसे झगड़ पड़ेगा। उस समय मेरे साथ घोर संग्राम करते हुए तुम लोग अर्जुन को देखोगे। तदनन्तर शिव जी किरातवेष धारण कर तयार हो गये। अर्जुन के आश्रम पर पहुँच कर वहाँ वराह रूप धारी मूक दानव को अर्जुन की ओर धावा करते देख किरातों (जो शिवगण थे) के साथ शिवजी उसके पीछे चल पड़े।

त्रयोदश सर्ग—मूकदानव को अपनी ओर आते हुए देख कर अर्जुन तर्क करने लगे कि मेरे तप के प्रभाव से इस स्थान पर सर्वत्र शान्तिमय वातावरण हो गया है। यह वराह हिंसावृत्ति से मेरी ओर आ रहा है तथा इसे देखकर मेरे मन में कालुष्य उत्पन्न होता है अतः वराहरूपधारी यह कोई दानव ही है। इस प्रकार सोचकर उन्होंने अपने गाण्डीव धनुष पर बाण सन्धान किया उधर शिव जी ने तुरन्त ही उस वराह को लक्ष्य करके अपने पिनाक धनुष से बाण चलाया। उस बाण ने वराह के शरीर को विद्ध कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। अर्जुन के द्वारा छोड़ा हुआ बाण भी उसी समय लक्ष्य को विद्ध कर पार चला गया। मृत वराह के पास अर्जुन अपना बाण लेने गये। उसी समय शिव जी द्वारा भेजा हुआ किरात उसको अपने स्वामी के नाम पर माँगने लगा तथा अर्जुन को बाण लौटाने के लिए अनेक प्रकार से समझा कर कहा।

चतुर्दश सर्ग—उस वनेचर के गर्वीले वचनप्रपंचों द्वारा प्रस्तुत किए हुए माँग को अर्जुन ने एक लम्बे भाषण द्वारा अस्वीकार कर दिया। उसके प्रत्याख्यान को सुनकर वह वनेचर अपनी गर्वोक्ति से अर्जुन को डराता हुआ महादेवजी के पास चला गया। बाद में शिवजी की आज्ञा से किरात-सेना गरजती हुई अर्जुन से युद्धार्थ चल पड़ी। शिवजी भी अपना पिनाक धनुष तान कर सेना के अधिपति बने। शिवजी के वे सब गण पहुँचते ही एक बार ही अर्जुन पर टूट पड़े परन्तु उनके द्वारा अनेकों अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार करने पर भी अर्जुन का एक बाल भी

बाँका नहीं हुआ। बाद में अर्जुन गाण्डीव लेकर युद्धार्थ किरात सेना पर टूट पड़े। उनकी बाणवृष्टि से सारी किरात-सेना मूर्छित हो गई।

पंचदश सर्ग—इस सर्ग में शिवजी और अर्जुन के युद्ध का वर्णन है। वीर अर्जुन के बाणप्रहारों से सारे भूतवर्ग संत्रस्त हो गये। शिवजी की सेना अपने आयुधों को छोड़कर भाग गई। उन सैनिकों को कार्त्तिकेय समझाने लगे। शिव और स्कन्ध भागते हुए अपने गणों को पुनः एकत्र करते हैं। शिवजी ने उनको अभयवाक्य देकर सन्तुष्ट किया। बाद में शिव और अर्जुन में घोर युद्ध होने लगा। शिवजी ने अर्जुन द्वारा फेंके हुए बाणों को बड़ी चतुरता से काट दिया। अर्जुन भी शिवबाणों को छिन्न-भिन्नकर समर-भूमि में विचरने लगे। शिवजी ने दयार्द्र होकर मर्मवेधी बाणों को नहीं फेंका। अर्जुन भी उनके अनेक बाणों से आहत होकर भी नहीं घबड़ाए। इनके रोमांचकारी युद्ध को देखकर देवता, महर्षि तथा प्रमथादि गण सभी विस्मित हो गए।

षोडश सर्ग—अर्जुन किरातपति की संग्राम-कुशलता देख कर विस्मित हो गए। उन्होंने दिव्यास्त्रप्रयोग द्वारा ही शत्रु के पराक्रम को विफल करना चाहा। यह सोचकर गांडीव धनुष पर प्रस्वापन नामक महास्त्र चढ़ाया। उसके प्रभाव से सारी सेना मूर्च्छिन्न हो गई तथा सर्वत्र अन्धकार छा गया। उस समय किरात वेशधारी शिव जी के ललाट से क्रोध के मारे आग की चिनगारी निकलने लगी। उसके प्रकाश से अन्धकाररहित होकर प्रमथ गण मूर्छा त्याग कर पुनः युद्धार्थ सन्नद्ध हो गए। अर्जुन ने प्रस्वापनास्त्र को विफल जानकर नागपाशों को चढ़ाया। उसके प्रभाव को दूर करने के लिए शिवजी ने गरुडास्त्र का प्रयोग किया। तदनन्तर अर्जुन ने आग्नेयास्त्र द्वारा चारों ओर आग की लपटें फैला दीं। भगवान् शंकर ने आग को शान्त करने के लिए वारुणास्त्र का प्रयोग किया। इसके प्रभाव से आकाश मेघाच्छन्न हो गया तथा मूसलाधार वृष्टि होने लगी। इस प्रकार अर्जुन ने अपने सभी अस्त्रों को विफल होते देख शिवजी के साथ बाहु युद्ध ही करने की इच्छा की।

सप्तदश सर्ग—सारे दिव्यास्त्रों के समाप्त होने पर यद्यपि अर्जुन भयभीत हुए तथापि धैर्य धारण कर पुनः युद्धार्थ संनद्ध हो गए। अर्जुन के बाणों से

BVBSSMV

आहत होकर शिवजी की सारी सेना थर्रा गई। भगवान् शंकर ने तुमुल युद्ध करके अर्जुन के सारे बाणों को एक साथ ही नष्ट कर दिया। फिर मर्मवेधी बाणों से अर्जुन को व्यथित किया। वे कवचहीन होकर भी अत्यन्त देदीप्यमान हुए। उनका खड्ग भी शिव जी ने छिन्न-भिन्न कर दिया। तब वे बड़ी-बड़ी चट्टानों और बड़े-बड़े पेड़ों के तनों से शिवजी पर आक्रमण करने लगे पर सब कुछ निष्फल ही रहा।

अष्टदश सर्ग––निःशस्त्र होने पर अर्जुन ने शिवजी के साथ बाहुयुद्ध करना निश्चित किया। दोनों के बाहुयुद्ध से उत्पन्न ध्वनि उस समय कन्दराओं में व्याप्त थी। दोनों का शरीर रुधिर से लथपथ था जिससे पहचानने में प्रमथगणों को भी धोखा होता था। बाहुयुद्ध करते-करते अर्जुन ने आकाश में उठे हुए शिवजी के चरणों को पकड़ लिया। पादग्रहण करते ही शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें गले लगा लिया। तदनन्तर किरात वेश का परित्याग कर भगवान् शंकर भस्मावृत चन्द्रकला से शोभित होकर अपने स्वरूप में प्रकट हो गए। उनके उस रूप को देख कर अर्जुन उनके सामने नतमस्तक हो गये। अर्जुन उठकर अपने शरीर को बाण, कवच, चर्म आदि से युक्त देख कर अत्यन्त विस्मित हुए। तब अर्जुन ने भगवान् शंकर से अभीष्ट वर माँगा। तदनन्तर आशुतोष शिवजी ने नतमस्तक अर्जुन को सान्त्वना देकर गुप्त रहस्य के साथ पाशुपतास्त्र और समग्र धनुर्वेद पढ़ाया। इन्द्रादि ने भी अमोघ आशीर्वादपूर्वक अपने-अपने अस्त्रों को देकर अर्जुन को प्रोत्साहित किया। अन्त में सफलमनोरथ अर्जुन शिवजी से आदिष्ट होकर धर्मावतार महाराज युधिष्ठिर के पास लौट आए।

महाभारत की कथा से किरात में भारविकृत परिवर्तन

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य का मूलस्रोत महाभारत है। इसका कथानक बहुत कुछ मूलस्रोत के समीप है और साम्य होते हुए भी भारवि ने यत्र तत्र परिवर्तन अपने लक्ष्य की सिद्धि की दृष्टि से किए हैं। प्रथम, द्वितीय सर्ग में द्रौपदी, भीम और युधिष्ठिर के संवादों के कारण कथानक का प्रारंभिक भाग अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं सजीव हो गया है। तृतीय सर्ग में व्यास का युधिष्ठिर

को उपदेश देना कवि की कल्पना है। महाभारत की मूलकथा में व्यास का कुछ स्थान नहीं है और युधिष्ठिर आदि का वार्तालाप भी महत्त्वहीन है। प्रारंभ में ही भारवि ने राजनीति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। कवि द्वारा कर्मयोग के दार्शनिक सिद्धान्तों का उपदेश देकर संन्यास तथा शान्ति के सिद्धान्तों का खण्डन-सा कर दिया गया है। भारवि ने ग्यारहवें सर्ग में इन्द्रार्जुन संवाद द्वारा निवृत्तिमूलक संन्यासवाद का खण्डन कर प्रवृत्तिपरक व्यवहारवाद की स्थापना की है।

महाभारत में व्यास ने युधिष्ठिर को मन्त्र दीक्षा दी है तथा युधिष्ठिर द्वारा अर्जुन को मन्त्र दिया गया है। किन्तु किरात में भारवि ने व्यास ही द्वारा अर्जुन को मन्त्र दिलाया है। इ स प्रकार उनका काव्य मूलकथा के अनावश्यक विस्तार से वच गया।

मूलकथा में मन्त्र के वल पर अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचते हैं पर किरातार्जुनीय में व्यास की आज्ञा से वे यक्ष द्वारा वहाँ पहुँचाए जाते हैं।

मार्ग में आये हुए हिमालय, गन्धमादन और इन्द्रकील पर्वतों का वर्णन जोड़कर किरात को महाकाव्यत्व प्रदान किया गया है। इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचकर अर्जुन ने घोर तप किया। उनकी तपश्चर्या का वर्णन करना तथा उससे चराचर का प्रभावित होना कवि की अपनी निजी कल्पना है। महाभारत में इसका उल्लेख नहीं है।

मूलकथा में तपस्यारत अर्जुन को इन्द्र ने तप से विरत होने का उपदेश दिया है किन्तु किरात में इन्द्र वनेचरों द्वारा अर्जुन के तपोऽनुष्ठान का वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए पर हर्ष का वेग रोकते हुए उनकी तपस्या के परीक्षणार्थ गन्धर्वों और अप्सराओं को भेजा। उन्होंने जाकर अनेक साधनों द्वारा अर्जुन को डिगाना चाहा पर उनकी दृढ़ता से वे सव अपने प्रयत्नों में विफल होकर लौट गये। गन्धर्वों के साथ अप्सराओं के विलासपूर्वक क्रीडादि के वर्णन ने महाकाव्य में चार चाँद लगा दिये हैं। इससे कवि को सन्ध्या, रात्रि, सुरतादि वर्णन करने का अच्छा अवसर मिल गया है जो महाकाव्य के सर्वथा अनुकूल है। महाभारत में शिव को पार्वती और कुछ गणों के साथ

किरात वेश में आते हुए दिखाया गया है तथा शिव और अर्जुन का मल्लयुद्ध वर्णन किया है। पार्वती तथा गणलोग केवल दर्शक रूप में उपस्थित हैं उन्होंने स्वयं कोई भाग युद्ध में नहीं लिया पर किरात में स्कन्द के सेनापतित्व में शिव सहित उनकी सेना के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ है जिसमें अर्जुन ने विजय पाई। फिर स्वयं शिव ने किरातवेश में मायावी अस्त्रों द्वारा अर्जुन से युद्ध किया जिसमें अर्जुन के सारे अस्त्र विफल हो गये। तदनन्तर दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा। इस प्रकार शिव और अर्जुन के युद्ध का वर्णन चार सर्गों में अर्थात् पन्द्रह से अठारह तक अत्यन्त रोमहर्षण एवं सजीव हुआ है। इसमें कवि को युद्ध के दृश्य, मायावी अस्त्रों और समग्ररूप से सेना के वर्णन का अवसर प्राप्त हो जाता है। दोनों में युद्ध की समाप्ति में बड़ी विभिन्नता है। महाभारत के अनुसार किरात से युद्ध करता हुआ अर्जुन मूर्च्छित हो गया और मूर्च्छानिवृत्ति के बाद उसने देखा कि जो माला अर्जुन ने प्रातःकाल शिव की पार्थिव मूर्त्ति पर चढ़ाई थी वह किरात के सिर पर विराजमान है। इससे वह समझ गया कि किरात स्वयं शिव ही है। इसके विपरीत किरात में वर्णन है कि शिव मल्लयुद्ध करते-करते उछल कर आकाश की ओर चले जा रहे थे किन्तु अर्जुन ने कूद कर तुरन्त ही नीचे से उनके चरण पकड़ लिए। आशुतोष भगवान् शंकर इस पर बहुत प्रसन्न हुए और स्वयं प्रकट होकर दर्शन दिया। महाभारत के अनुसार अर्जुन पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के पश्चात् स्वर्ग दर्शनार्थ जाते हैं। वहाँ से भाइयों के पास लौटते समय तक बहुत से आख्यान तथा उपाख्यानों का वर्णन मिलता है जिससे कथानक में शिथिलता आ जाती है। किन्तु किरात में पाशुपताम्त्र की प्राप्ति के बाद अर्जुन अविलम्ब लौटकर अपने भाइयों एवं द्रौपदी से मिलते हैं।

भारवि की काव्य प्रतिभा

कालिदास के समय से भारवि के समय तक आते-आते काव्य का रूप बदलता गया। अब कवियों की अभिरुचि कलापक्ष में कृत्रिम सौन्दर्य अधिक मात्रा में लाने की हो गई। कालिदास और भारवि के बीच किसी काव्य का पता नहीं केवल मन्दसोर का वत्सभट्टि रचित शिलालेख ही पाया जाता है।

भारवि स्पष्टतः कलापक्ष के कवि हैं। उनका विशेष ध्यान अर्थगाम्भीर्य पर रहा है। इसीलिए पुराने समीक्षकों ने 'भारवेरर्थगौरवम्' कहा है। कला के सम्बन्ध में स्वयं उनका मत किरात के द्वितीय सर्ग के निम्नलिखित २७वें श्लोक से पता चलता है :—

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ॥

अर्थात् काव्य के पद प्रयोग में अस्पष्टता न हो, अर्थगांभीर्य पर विशेषरूप से ध्यान दिया जाय, वाणी से अर्थ में पुनरुक्ति न हो और अर्थसामर्थ्य नष्ट न हो। वस्तुतः थोड़े शब्दों में विपुल अर्थ की अभिव्यक्ति ही अर्थ गौरव है जिसे दूसरे शब्दों में 'गागर में सागर भरना' कहते हैं। मल्लिनाथ की 'घण्टापथ' नाम की टीका का यह श्लोक द्रष्टव्य है :—

नारिकेलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते ।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम् ॥

मल्लिनाथ ने भारवि के वचन को 'नारिकेलफलसम्मित' तथा 'रसगर्भनिर्भरसार' बताया है जिसका आशय है कि वह बाहर से कठोर और भीतर रसपेशल किन्तु सारमय है। कृष्ण कवि ने उनके सम्बन्ध में कहा है :—

प्रदेश वृत्यापि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना ।
सा भारवेः सत्पथदीपिकेव रम्या कृतिः कैरिव नोपजीव्या ॥

वास्तव में भारवि की कृति महान् अर्थयुक्त तथा रस से ओतप्रोत है। एक समालोचक ने 'प्रकृतिमधुरा भारविगिरः' कहा है। शारदातनय के अनुसार उनकी वाणी में भाव और रस का तादात्म्य है 'तादात्म्यं भावरसयोः भारविः स्पष्टमूचिवान्'। किरात के प्रथम सर्ग का वनेचर तक 'सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी' और 'विनिश्चितार्था' वाणी का प्रयोग कर सकता है। वह 'प्रवत्तिसारा' वाणी से युधिष्ठिर को प्रभावित करने में समर्थ है। भारवि अत्यधिक गम्भीर अर्थ को प्रचलित और सरल शब्दों में सन्निविष्ट कर देते हैं। उनका विश्वास निम्नांकित छन्द में निहित है :—

विविक्तवर्णाभरणासुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम् ।
प्रवर्त्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगंभीरपदा सरस्वती ।।

(किरात० १४।३)

अर्थात् स्फुटवर्ण ही जिसके आभूषण हों, जो कर्णसुखद हो, शत्रु को भी आनन्दविधायक हो तथा जिसके अर्थ गौरवशाली हों ऐसी वाणी का विकास बिना पुण्य के नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि प्रसादगुणयुक्त किन्तु अर्थगांभीर्य से सम्पन्न शैली भारवि की विशेषता है। द्रौपदी की वाणी इतनी अर्थगाम्भीर्य मण्डिता है कि बृहस्पति वागधिप होते हुए भी विस्मित हो जाते हैं 'अपि वागधिपस्य दुर्वचं वचनं तद्विदधीत विस्मयम्।' उसका वचन व्यथितकारी होते हुए भी परिणाम में सुखद है :—

परिणामसुखे गरीयसि व्यथकेऽस्मिन् क्षतौजसाम् ।
अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः ।।

(किरात० २।४)

कवि का अर्थगौरव निम्नलिखित सूक्तियों से स्पष्ट विदित होता है जिससे उसने अपने विशाल व्यावहारिक ज्ञान को स्वल्प शब्दों में सन्निविष्ट कर दिया है :—

'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः'। 'दुर्लभाः सर्वमनोरमाः गिरः'। विचित्ररूपाः खलुचित्तवृत्तयः, वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु, सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः। भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः इत्यादि।

राजनीति के पाँच अंगों से निर्धारित नीति राजकोष और सेना का उद्गम इस श्लोक में बतलाया गया है।

प्रभवः खलु कोशदण्डयोः कृतपंचांगविनिर्णयो नयः ।
स विधेयपदेषु दक्षतां नियंति लोक इवानुरुध्यते ।।

(किरात० २।१२)

सदा अपकार करने वाले राजा के साथ की गई सन्धि को भंग कर देना चाहिए :—

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः ।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशाः विदधति सोपधिसन्धिदूषणानि ।।
(किरात० १।४६)

सफल क्रोध वाले मनुष्य के सभी वशीभूत हो जाते हैं किन्तु क्रोधहीन व्यक्ति उपेक्षित रहता है :—

अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः ।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना, न जातु हार्देन न विद्विषादरः ।।
(किरात० १,३३)

शत्रु की दुरन्त उन्नति भी सह्य है पर सुखद परिणामवाली हानि नहीं :—

द्विषतामुदयः सुमेधसा गुरुरस्वन्ततरः सुमर्षणः ।
न महानपि भूतिमिच्छता फलसम्पत्प्रवणः परिक्षयः ।।२।८।

समयानुकूल मृदुता एवं तिग्मता धारण करने वाला राजा सूर्यप्रकाश के समान सम्पूर्ण लोक पर अपना आधिपत्य जमा लेता है :—

समवृत्तिरुपैति मार्दवं समये यश्च तनोति तिग्मताम् ।
अधितिष्ठति लोकमोजसा स विवस्वानिव मेदिनीपतिः ।।२।३८

इसके अतिरिक्त भारवि ने अपने चरित्र-चित्रण एवं प्रकृति-चित्रण में भी अर्थगौरव का सन्निवेश किया है। उनके पात्रों में बड़ी सजीवता है। आजन्म बनवासी वनचेर प्रणाम करके सत्य बात कहने में अपनी शिष्टता का परिचय देता है। अपमानज्वालासंतप्ता द्रौपदी भी शिष्टतापूर्वक अपने पति युधिष्ठिर से कहती है :—

भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम् ।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां निरस्तनारी समया दुराधयः ।।
(किरात० १,२८)

प्रकृति-चित्रण में सन्ध्या समय चरागाह से लौटती हुई गायों का कितना स्वाभाविक वर्णन निम्नलिखित श्लोक में किया गया है :—

उपारताः पश्चिमरात्रगोचरादपारयन्तः पतितुं जवेन गाम् ।
तमुत्सुकाचक्षु रवेक्षणोत्सुकं गवां गणाः प्रस्नुतपीवरोधसः ॥

(किरात० ४,१०)

इस श्लोक में भारवि ने वात्सल्यरस की मानो वर्षा कर दी है।

छन्द और व्याकरण के अनूठे प्रयोगों से भी अर्थगौरव भरने की चेष्टा की है। पन्द्रहवें सर्ग में चित्रकाव्य के रूप में सर्वतोभद्र विलोम के साथ-साथ एकाक्षर श्लोक इसके प्रमाण हैं। इस प्रकार भारवि ने अपने काव्य में प्रत्येक पहलू से अर्थ गौरव को सन्निवेश करने की सफल चेष्टा की है इसीलिए कीथ[1] ने कहा है :—

"इसमें सन्देह नहीं कि भारवि की वर्णन शक्ति और अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में उनकी शैली में एक शान्तिपूर्ण गौरव है, जो सचमुच आकर्षक है। साथ ही वे प्रकृति और युवतियों के सौन्दर्य के निरीक्षण तथा चित्रण में भी सर्वातिशायी हैं।"

अन्ततः इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारवि का अर्थगाम्भीर्य अत्युत्कृष्ट है। उसमें वे सब कवियों को अतिक्रान्त कर जाते हैं।

शैली—उनकी वर्णन-शैली बड़ी अद्भुत है, शान्त गौरव से ओत-प्रोत एवं आकर्षक है, प्रकृति और युवती की सुन्दरता को आँकने में उनकी निरीक्षण शक्ति बड़ी विलक्षण है। शरद्वर्णन के अन्तर्गत यह श्लोक इस विषय में द्रष्टव्य है :—

---

1. There is no doubt of the power of Bharvi in description, his style at its best has a calm dignity which is certainly attractive, while he excels also in the observation and record of the beauties and of maidens.

A History of Sanskrit Literature by A. B. Keith Page 112.

मुखैरसौ विद्रुमभंगलोहतैः शिखाः पिशंगी कलमस्य बिभ्रती ।
शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला धनुःश्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति ।।

(किरात० ४।३६)

अर्थात् वह शुकावलि अपने प्रवाल के टुकड़े के समान लाल रंग के चंचुओं से पीले रंग की धान की फलसंयुक्त शिखा धारण करती हुई विकसित शिरीषपुष्प के रंग की इन्द्रधनुष की शोभा का अनुकरण कर रही है। (इन्द्र-धनुष में अनेक रंग पाये जाते हैं) इसी प्रकार इन तोतों के समूहों में विविध रंग (चोंचे लाल, धान की बालि पीली और उनके वदन का रंग हरा तथा गले में पड़ी हुई रेखा अनेक रंग की होती है) होने से उसकी और इन्द्रधनुष की समानता हो रही है।

भारवि में कालिदास जैसा कथा-प्रवाह नहीं है। उनकी कथावर्णन-शैली मन्द मन्थर गति से चलती है। कालिदास अपनी कथा के मध्य आए हुए सुन्दर वर्णन पर प्रकाश डालते हैं पर पाठक के ऊबने के पूर्व ही कथासूत्र पकड़ कर आगे बढ़ चलते हैं। पर भारवि इसके विपरीत कथा-प्रसंग के मध्य आये हुए वर्ण्य विषय के सम्बन्ध में अलंकार वैचित्र्य कल्पनासंपत्ति पूरी समाप्त करके आगे बढ़ते हैं। पाठक के ऊबने का ध्यान नहीं रखते। इस प्रकार के वर्णन से प्रबन्धकाव्य का प्रवाह बार-बार रुक जाता है तथा प्रभावोत्पादकता में कमी पड़ जाती है। पर किरात में कई स्थल प्रभावोत्पादकता से पूर्ण हैं। भारवि वीर तथा शृंगार रस के कवि हैं। दूसरे सर्ग में भीम की उक्तियाँ वीर रसोचित दर्प से परिपूर्ण हैं। वे अपने बाहुबल से राज्य प्राप्त करना चाहते हैं जैसे सिंह अपने हाथों से मारे हुए हाथियों से ही अपनी जीविका का निर्वाह करता है :—

मदसिक्तमुखैर्मृगाधिपः करिभिर्वर्तयते स्वयंहतैः ।
लंघयन् खलुतेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः ।।

(किरात० २।१८)

इसके साथ ही अर्जुन की वीरता का चित्र अग्रलिखित श्लोक में द्रष्टव्य है :—

उन्मज्जन्मकर इवामरापगाया वेगेन प्रतिमुखमेत्य बाणनद्याः ।
गाण्डीवी कनकशिलानिभं भुजाभ्यामाजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः ।।

(किरात० १७,६३)

अर्थात् अर्जुन वेग से बाणों की नदी के सामने निकलकर उसी प्रकार आया जैसे मगर वेग से गंगा के जल को चीरकर सतह के ऊपर उठ आता है और उसने त्र्यम्बक शिव के सुवर्णशिला के समान दृढ़ तथा विस्तीर्ण वक्षःस्थल पर दोनों भुजाओं से जोर से प्रहार किया।

इस श्लोक से भारवि के नादानुकृति का गुण पाया जाता है। पूर्वार्ध की लय में स्वयं उछलते हुए अर्जुन का चित्र खींचा गया है तो 'आजघ्ने' की नादानुवृत्ति ऐसी है जैसे किसी कठोर वस्तु पर चोट पड़ रही हो। प्रहर्षिणी छन्द से भी वर्णन की चित्रमत्ता में सहायता मिलती है।

भारवि में दीर्घ समासों का प्रयोग नहीं मिलता। समूचे रूप में विचार करने पर उनकी शैली में क्लिष्टता का दोष नहीं पाया जाता। दुर्योधन के प्रति उसकी प्रजा की भक्ति कितने बोधगम्य एवं सुस्पष्ट शब्दों में अंकित है :—

महौजसो मानधना धनार्चिता धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः ।
न संहतास्तस्य न भिन्नवृत्तयः प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम् ।।

(किरात० १।१६)

किरातार्जुनीय के आठवें, नवें तथा दशवें सर्ग में शृंगार रस के कतिपय सरस स्थल हैं। अप्सराओं के वन विहार, पुष्पावचय, जलक्रीड़ा तथा सुरति के वर्णन से भारवि की प्रणयकलाकुशलता का अच्छा परिचय मिलता है :—

विहस्य पाणौ विधृते घृताम्भसि प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः ।
सखीव काञ्ची पयसा घनीकृता बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम् ।।

(किरात० ८।५११)

जलविहार करते समय किसी नायिका ने हाथ में जल लेकर नायक पर उछालना चाहा, इसे देख कर उसके प्रिय गन्धर्व ने हँसकर उसका हाथ पकड़

लिया । अतएव कामासक्त होने के कारण उस नायिका का नीवीबन्धन ढीला हो गया । पर पानी से खींचे गए उसके अंशुक को करधनी ने इस प्रकार रोक लिया जैसे एक सखी अपनी सखी की लाज रखने के लिए करती है । नीवी के ढीली पड़ने पर भी करधनी के कारण वह विवस्त्र नहीं होने पाई । किरात के इन तीन सर्गों में शृंगार वर्णन मुक्तशृंगार वर्णनों का समूह सा दिखाई पड़ता है । अष्टम सर्ग में नायक की परांगनासक्ति से कुपिता एक खण्डिता मुग्धा का उदाहरण द्रष्टव्य है—

प्रयच्छतोच्चैः कुसुमानि मानिनी विपक्षगोत्रं दयितेन लंभिता ।
न किञ्चिदूचे चरणेन केवलं लिलेख वाष्पाकुललोचना भुवम् ।।

(किरात० ८।१४)

अर्थात् एक अप्सरा, जिस समय उसका प्रेमी गन्धर्व भ्रमवश उसकी सपत्नी के नाम से उसे संबोधित कर पुष्पों का गुच्छा प्रदान कर रहा था, मान का आश्रय ले लिया पर बोली कुछ नहीं केवल अश्रुमुखी होकर पैर से भूमि खोदने लगी । यह मानाभिव्यक्ति का कैसा अनूठा ढंग है ।

भारवि ने प्रकृति के उद्दीपन तथा आलंबन दोनों का ही वर्णन किया है । नवम सर्ग में सूर्यास्तवर्णन, रात्रिवर्णन तथा प्रभात्-वर्णन शृंगार के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आवेंगे । चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में आलंबन विभाव वर्णित है । उनके नीचे के श्लोक में अप्रस्तुत विधान को बड़ी सुन्दर कल्पना है जिससे मुग्ध होकर पण्डितों ने उन्हें 'आतपत्रभारवि' की उपाधि दी थी ।

उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद्भूतः सरसिजसंभवः परागः ।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ।।

(किरात० ५।६६)

अर्थात् स्थलकमलों के वन के वन खिले हुए हैं । उनसे पीत पराग झर रहे हैं । हवा झोंके से बह रही है । वह पराग को उड़ाकर आकाश में फैलाकर मण्डलाकार बना रही है और मण्डलाकृति पराग समूह ऐसा प्रतीत होता है

जैसे सुवर्ण छत्र की शोभा को धारण कर रहा हो। यह ऐसी अनूठी कल्पना है कि इसी के कारण वे 'आतपत्र भारवि' कहलाए।

किरातार्जुनीय में साधर्म्य मूलक अर्थालंकारों का अच्छा प्रयोग है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, निर्दशना, दृष्टान्त, समासोक्ति आदि अलंकारों का बहुत प्रयोग हुआ है। पन्द्रहवाँ सर्ग उनकी अलंकार प्रियता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसमें यमक, सर्वतोभद्र, विलोम, प्रहेलिका, चक्रबन्ध आदि चित्रकाव्य का प्रयोग किया गया है। नीचे के पद्य में उपमा का सरस शृंगारी प्रयोग है :—

ततः स कूजत्कलहंसमेखलां सपाकसस्याहितपाण्डुतागुणम्।
उपाससादोपजनं जनप्रियः प्रियामिवासादितयौवनां भुवम् ॥४,१॥

अर्थात् लोकप्रिय अर्जुन कृषिकादिजनों से युक्त पृथ्वी के पास उसी तरह गया जैसे कोई नायक प्राप्तयौवना प्रेयसी के पास जाता है। शरद् भूमि पर कलहंस उसी प्रकार शब्द कर रहे थे जैसे नायिका की करधनी शब्द कर रही हो।

प्रकृतिवर्णन में रूपक का अप्रस्तुतविधान द्रष्टव्य है :—

विपाण्डु संव्यानमिवानिलोद्धतं
निरुन्धतीः सप्तपलाशजं रजः।
अनाविलोन्मीलितबाणचक्षुषः
सपुष्पहासा वनराजियोषितः ॥४,२८॥

अर्थात् अर्जुन ने उन वनपंक्तिरूपी युवतियों को देखा जो वायु से विकीर्ण सप्तपर्ण के पीत पराग को वायु से उड़ते हुए उत्तरीय की तरह सम्हाल रही थीं, जिनके सुन्दर बाणपुष्पों के निर्मलनेत्र उत्फुल्ल हो रहे थे तथा जो पुष्पों के विकास रूपी हास से युक्त थीं।

पंचम सर्ग में यमक की बहुलता है। यमक के कई प्रकार के रूप यहाँ पर देखे जाते हैं। उनका श्लेष अर्थालंकार का अंग बन जाता है, शुद्ध श्लेष नहीं रह जाता। निम्नांकित श्लोक श्लेषानुप्राणिता उपमा का उदाहरण है :—

कथाप्रसंगेन जनैरुदाहृतादनुस्मृताखंडलसूनुविक्रमः ।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः सुदुःसहान्मंत्रपदादिवोरगः ॥

(किरात० १।२४)

अर्थात् जिस तरह सर्प विषवैद्य के द्वारा उच्चारित गरुड़ और वासुकि के नामयुक्त असह्य मंत्र से विष्णु के पक्षी गरुड़ के पराक्रम का स्मरण कर अपने फण को नीचे गिरा देता है उसी तरह जनसमूह की चर्चा में जब युधिष्ठिर का नाम किसी के मुँह से निकल आता है तो अर्जुन की वीरता को स्मरण कर चिंता के कारण दुर्योधन नतमस्तक हो जाता है।

किरात के वर्णन अत्यन्त सजीव एवं रोचक हैं। किरात का कथानक छोटा है पर भारवि ने प्राकृतिक एवं अलंकारिक वर्णनों से विशाल बना दिया है। चौथे सर्ग से ग्यारहवें तक अलंकृत शैली के बल पर कवि ने काव्य का विस्तार किया है।

भारवि व्याकरण सम्बन्धी निपुणता प्रदर्शित करने के अनुरागी हैं। वे कई प्रकार से उत्तरकालीन कवियों में सधे हुए शब्दों के बार-बार प्रयोग करने की प्रवृत्ति के पथप्रदर्शक हैं। उसकी पुष्टि में तन का प्रयोग बाहुल्य, उपसर्ग और गति से निर्मित सामासिक अव्यय पदों का प्रयोग, शास्त्र धातु का द्विकर्मक प्रयोग, दर्शयते का आत्मने पद में प्रयोग, अनुजीविसात्कृताः, स्तनोपपीडम्, दो निषेधात्मक प्रयोग करके विध्यात्मक बनाना (यथा न निवृत्तम्) आदि उद्धृत किए जा सकते हैं। भारवि ने लङ और लुङ लकारों का अपरोक्ष प्रयोग किया है तथा लङ का अनद्यतने भी। लुङ का प्रयोग दस बार किरात में आया है। आह और वेद को छोड़ कर अन्य सभी लिट् लकार के रूपों को कथावर्णन में प्रयुक्त किया गया है। व्याकरण की अशुद्धियाँ बहुत कम हैं पर आजघ्ने का प्रयोग किसी प्रकार साधु नहीं माना जा सकता।

छन्दों के प्रयोग में भारवि उतने ही बढ़े हुए हैं जितने कि अलंकारों के प्रयोग में। पाँचवें तथा अठारहवें सर्ग में सोलह-सोलह प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। बारहवें में तो केवल अन्तिम श्लोक में प्रहर्षिणी को छोड़ कर शेष सभी उद्गाता छन्द हैं। इन्दवज्रा की कोटि का उपजाति छन्द तीसरे,

सोलहवें और सत्रहवें में प्रधानरूप से प्रयुक्त हुआ है। वंशस्थ पहले, चौथे और चौदहवें में, वैतालीय दूसरे में, द्रुतविलम्बित अठारहवें में, प्रमिताक्षरा छठवें में, रथोद्धता तेरहवें सर्ग में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है, किन्तु शालिनी, मालिनी, प्रभा और शिखरिणी का प्रयोग बहुत कम हुआ है। पन्द्रहवें सर्ग में एक श्लोक में प्रथम और तृतीय तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण समान हैं एक में वस्तुतः च और र ही हैं दूसरे में स, श, ल और य। एक दूसरे पद्य में प्रत्येक चरण को उल्टा पढ़ने से अगला चरण मिल जाता है और पूरे श्लोक को उल्टा पढ़ने से अगला। एक श्लोक सीधा और उल्टा दोनों ओर से पढ़ने पर ज्यों का त्यों एक ही रहता है। भारवि ने एकक्षर, द्वयक्षर श्लोकों की रचना इसमें की है। इनका प्रयोग संस्कृत महाकाव्यों में प्रथम बार यहाँ पर हुआ है। श्लोक में भारवि साधारणतः उन्हीं नियमों का पालन करते हैं जिनका कि कालिदास, किन्तु विपुला के चतुर्थ भेद का प्रयोग वे कदापि नहीं करते, इसके विपरीत कालिदास को तृतीय विपुला ही सर्वाधिक प्रिय है।

भारवि तथा माघ

अनेक विद्वानों का मत है कि माघ ने भारवि की स्पर्धा कर उन्हें अतिक्रान्त करने के लिए अपना शिशुपालवध महाकाव्य लिखा। इस सम्बन्ध में यह श्लोक उद्धृत किया जाता है :—

माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे ।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा ।।

स्वर्गीय पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय के शब्दों में 'माघ का आदर्श भारविकृत किरातार्जुनीय था' इस बात का स्पष्टीकरण दोनों महाकाव्यों की पारस्परिक तुलना से हो जाता है :—

माघ ने अपने पूर्ववर्ती भारवि से बढ़ जाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया। दोनों का कथानक महाभारत से लिया गया है। दोनों में आरम्भ 'श्री' शब्द से होता है यथा—श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।। (किरात०)

श्रियःपतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि (शिशुपाल०) प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'श्री' के पर्यायवाची लक्ष्मी का प्रयोग भारवि ने किया है पर माघ ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'श्री' शब्द का ही प्रयोग कर अधिक चमत्कार ला दिया है। दोनों के प्रथम सर्ग में सन्देशकथन है। किरात में वनेचर द्वारा दुर्योधन का प्रसंग युधिष्ठिर के प्रति और माघ में नारद के द्वारा शिशुपालवध का प्रसंग श्रीकृष्ण के प्रति। इसमें शिशुपाल के जन्मान्तरीय दुराचारों का वर्णन विशदरूप से किया गया है। किरात में प्रथम सर्ग में द्रौपदी तथा द्वितीय सर्ग में भीमसेन के मुख से ओजस्वितापूर्ण और युधिष्ठिर के मुख से अतिशय शान्तिपूर्ण राजनीतिविषयक प्रसंग उपस्थित किया गया है तो शिशुपाल-वध में भी द्वितीय सर्ग में ही वलराम जी के मुख से ओजस्वितापूर्ण तथा उद्धव के मुख से शान्तिपूर्ण राजनीति का उत्तम प्रसंग उपस्थित किया गया है। तृतीय सर्ग में किरात में अर्जुन की यात्रा का वर्णन है तो माघ ने भी इसी सर्ग में श्रीकृष्ण भगवान् की यात्रा का सुन्दर वर्णन किया है तथा नागरिकों की अवस्था के वर्णन से उत्कृष्ट वना दिया है। किरात में महर्षि वेदव्यास पाण्डवों को मार्ग प्रदर्शन करते हैं तो माघ में देवर्षि नारद ऐसा ही करते हैं। किरात में अर्जुन तपश्चर्यार्थ इन्द्रकील पर्वत पर जाते हैं तो शिशुपाल वध में श्रीकृष्ण रैवतक पर्वत के समीप ठहरते हैं। भारवि ने चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में हिमालय एवं शरद् ऋतु का वर्णन विविध छन्दों में किया है और अर्जुन को ले जाने वाले यक्ष के मुख से शरद् ऋतु का वर्णन कराया है तो माघ ने भी शिशुपालवध के उन्हीं सर्गों में रैवतक पर्वत तथा वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का अत्यन्त हृदयहारी वर्णन प्रस्तुत किया है तथा श्रीकृष्ण को ले जाने वाले दारुक के मुख से रैवतक पर्वत का सुन्दर वर्णन कराया है। यमकालंकारों का आश्रय दोनों महाकवियों ने लिया है। अष्टम सर्ग में भारवि द्वारा गन्धर्वों तथा अप्सराओं के पुष्पावचन तथा जलक्रीड़ा का वर्णन किया गया है तो माघ ने भी सप्तम सर्ग में यादवों के साथ यादवांगनाओं के पुष्पावचय का और अष्टम सर्ग में उनकी जलक्रीड़ा का मनोहर एवं विशद वर्णन किया है। किरात के सप्तम सर्ग में गन्धर्व तथा अप्सराओं के सेनानिवेश का वर्णन है तो शिशुपालवध के पंचम सर्ग में ही श्रीकृष्ण के सेनानिवेश का अत्यन्त विशद एवं मनोहारी वर्णन किया गया है। भारवि

ने नवम सर्ग में सन्ध्या, चन्द्रोदय, सुरतादि का वर्णन किया है तो माघ ने भी नवम सर्ग में सन्ध्या तथा चन्द्रोदय का और दशम सर्ग में पानगोष्ठी एवं सुरत का विस्तृत वर्णन किया है। किरात में तपःसंलग्न अर्जुन की तपस्या में विघ्न उपस्थित करने के हेतु इन्द्र द्वारा देवांगनाएँ प्रेषित की गई हैं तो शिशुपालवध में यादवांगनाओं के उत्कृष्ट शृंगार वर्णन द्वारा कवि ने अपनी कृति को किरात से श्रेष्ठ प्रमाणित कर दिया है। दोनों कवियों के प्रभात-वर्णन में अत्यधिक समानता है। भारवि ने अर्जुन की घोर तपस्या का वर्णन किया है तो माघ द्वारा भी महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ-सभा तथा राजसूय यज्ञ का वर्णन विस्तार से किया गया है। भारवि शैव थे जिनका काव्य शिव के वरदान के विषय में है, माघ वैष्णव थे जिन्होंने विष्णु विषयक महाकाव्य का प्रणयन किया। वह स्वयं अपने महाकाव्य को 'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्त्तनचारुमात्र' कहते हैं। किरात में किरात वेषधारी शिव का दूत अपने स्वामी शिव की प्रशंसा अर्जुन के सामने करता है तो शिशुपालवध में शिशुपाल का दूत शिशुपाल की प्रशंसा श्रीकृष्ण भगवान् के समक्ष करता है। भारवि ने अर्जुन तथा किरात वेषधारी शिव जी के भयंकर युद्ध का वर्णन चार सर्गों (१५—१८) में किया है तो माघ ने शिशुपाल तथा यादवपाण्डवों के रोमांचकारी तुमुल युद्ध का विस्तृत वर्णन उससे बढ़ चढ़ कर किया है। दोनों महाकाव्यों में द्वन्द्व युद्ध के पूर्व विपक्षियों की सेनाओं में संघर्ष होता है। किरात के पन्द्रहव सर्ग में युद्धवर्णन प्रसंग में विकट बन्धमय छन्दों की रचना की गई है तो शिशुपालवध में किरात से भी अधिक संख्या में विकट-मय छन्दों की रचना पाई जाती है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त कहीं-कहीं किरात के श्लोकों का भाव माघ के श्लोकों में लक्षित होता है यथा व्यास के आने पर युधिष्ठिर ने अपने भाव व्यक्त किए हैं :—

अनाप्तपुण्योपचयैर्दुरापा फलस्य निर्धूतरजः सवित्री ।
तुल्या भवद्दर्शनसंपदेषा वृष्टेर्दिवो वीतवलाहकायाः ।।(३,५)

नारद के आने पर शिशुपालवध में श्रीकृष्ण अपने हार्दिक आनन्द को व्यक्त करते हुए कहते हैं :—

हरत्यघं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं सुभैः ।
शरीर भाजां भवदीय दर्शनं व्यनक्तिकालत्रितयेऽपि योग्यताम् ।।

युधिष्ठिर व्यास जी से अपने हृदय के भावों को व्यक्त करते हुए कहते हैं :—

निरास्पदं प्रश्नकुतूहलित्वमस्मास्वधीनं किमु निःस्पृहाणाम् ।
तथापि कल्याणकरीं गिरं ते मां श्रोतुभिछा मुखरीकरोति ।।

(कि० ६,६)

श्रीकृष्ण अत्यन्त विनम्रभाव से नारद जी से कहते हैं :—

विलोकनेनैव तवामुना मुने कृतः कृतार्थोऽसि निर्बाहितांहसा ।
तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसा गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते ।।

(शि० व० १. २६)

इतना ही नहीं किरात १८ सर्गों में समाप्त हुआ है तो माघ ने शिशुपाल-वध को बीस सर्गों में रचकर अपनी उत्कृष्टता काव्य कलेवर की दृष्टि से भी सिद्ध कर दी है। वास्तव में 'तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः'। उक्ति को माघ ने सिद्ध कर के दिखा दिया है।

संस्कृत साहित्य में भारवि का स्थान

भारवि का स्थान महाकाव्य रचयिताओं में आता है। विश्वनाथ, भामह और दण्डी द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षण उनके ग्रन्थ पर पूर्णतया घटित होते हैं। महाकाव्य की दृष्टि से वे अत्यधिक सफल हुए हैं। लौकिक संस्कृत काव्य में प्रायः सभी कवि अपनी रचना का आधार रामायण और महाभारत को मानते आए हैं। परवर्ती आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार वाल्मीकीय रामायण महाकाव्य की कोटि में आ सकती है महाभारत नहीं। महाभारत में मुख्यरूप से इतिहास प्रस्तुत किया गया है। पर रामायण में इतिहास के साथ-साथ काव्य का पुट भी अत्यन्त सरस और सहज सुबोध शैली में पाया जाता है। त्रिविक्रमभट्ट ने वाल्मीकि जी को इन शब्दों में अभिवादन किया है :—

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला ।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ।।

अपने आश्रम के समीप व्याधबाण से विद्ध क्रौञ्च के लिए क्रौञ्ची के विलाप ने वाल्मीकि के हृदय में करुणा का सञ्चार कर दिया और वे अत्यन्त दयार्द्र होकर कह उठे :—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः कामामोहितम् ।।

इन शब्दों के उच्चारण करते ही ब्रह्मा जी स्वयं उपस्थित होकर भवभूति के शब्दों में बोले :—

ऋषे प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि । तद् ब्रूहि रामचरितम् ।
अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः प्रतिभाति । आद्यः कविरसि ।

इससे स्पष्ट है कि वाल्मीकि जी आदि कवि हैं तथा उनका काव्य आदि-काव्य । स्वच्छ एवं शुद्ध निर्मल हृदय से निःसृत होने के कारण इसमें सरलता, सरसता एवं स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है । छोटे-छोटे मंजुल एवं हृदयग्राही पदों के समावेश होने से काव्यदृष्टि से रामायण का बड़ा महत्त्व है ।

प्रतीत होता है रामायण का ही विश्लेषण कर आचार्यों ने 'महाकाव्य' का लक्षण प्रस्तुत किया है । आचार्य दण्डी की महाकाव्यकल्पना 'रामायण' को ही आधार मानकर लिखी गई है । इसका आरम्भ ही करुणरस से होता है तथा अन्त भी करुणरस से । रामायण के अध्ययन से रस की पूर्ण अनुभूति होने से पाठक को तन्मयता प्राप्त होती है । इसीलिए इसकी शैली 'रसमयीपद्धति' अथवा 'सुकुमार मार्ग' कही गई है ।

वाल्मीकि के मार्ग का अनुसरण करने वाले प्रथम कवि कालिदास हैं । वे प्रकृति के अनन्य पुजारी हैं । जिसकी प्रेरणा उन्हें आदि कवि वाल्मीकि से मिली । कालिदास का मुख्य उद्देश्य था काव्य रचना करना । उन्होंने जगत् और प्रकृति के बीच रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है और अपनी सरस प्रवाहमयी भाषा के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति की है यहाँ तक कि मानव अपने को प्रकृति से अभिन्न समझने लगता है प्रकृति के साथ उसका सामंजस्य हो जाता है । उनके काव्यों में अलंकारों का स्वाभाविक रूप से समावेश हो गया है उनके लिए कवि

को प्रयत्न नही करना पड़ा । उनके काव्य भी रस से सराबोर हैं । कालिदास के काव्यों में शृंगाररस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है पर 'करुणरस' भी कम उत्कृष्ट नहीं है । रघुवंश के अष्टम सर्ग में अपनी रानी के लिए 'अज का विलाप' तथा कुमारसम्भव के चतुर्थ सर्ग में अपने पति के लिए 'रति विलाप' उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं । कालिदास ने रघुवंश एवं कुमारसम्भव दो महाकाव्यों की रचना की थी पर उनके समय तक आचार्यों ने कोई नियम नहीं बनाए थे अतः उनके काव्यों में आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य विषयक नियम कम घटित होते हैं । बाद के कवियों ने इन लक्षणों को पूर्णरूप से अपने ग्रन्थों में स्थान दिया । आगे चलकर महाकाव्य केवल पाण्डित्य तथा कलाप्रदर्शन के क्षेत्र रह गये । भारवि, भट्टि, माघ तथा श्रीहर्ष इन चारों कवियों में यही प्रवृत्ति दृष्टि-गोचर होती है । कालिदास के काव्यों में काव्य का चरम परिपाक प्राप्त होता है । परवर्ती काव्यों में भाषा की कलात्मकता, शब्दालंकार, अर्थालंकार और प्रहेलिकादि का सन्निवेश बहुलता से उपलब्ध होता है । कालिदास तथा भारवि के बीच लगभग १५० वर्ष किसी काव्य का पता नहीं केवल वत्सभट्टिप्रणीत मन्दसौर काव्य का शिलालेख पाया जाता है । व्यास, वाल्मीकि और कालिदास ने कथा पर ध्यान दिया यद्यपि कालिदास ने इतिवृत्त को ही सब कुछ नहीं समझा तथापि उसे क्षीण नहीं होने दिया । बीच-बीच में वर्णन आये उनका यथोचित निर्वाह करके कथासूत्र फिर पकड़ लेते थे जिसमें कथा-प्रवाह शिथिल न होने पावे । बाद के कवियों ने इसका ध्यान नहीं रक्खा । कथा के मध्य में वर्णन आने पर वह वहीं जम कर बैठ जाते थे और वर्ण्य विषय पर जितनी जानकारी रहती थी सब वहीं समाप्त कर देते इस प्रकार प्रवाह में शिथिलता आ जाना स्वाभाविक ही था । जहाँ कालिदास ने कुमार की उत्पत्ति के लिए कई युगों तक की पूर्वकालीन कथा को लेकर १७ सर्गों में समाप्त किया है तथा रघुवंश में महाराज दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक की कथा १९ सर्गों में ही पिरो दी है वहाँ भारवि ने केवल महाभारत के युद्ध की तैयारी के हेतु अर्जुन के दिव्यास्त्र की प्राप्ति की कथा १८ सर्गों में और माघ ने केवल शिशुपाल वध की कथा को २० सर्गों में वर्णन किया है । वाल्मीकि के प्रभाव पर चलने वाले हैं कालिदास, अश्वघोष । इनमें काव्य विषय अत्यन्त विस्तृत होता था प्राकृतिक वर्णन और अलंकार विधान अपेक्षाकृत कम । इनकी भाषा भी सरस, सरल,

प्रसादगुण युक्त, एवं प्रवाहमयी होती थी क्लिष्टत्व दोष उनमें नहीं पाया जाता। दूसरे मार्ग के प्रवर्त्तक हैं भारवि जिससे माघ, श्रीहर्ष, भट्टि, कुमारदास आदि प्रभावित हुए हैं। इसमें स्वल्प कथा वस्तु को प्राकृतिक वर्णन और अलंकारों से बोझिल बना दिया गया है। इनकी भाषा अलंकारों और प्राकृतिक वर्णनों के कारण स्वाभाविकता से दूर जा पड़ी है।

संस्कृत साहित्य में दूसरी शैली (अलंकृत शैली) के प्रवर्त्तक के रूप में भारवि का स्थान उच्च है। इनकी शैली से परवर्त्ती कवि इतने प्रभावित हुए कि वे कवि कुलगुरु कालिदास को भी भूल गए और स्वाभाविकता की उपेक्षा करके भारवि द्वारा निर्दिष्ट पथ के पथिक बन गए। भारवि वीर और शृंगार दोनों के कवि हैं। वे प्रणयकला (technique of love) के पण्डित हैं। पण्डित सम्प्रदाय में यह श्लोक प्रसिद्ध है :—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्,

जैसा पहले लिखा जा चुका है भारवि अपने गौरव के लिए प्रसिद्ध हैं इस गुण में कोई भी कवि उनकी समकक्षता नहीं कर सकता। इस अर्थ गौरव का कारण उनकी अद्‌भुत अभिव्यक्ति शक्ति है। ये थोड़े शब्दों में अधिक भावों का सन्निवेश करने में समर्थ हैं। अथवा 'गागर में सागर' भर सकते हैं। उनकी कविता में ओज है, शक्ति है तथा रति का माधुर्य है। कथोपकथन के माध्यम से चरित्र और कथा दोनों का विकास किया है। वक्ताओं की बलवती उक्तियों से उनके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। ये उक्तियाँ गम्भीर घाव करती हैं। उनमें अद्‌भुत गहराई, संक्षिप्तता और उपयुक्तता है। द्रौपदी की भर्त्सना किसी के हृदय पर चोट कर सकती है। वनेचर की शिष्टतापूर्ण उक्ति सराहनीय है। पात्रों के कथोपकथन तर्क, उक्ति एवं मार्मिक अर्थ से युक्त हैं जिसके कारण काव्य में सजीवता आ गई है। इन गुणों के कारण भारवि का संस्कृत कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

किरातार्जुनीयम् का प्रथमसर्ग

वर्णन की दृष्टि से यह सर्ग दो भागों में विभक्त है (१) युधिष्ठिर के प्रति वनेचर की उक्ति और (२) युधिष्ठिर के प्रति द्रौपदी की उक्ति।

जब महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन के साथ द्यूत क्रीड़ा में हार गए और उन्हें बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञात वास मिला तो वे अपनी पत्नी द्रौपदी तथा भाइयों के साथ द्वैतवन में निवास करने लगे। उन्होंने उस समय दुर्योधन का वृत्त अवगत करने के लिए एक वनेचर को ब्रह्मचारी के वेष में भेजा। उसने कुरुप्रदेश में पहुँच कर वहाँ का सब समाचार गुप्तरूप से जान लिया। तदनन्तर वह युधिष्ठिर के पास द्वैतवन को लौट आया और शिष्टता-पूर्वक अभिवादन करके शत्रु की वास्तविक स्थिति बतलाने में उसे तनिक भी कष्ट अथवा संकोच नहीं हुआ। भारवि की वर्णन शक्ति का उत्कृष्टरूप हमें आरम्भ में ही मिल जाती है जिसके प्रथम पंक्ति में ही उच्चनीति का दर्शन होता है। इसके बाद जन्म भर वन में रहने वाले वनेचर का शिष्टाचार द्रष्टव्य है उसने 'सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी' एवं 'विनिश्चितार्था' वाणी में दुर्योधन की प्रजा विषयक सद्वृत्ति के वर्णन से एक चित्र सा खड़ा कर दिया है। राजाओं का चरित्र निसर्गतः दुर्बोध होते हुए भी उसने अपनी बुद्धि से कहा कि दुर्योधन राज्यस्थ होकर भी आप से भयभीत है और न्यायप्रिय शासन द्वारा अनीति से जीती हुई पृथ्वी को नीति से वश में करना चाहता है। वह आश्रितों को मित्र-वत्, मित्रों को बन्धु के समान तथा बन्धुओं को अपने ऊपर का अधिकारी मानता है। वह कर्त्तव्य पालन में पुत्र और शत्रु के साथ एक सा व्यवहार करता है। पुत्र के भी अपराध क्षमा नहीं करता। राज्य में सिंचाई के प्रबन्ध से प्रजा निरन्तर सुखी रहती है। प्रशंसनीय कार्य के लिए कर्मचारी को पुरस्कृत करता है। योधा लोग प्राणपण से भी उसकी रक्षा करना चाहते हैं। उसे धनुष उठाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। राजा लोग उसे स्वयं दरबार में आकर कर देते हैं तथा सम्मानपूर्वक उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। राज्य में सर्वत्र कृषि उत्तमरूप से होती है और प्रजा प्रसन्नतापूर्वक समय-समय पर कर देती हैं। अब वह दुःशासन को युवराज बनाकर पुरोहित के आदेशानुसार यज्ञादि कर्म करता है पर इतना होते हुए भी आपका नाम प्रसंगक्रम से आने पर वह नतमस्तक हो जाता है। अतः आप उसे जीतने के लिए कोई प्रबल उपाय करें। इसके बाद महाराज युधिष्ठिर ने उसे पारितोषिक देकर विदा किया और द्रौपदी के भवन में जाकर भाइयों के समक्ष कहा जिसे सुनकर द्रौपदी बोली।

युधिष्ठिर के प्रति द्रौपदी की उक्ति—हे नाथ, स्त्री का उपदेश आप ऐसे महानुभावों के लिए अपमान के समान है पर मेरे चित्त की व्यथा मुझे कहने के लिए विवश करती है। आपके अतिरिक्त कौन ऐसा राजा होगा जो अपनी स्त्री के समान राजलक्ष्मी को दूसरे के अधीन कर देगा। भीम की दुर्दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि जो पहले सुन्दर पलंग पर सोते थे वे आज अपरिष्कृत भूमि पर लेटते हैं। जिसने उत्तरकुरु जीत कर बहुत-सा द्रव्य प्राप्त किया था वे ही अर्जुन आज वल्कलधारी बने हुए हैं। दोनों सुकुमार नकुल तथा सहदेव कठिन भूमि पर सोते हैं। फिर स्वयं आप अपनी दुर्दशा पर ध्यान दीजिए। हे महाराज, शान्ति छोड़कर शत्रुओं को नष्ट करने का उपाय कीजिए। शान्ति से मुनियों को सिद्धि मिलती है राजाओं को नहीं। यदि आप शान्ति को ही सिद्धि का साधन समझते हैं तो राज चिह्न धनुषादि का परित्याग कर अग्नि में हवन कीजिए। हे महाराज, आप सब प्रकार से समर्थ हैं अतः अपकारी शत्रु के विजय के लिए समय की प्रतीक्षा न कीजिए, विजयेच्छु राजा किसी बहाने से सन्धि भंग कर देते हैं।

'भारवेरर्थगौरवम्' की उक्ति प्रथम सर्ग में ही पूर्णतया चरितार्थ होती है। द्रौपदी के तीखे वाक्यों से पाण्डवों की हीनावस्था का चित्र उपस्थित किया गया है। चारों भाइयों की दुर्दशा का एक मात्र कारण युधिष्ठिर को बताया है। इस दुरवस्था से किसी भी भाई के चित्त पर आघात पड़ सकता है। स्वयं अपनी दुर्दशा का नग्नचित्र खींचते हुए वाग्वज्र का प्रहार करती है पर महाराज युधिष्ठिर अचल के समान शान्त हैं। अन्त में द्रौपदी ने सारे दुःखों के कारण-भूत पति युधिष्ठिर के प्रति मंगलकामना करके अपने पत्नीत्व का अच्छा परिचय दिया है। छोटी-छोटी सूक्तियों में गम्भीर और विपुल भाव कवि ने भर दिया है एक-एक शब्द साभिप्राय है। शब्दों में सौष्ठव है ओज तथा अर्थगौरव के दर्शन होते हैं। इस सर्ग में राजनीति वर्णन, कौशल, शब्दवैचित्र्य, अर्थगौरव, शिष्टाचार आदि के उदाहरण बहुलता से उपलब्ध हैं।

किरात के द्वितीय सर्ग का कथानक

द्रौपदी की बातों से भीम अत्यन्त प्रभावित हुए तथा अपने मन की बातें सुनकर उन्होंने भी युधिष्ठिर से अपनी प्रेयसी का ही समर्थन किया। उन्होंने कहा—हे महाराज! द्रौपदी की वाणी अत्यन्त सारगर्भित तथा देवगुरु बृहस्पति को भी विस्मयान्वित करने वाली है। आप गुणग्राही हैं। केवल गुणों पर ध्यान देने वाले लोग बोलने वाले पर ध्यान नहीं देते। वक्ता चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष बात तथ्यपूर्ण एवं समयोचित हो तो उसका आदर करते हैं। द्रौपदी के स्त्री होने के कारण ही उसकी बात उपेक्षणीय नहीं हो सकती। नीति-शास्त्र के अध्येता बहुत हैं पर उसके मर्म को समझने वाले कम। शत्रु को बढ़ते हुए देखकर उसकी उपेक्षा करना अनुचित है। आप में अप्रतिम बल है तथा आपके भाई युद्ध में अपराजेय हैं। यदि आप इस प्रकार शान्ति का अवलम्बन करेंगे तो आपके अनुजों के बाहुबल का क्या मूल्य रहेगा। इतने दिनों तक राज्य-सुख भोगकर दुर्योधन त्रयोदश वर्ष की अवधि के पश्चात् क्या आपको राज्य लौटा देगा? अतः आलस्य का त्याग कर पुरुषार्थ कीजिए। प्रकृति से दृष्टान्त देते हुए भीम कहते हैं कि सिंह भी बादलों की गर्जना सुनकर उनके प्रति डपटता ही है। महान् लोग शत्रु के उत्कर्ष को नहीं सहन कर सकते। भला आपके दिग्विजयी अनुजों के समक्ष कौन ठहर सकता है? इस प्रकार की भीम की बात सुनकर उन्हें शान्त करने के लिए महाराज युधिष्ठिर ने कहा।

हे भीम! तुमने जो कुछ कहा वह शास्त्रसंगत एवं युक्तियुक्त है तथापि बिना सोचे-समझे कोई भी काम नहीं करना चाहिए। सम्यक् विचार न करने से आपत्तियाँ आ घेरती हैं और पूर्वापर सोच-समझकर काम करने वाले को लक्ष्मी स्वयं वरण करती है। असमय में क्रोध करना अत्यन्त अनुचित है। जितेन्द्रिय व्यक्ति को सुख मिलता है। क्षमा से बढ़कर कोई अन्य उत्तम साधन नहीं है। इससे भविष्य उज्ज्वल होता है तथा शत्रु स्वयं नष्ट हो जाते हैं। यदि प्रतिज्ञा पूर्ण किए बिना ही हम युद्ध छेड़ दें तो सभी राजा लोग हम पर प्रतिज्ञा-भंग का दोषारोपण करने लगेंगे तथा हमारी ओर से उदासीन हो जायँगे। यदि अवधि-प्रतीक्षण के बाद युद्ध छिड़ेगा, तो सब राजा लोग हमारा

पक्ष ग्रहण करेंगे। अभी अपना स्वार्थ साधने के लिए दुर्योधन के प्रति विनम्र हैं क्योंकि उन सबको विदित है कि दुर्योधन का यह व्यवहार केवल बाहर से ही नम्र है हृदय में अहंकार है। यह समझना भूल है कि अधिक समय बीतने पर वे लोग दुर्योधन के पक्ष का समर्थन करेंगे। वास्तव में अभिमानी मनुष्य से सभी अप्रसन्न रहते हैं और अवसर आने पर उसका साथ छोड़ देते हैं। अहंकारी राजा के दुर्व्यवहार से अमात्यगण भी असन्तुष्ट होकर उसको भीतर से खोखला बना देते हैं। इस प्रकार उसका जीतना सरल हो जाता है। अतः शान्ति एवं धैर्य के साथ अवधि की प्रतीक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार जब महाराज युधिष्ठिर भीम को नीति का उपदेश कर रहे थे उस समय भगवान् वेदव्यास वहाँ पहुँच गए। उन्हें देखकर सभी ने उठकर अभिवादन किया तथा उन्हें उच्चासन पर आसीन कराकर स्वयं भी आज्ञा पाकर महाराज युधिष्ठिर बद्धाञ्जलि होकर सामने बैठ गए।

कथानक का मूलस्रोत—भारतीय साहित्य विशेषरूप से संस्कृत साहित्य रामायण और महाभारत से जीवन ग्रहण करता आ रहा है। प्रायः जितने महाकाव्य एवं नाटक हैं सभी का मूलस्रोत रामायण अथवा महाभारत है। भारतीय जीवन की अभिव्यक्ति के आधार समय-समय पर राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, उदयन आदि होते रहे हैं। कथा-प्रवाह इन्हीं से सम्बद्ध होकर आगे चलता है। प्रस्तुत महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' के कथानक का मूलस्रोत महाभारत का वनपर्व है। इसमें 'अर्जुनाभिगमनपर्व' के २७वें अध्याय से लेकर कैरातपर्व (४१वें अध्याय) तक की कथा के आधार पर 'किरातार्जुनीयम्' की रचना की गई है। भारवि ने आवश्यकतानुसार मूलकथा में परिवर्तन भी किए हैं। २७ से ३६ अध्याय तक द्रौपदी, युधिष्ठिर तथा भीमसेन के वार्त्तालाप का वर्णन है। ये वार्त्तालाप अत्यन्त विस्तृत हैं जिनको भारवि ने संक्षेप में प्रथम दो सर्गों में ही सम्पन्न कर दिया है। महाभारत में तो द्रौपदी, युधिष्ठिर तथा भीम के संवाद-मात्र हैं पर भारवि ने अपनी कल्पना से वनेचर की सूचना सुनकर द्रौपदी और भीम के उत्तेजित होने की बात की सृष्टि की है। 'किरातार्जुनीयम्' में व्यास जी द्वारा सीधे अर्जुन को प्रतिस्मृति योगविद्या प्रदान की जाती है तथा एक यक्ष उन्हें इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचाता है। हिमालय, गन्धमादन,

इन्द्रकील और अर्जुन की तपस्या का वर्णन करना भारवि की निजी कल्पना है। तत्कालीन कवियों की परम्परा का अनुकरण करते हुए भारवि ने अर्जुन की तपस्या भंग करने के लिए अप्सराओं के आगमन का वर्णन किया है तथा अपने महाकाव्य में शृङ्गाररस का पुट दे दिया है। भगवान् शंकर के साथ अर्जुन का युद्ध महाभारत में दिखाया गया है पर 'किरातार्जुनीयम्' में अर्जुन का युद्ध स्कन्द के सेनापतित्व में पूरी सेना के साथ होता है। अन्त में शिव से उनका द्वन्द्व युद्ध होता है। भारवि ने युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है। महाभारत में भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर अर्जुन को गाण्डीव-धनुष दे दिया तथा फिर अपने धाम को प्रस्थान किया। तदनन्तर अर्जुन के पास दिक्पालों ने आकर उन्हें दिव्यास्त्र प्रदान किए तथा स्वर्ग चलने का आग्रह किया। पर 'किरातार्जुनीयम्' में दिव्यास्त्र प्राप्त करने के बाद अर्जुन स्वर्ग न जाकर सीधे युधिष्ठिर के पास लौट आए। इस प्रकार महाभारत से ली गई कथा में भारवि ने महाकाव्योचित परिवर्तन किए हैं। महाभारत की सरल-सीधी शैली के स्थान पर 'किरातार्जुनीयम्' में अलंकृत शैली का प्रयोग किया गया है। भाव की अपेक्षा कला की प्रधानता है। महाकाव्य में ऋतु, पर्वत, नदी, वन, प्रातः, सन्ध्यादि का वर्णन आवश्यक समझा जाता है। अतः इन्हीं वर्णनों को दृष्टि में रखकर मूलकथा में आवश्यक विस्तार किया गया है।

महाभारत में १० अध्यायों में द्रौपदी, भीम तथा युधिष्ठिर का संवाद वर्णित है। २७वें अध्याय में द्रौपदी ने शत्रु विषयक क्रोध उद्दीपनार्थ संताप-पूर्ण वचन युधिष्ठिर से कहे तथा २८वें में प्रह्लाद वाले संवाद के दृष्टान्त से तेज और क्षमा के अवसर बताए पर युधिष्ठिर ने २९वें अध्याय में क्रोध की निन्दा की और क्षमा की प्रशंसा। ३०वें अध्याय में दुःखविमोहिता द्रौपदी ने युधिष्ठिर की बुद्धि, धर्म और ईश्वर के न्याय पर आक्षेप किया। पर ३१वें अध्याय में युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी के आक्षेप का समाधान किया गया तथा उन्होंने बतलाया कि ईश्वर, धर्म और महापुरुषों के आदर से लाभ होता है तथा अनादर से हानि। ३२वें अध्याय में द्रौपदी ने पुरुषार्थ को प्रधान मान कर उसी पर जोर देने का आग्रह किया। ३३वें अध्याय में भीमसेन ने पुरुषार्थ की प्रशंसा कर क्षत्रियधर्म के अनुसार युद्ध छेड़ने का युधिष्ठिर से

अनुरोध किया। पर महाराज युधिष्ठिर ३४ वें में धर्म और नीति की बात कहते हुए अपने प्रतिज्ञापालन पर ही डटे रहने का आग्रह करते हैं। ३५वें में भीमसेन युद्धार्थ युधिष्ठिर को उत्तेजित करते हैं। ३६वें अध्याय में युधिष्ठिर ने पुनः भीमसेन को समझाया। इतने में व्यास जी आ पहुँचे :—

तयोः संवदतोरेवं तदा पाण्डवयोर्द्वयोः।
आजगाम महायोगी व्यासः सत्यवती सुतः॥

महाभारत के इस विस्तृत वर्णन को भारवि ने अत्यन्त संक्षिप्त करके अपनी नीतिमत्ता का परिचय दिया है। इन १० अध्यायों का सार किरात के प्रथम दो सर्गों में ही आ गया है। मूलकथा में द्रौपदी, भीम तथा युधिष्ठिर के संवाद हैं पर 'किरातार्जुनीयम्' में युधिष्ठिर द्वारा नियुक्त वनेचर ने दुर्योधन के शासन का वर्णन किया। अपने गुप्तचर की सूचना को महाराज युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के समक्ष द्रौपदी से बतलाया जिससे द्रौपदी तथा भीम अत्यन्त उत्तेजित हुए। यह प्रसंग भारवि की अपनी कल्पना है। महाभारत के संवादों की स्पष्ट छाप 'किरात' के संवादों पर है। द्रौपदी और भीम के कथनों में नीतिशास्त्र के सिद्धान्त निहित हैं। द्वितीय सर्ग के प्रथम चौबीस श्लोकों में भीम ने युद्ध के लिए जोर दिया। उन्होंने कहा कि शत्रुकृत अपमान कदापि सहन नहीं हो सकता। प्रकृति से दृष्टान्त देते हुए कहते हैं कि सिंह भी मेघगर्जन सुनकर ललकारता ही है। युधिष्ठिर ने २६ से ५३ श्लोकों में पहले तो भीम की नीति-कुशल वाणी की प्रशंसा की फिर शनैः-शनैः धैर्य एवं शान्ति का अवलम्बन करने का ही उपदेश दिया। उन्होंने कहा सोच-समझकर ही कोई काम करना चाहिए। बिना सोचे-समझे जल्दबाजी में जो काम किया जाता है उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। इस प्रकार जब महाराज युधिष्ठिर भीम को समझा रहे थे उसी समय भगवान् वेदव्यास साक्षात् मनोरथ के समान वहाँ पर आ उपस्थित हुए। इस द्वितीय सर्ग में भारवि ने भीम के उत्साही एवं अधीर स्वभाव का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है। भीम ने अपनी बात को युक्तियुक्त एवं कैसे तर्कपूर्ण ढंग से उपस्थित किया है कि युधिष्ठिर भी उनके वचनों की सरलता, अर्थगाम्भीर्य, अपुनरुक्तत्व, साकाङ्क्षत्वादि गुणों की सराहना करते हैं। कोई भी व्यक्ति इनके वचनों से उत्तेजित हो सकता था पर महाराज युधिष्ठिर

ने क्षमा, धैर्य एवं शान्ति का आश्रय नहीं छोड़ा। भारवि ने उनके शान्त व्यक्तित्व तथा ज्ञान का मूर्त्त-रूप ही उपस्थित कर दिया है। फिर तीन-चार श्लोकों में ही भगवान् वेदव्यास के सर्वातिशायी शान्त एवं आपत्तिनाशक, पुण्यराशि एवं तपःप्रभूत व्यक्तित्व का चित्र पाठक के सम्मुख खींच देते हैं। भीम और युधिष्ठिर के कथोपकथन से भारवि के राजनीति-ज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इनकी भाषा सरल एवं प्रसादगुण युक्त है। इनके सम्बन्ध में पंडितों की 'भारवेरर्थ-गौरवम्' वाली उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती है। उनकी उक्तियाँ गम्भीर घाव करने वाली होती हैं। उनकी सूक्तियों में सरलता एवं स्वाभाविकता सर्वत्र दृष्टिगोचर है। प्रथम के समान द्वितीय सर्ग भी अर्थगौरव के उदाहरणों से भरा पड़ा है। प्रायः प्रत्येक श्लोक नीति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

भारवि के द्वितीय एवं माघ के द्वितीय सर्ग की तुलना—प्रथम सर्ग में बतलाया जा चुका है कि माघ ने अपना शिशुपाल-वध महाकाव्य भारवि की स्पर्धा में लिखा था तथा दोनों की विस्तृत तुलना उपस्थित की गई है। महाकाव्य केवल द्वितीय सर्ग में ही सीमित रखा गया है। भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' के आरम्भ में 'श्री' शब्द का प्रयोग किया है तथा प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'श्री' शब्द के पर्यायवाची 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया है। 'किरातार्जुनीयम्' के द्वितीय सर्ग के अन्तिम श्लोक में भी 'लक्ष्मी' शब्द प्रयुक्त हुआ है यथा :—

लक्ष्मीमुवाह सकलस्य शशाङ्कमूर्त्तेः।

'शिशुपालवध महाकाव्य' के द्वितीय सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'श्री' शब्द का प्रयोग अवलोकनीय है यथा :—

स्थलनियतनिषण्णश्रीश्रुतां शुश्रुवान्सः।

भारवि ने भीम एवं युधिष्ठिर का संवाद कराया है तो माघ ने बलराम, उद्धव के साथ श्रीकृष्ण की मंत्रणा का वर्णन किया है।

निम्नाङ्कित श्लोकों में तुलना दर्शनीय है :—

विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्लभो सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः ॥३॥

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः ।
ग्रन्थानधीत्य व्याकर्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम् ।। मा० २६।।

भारवि के 'तीर्थ' और 'पयसामाशय' के प्रयोग की तुलना माघ के निम्नाङ्कित श्लोक से की जा सकती है :—

कृत्वा कृत्यविदस्तीर्थेष्वन्तः प्रणिधयः पदम् ।
विदांकुर्वन्तु महतस्तलं विद्विषदम्भसः ।। मा० १११।।
प्रभवः खलु कोशदण्डयोः कृतपंचांगविनिर्णयो नयः ।
स विधेयपदेषु दक्षतां नियतिं लोक इवानुरुध्यते ।। कि० १२।।
सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्दपञ्चकम् ।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम् ।। मा० २८।।
मन्त्रो योध इवाधीरः सर्वाङ्गैः संवृतैरपि ।
चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशंकया ।। मा० २९।।
अचिरेण परस्य भूयसीं विपरीतां विगणय्य चात्मनः ।
क्षययुक्तिमुपेक्षते कृती कुरुते तत्प्रतिकारमन्यथा ।। कि०।।
आत्मोदयः परज्यानिर्हृदयं नीतिरितीयती ।
तदूरीकृत्य कृतिभिर्वाचस्पत्यं प्रतायते ।। मा० ३०।।
विपदोऽभिभवन्त्यविक्रमं रहयत्यापदुपेतमायतिः ।
नियता लघुता निरायतेरगरीयान्न पदं नृपश्रियः ।।
तदलं प्रतिपक्षमुन्नतेरवलम्ब्य व्यवसाय बन्ध्यताम् ।
निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः ।। कि० १४।।
विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते ।
प्रक्षिप्योर्दाचिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम् ।।
मनागनभ्यावृत्या वा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी ।
क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः ।। मा० ४३।।
समवृत्तिरुपैति मार्दवं समये यश्च तनोति तिग्मताम् ।
अधितिष्ठति लोकमोजसा स विवस्वानिव मेदिनीपतिः ।। कि० ३८।।
तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः ।

नैकमोजः प्रसादो वास्सभावविदः कवेः ।। मा० ८३।।
मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान्प्रकल्पते ।
प्रदीपः स्नेहमादत्ते दशयाभ्यन्तरस्थया ।। मा० ८५।।
सुहृदः सहजास्तथेतरे मतमेषां न विलंघयन्ति ये ।
विनयादिव यापयन्ति ते धृतराष्ट्रात्मजमात्मसिद्धये ।। कि० ४५।।
सखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः ।
स्यातामभित्रौ मित्रे च सहजप्राकृतावपि ।। मा० ३६।।
अभिमानवतो मनस्विनः प्रियमुच्चैः पदमारुरुक्षतः ।
विनिपातनिवर्तनक्षमं मतमालम्बनमात्मपौरुषम् ।। कि० १३।।
कृतापचारोऽपि परैरनाविष्कृतविक्रियः ।
असाध्यः कुरुते कोषं प्राप्ते काले गदो यथा ।। मा० ८४।।

छन्दयोजना—लौकिक संस्कृत साहित्य में छन्द प्रायः वर्णिक होते हैं अर्थात् उनका विचार वर्णों की गणना से होता है। एक गण में तीन-तीन वर्ण (अक्षर) का विधान है। गणों की संख्या आठ होती है। इनके स्वरूप का विचार गुरु और लघु अक्षरों से किया जाता है। गणों के नाम निम्न-लिखित हैं :—

मगण, नगण, भगण, यगण, जगण, रगण, सगण, तगण।

वृत्तरत्नाकर में गणों के लक्षण इस प्रकार हैं :—

सवगुर्मो मुखान्तलौ यरावन्तगलौ सतौ।
ग्मध्याद्यौऽभौ त्रिलो नोऽष्टौ भवन्त्यत्र गणास्त्रिकाः ।।

इसका लक्षण इस प्रकार भी कहा गया है :—

नस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः ।
जो गुरुमध्यगतोरलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः ।।

अर्थात् जिसमें तीनों अक्षर गुरु हों वह मगण कहलाता है, नगण में तीनों लघु होते हैं, मगण के आदि में गुरु, यगण के आदि में लघु, जगण के मध्य में गुरु, रगण के मध्य में लघु, सगण के अन्त में गुरु और तगण के अन्त में लघु

होता है। गणों के लघु-गुरु के विधान को 'यमाताराजभानसलगम्' सूत्र स्मरण रखन से छात्र सरलता से जान सकते हैं। जिस गण-विशेष को जानना हो उसी अक्षर के साथ उसके अगले दो अक्षर और मिला लेने से उस गण का ज्ञान सुगमता से हो जाता है। तीनों अक्षरों में जिस स्थान पर लघु या गुरु आया हो उसी के स्थान पर उस गण में भी लघु-गुरु समझना चाहिए। निम्नलिखित उदाहरण से और भी स्पष्ट हो जायगा :—

मगण ऽ ऽ ऽ	जगण । ऽ ।
नगण । । ।	रगण ऽ । ऽ
भगण ऽ । ।	सगण । । ऽ
यगण । ऽ ऽ	तगण ऽ ऽ ।

गुरु और लघु जानने की विधि यह है :—

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत् ।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ।।

अर्थात् जिस अक्षर में अनुस्वार मिला हो या दीर्घ हो या विसर्गयुक्त हो अथवा संयुक्ताक्षर के पहले आया हो वह अक्षर गुरु कहलाता है। पादान्त अक्षर विकल्प में गुरु होता है। यहाँ आवश्यकतानुसार गुरु और लघु की व्यवस्था होती है। इस प्रकार गणविधान की दृष्टि से 'किरातार्जुनीयम्' के द्वितीय सर्ग के छन्दों का विचार करना है। इस सर्ग में ५६वें श्लोक तक वियोगिनी छन्द है उसका लक्षण है—'विषमे ससजा गुरुः समे सभरालोऽथ गुरुर्वियोगिनी' अर्थात् प्रथम और तृतीय चरण में दो सगण, एक जगण, एक गुरु तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में सगण, भगण, रगण एक लघु और गुरु हो तो वियोगिनी छन्द होता है। वियोगिनी छन्द 'अर्धसमवृत्त' के अन्तर्गत है। जिसका लक्षण है :—

प्रथमांघ्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणो भवेत् ।
द्वितीयस्तुर्यवद् वृत्तं तदर्धसममुच्यते ।।

अर्थात् जिसका प्रथम और तृतीय चरण एक-सा हो तथा द्वितीय चतुर्थ में समानता हो उसे 'अर्धसम' कहते हैं।

प्रथम चरण । । ऽ	। । ऽ	। ऽ ।	ऽ
वि हि तां	प्रि य या	म नःप्रि	याम्
द्वितीय चरण । । ऽ	ऽ । ।	ऽ । ऽ	। ऽ
अ थ नि	श्चि त्य गि	रं ग री	य सीम्

इसी प्रकार तृतीय प्रथम के समान तथा चतुर्थ चरण द्वितीय के समान होगा।

५७वें श्लोक में उपजाति वृत्त हैं। उसमें इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा का मिश्रण है उसका लक्षण है :—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौगः उपेन्दज्रा जतजास्ततोगौ ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्व ।।४।।

अर्थात् दो तगण, जगण और दो गुरु (इन्द्रवज्रा) और जगण, तगण, जगण और दो गुरु (उपेन्द्रवज्रा) दोनों से संयुक्त छन्द उपजाति होता है—

। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ	उपजाति
अ थो च्च	कै रा स	न तः प	दा र्घ्या—उपेन्द्रवज्रा	
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ	
दु घ न्स	धू ता रु	ण व ल्क	ला ग्रः—इन्द्रवज्रा	

५८वें श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द है। उसका लक्षण है :—

अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च न जौ पुष्पिताग्रा ।

अर्थात् प्रथम तथा तृतीय चरण में भगण, नगण, रगण, यगण हों तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में नगण, जगण, जगण, रगण और एक गुरु हो तो पुष्पिताग्रा छन्द होता है :—

प्रथम चरण । । ।	। । ।	ऽ । ऽ	। ऽ ऽ
अ व हि	त ह्द यो वि धा	य सो र्हा
द्वितीय चरण । । ।	। ऽ ।	। ऽ ।	ऽ । ऽ	ऽ
मृ षि व	ह पि प्र	व रे गु	रू प दि	ष्टाम्

इसी प्रकार तृतीय प्रथम के समान तथा चतुर्थ द्वितीय के समान होगा।

५९वें श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है उसका लक्षण है :—

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

अर्थात् तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु होने पर वसन्ततिलका वृत्त होता है।

ऽ ऽ ।	ऽ । ।	। ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ	
व्य क्तो दि	त स्मि न्	म यू ख	वि भा सि	तो ष्ठः	

इसके शेष तीन चरण इसी के समान होंगे क्योंकि यह समवृत्त है। समवृत्त में चारों चरण बराबर होते हैं। उपजाति एवं वसन्ततिलका समवृत्त के अन्तर्गत हैं।

द्वितीय सर्ग की सूक्तियाँ

१—विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः ।
स तु तत्र विशेष दुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः ॥३॥

२—अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः ॥४॥

३—ननु वक्तृविशेषनिः स्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः ॥५॥

४—द्विषतामुदयः सुमेधसा गुरुरस्वन्ततरः सुमर्षणः ।
न महानपि भूतिमिच्छता फलसम्पत्प्रवणः परिक्षयः ॥८॥

५—प्रणमन्त्यनपायमुत्थितं प्रतिपच्चन्द्रमिव प्रजा नृपम् ॥११॥

६—विनिपातनिवर्तनक्षमं मतमालम्बनमात्मपौरुषम् ॥१३॥

७—विपदोऽभिभवन्त्यविक्रमं रहयत्यापदुपेतमायतिः ।
नियता लघुता निरायतेरगरीयान्न पदं नृपश्रियः ॥१४॥

८—निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः ॥१५॥

९—लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः ॥१८॥

१०—अचिरांशुविलासचंचला ननु लक्ष्मीः फलमानुषंगिकम् ॥१९॥

११—अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः ॥२०॥

१२—प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यथा ॥२१॥

१३—सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥३०॥

१४—सुकृतः परिशुद्ध आगमः कुरुते दीप इवार्थदर्शनम् ॥३३॥

१५—विधिहेतुरहेतुरागसां विनिपातोऽपि समः समुन्नतेः ॥३४॥

१६—अविभिद्य निशाकृतं तमः प्रभया नांशुमताप्युदीयते ॥३६॥

१७—शरदभ्रचलाश्चलेन्द्रियैरसुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः ॥३९॥

१८—न तितिक्षासममस्ति साधनम् ॥४३॥

१९—मदमानसमुद्धतं नृपं न वियुङ्क्ते नियमेन मूढ़ता ।
अतिमूढ उदस्यते नयान्नयहीनादपरज्यते जनः ॥४९॥

२०—मतिमान् विनयप्रमाथिनः समुपेक्षेत समुन्नतिं द्विषः ।
सुजयः खलु तादृगन्तरे विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः ॥५२॥

२१—सहते न जनोऽप्यघः क्रियाम् ॥४७॥

———

श्रीः

किरातार्जुनीयम्

द्वितीयः सर्गः

विहितां प्रियया मनः प्रियामथ निश्चित्य गिरं गरीयसीम् ।
उपपत्तिमदूर्जिताश्रयं नृपमूचे वचनं वृकोदरः ।।१।।

अन्वयः—अथ वृकोदरः प्रियया विहितां मनः प्रियाम् गिरं गरीयसीं निश्चित्य नृपम् उपपत्तिमत् ऊर्जिताश्रयं वचनम् ऊचे ।।१।।

विहितामिति । अथ वृकोदरो भीमः प्रियया द्रौपद्या । प्रियाग्रहणमस्या हितोपदेशतात्पर्यसूचनार्थम् । विहितामभिहितामित्यर्थः । विपूर्वस्य दधातेः क्रियासामान्यवाचिनो योग्यविशेषपर्यवसानात् । मनः प्रियामभितार्थयोगान्मनोहराम् । विशेषणद्वयेन गिरो ग्राह्यकत्वमुक्तम् । गिरं गरीयसीं सारवत्तरां निश्चित्य नृपं धर्मराजमुपपत्तिमद्युयुक्तिमूर्जिताश्रयमुदारार्थं वचनमूचे उक्तवान् । कर्त्तरि लिट् । ब्रुवो वचिरादेशः । 'ब्रूविशासु' इत्यादिना द्विकर्मकत्वम् । 'अकथितं च' इति नृपस्य कर्मकत्वम् ।।१।।

हिन्दी अनुवाद—इसके अनन्तर भीम द्रौपदी द्वारा कही गई अपने मन के अनुकूल वाणी को सारयुक्त निश्चित करके महाराज युधिष्ठिर से युक्तियुक्त और उदार अर्थों वाली वाणी बोले ।

English Translation—Now (Bhima) Vrikodara having ascertained that the words uttered by his beloved (wife) which gladdened his heart, were weighty addressed to the king a speech full of noble sentiments and supported by reason.

संस्कृतभावार्थः—द्रौपदीवचनानन्तरं भीमसेनः स्वमनोऽनुकूलं तद्वचनमाकर्ण्य जातोद्रेकः सन् युक्तियुक्तं वीररसान्वितं वचनं युधिष्ठिरं प्रत्युवाच ।

व्याख्या—द्रौपदी के वचन के अनन्तर भीम बोले । वे युक्तियुक्त एवं सारगर्भित वाणी बोलते थे । दोनों में भेद यह था कि द्रौपदी की वाणी हृदय को हिलाने वाली होती थी पर भीम जो कुछ कहते थे उसके लिए तर्क उपस्थित कर देते थे ।

टिप्पणी—**अथ**—अव्यय है 'अनन्तर' अर्थ में । 'मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्र्येष्वथो अथ' इत्यमरः । **वृकोदरः**—वृकस्य उदरं, वृकोदरमिव उदरमस्य (बहुव्रीहि) । 'क्षुत्तृष्णावर्धनो वृकाख्यो जाठरोऽग्निविशेष उदरे यस्यास्ति सः वृकोदर इति वृकोदरनाम कैश्चिन्निरूप्यते' इति चित्रभानुः । **प्रियया**—द्रौपद्या । प्रियाग्रहणमस्याः हितोपदेशतात्पर्यसूचनार्थम् । विहिताम् (—कृताम्, अभिनवैरर्थोपपत्तिगुणालंकारैर्योजऽपित्वोक्तामिति लभ्यते) वि+धा+क्त कर्मणि+टाप्, ताम् विहिताम् । वि+धा का अर्थ है करना, किन्तु यहाँ कहना अर्थ होगा, क्योंकि धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं पुनः उपसर्ग लगाने से धातु के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है—'उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते । प्रहाराहारसंहारविहारः परिहारवत् ।।' यह धातु अकर्मक और सकर्मक दोनों ही है । यथा—'विधाय रक्षान् परितः परेतरान्' (प्र० स० श्लोक १४) तथा 'द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतः' (प्र० स० श्लोक ३) **मनःप्रियाम्**—मनोहराम्, मनसः प्रिया मनःप्रिया (ष० त०) ताम् । गिरम्—वाचम् । 'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती' इत्यमरः । **गरीयसी**—अर्थवद्लामतः सारवतीम् । अतिशयेन गुर्वी गुरु+ईयसुन्=गर+ईयसुन्+ङीप् स्त्रियाम् ताम् । 'प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरु-वृद्धतृप्रदीर्घबृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्वर्हिगर्वपित्रव्दाघिवृन्दाः' सूत्र से ईयसुन् प्रत्यय लगने से गुरु को गर् आदेश हो गया है । पुनः 'उगितश्च' सूत्र से 'ङीप्' हो गया । **निश्चित्य**—निस्+चि+ल्यप् । **नृपम्**—नृन् पातीति नृपः । यहाँ 'अकथितं च' सूत्र अप्रधान कर्म 'नृप' में द्वितीया हुई है । सूत्रार्थ अपादान आदिकारकों से अविवक्षित कारक की कर्म संज्ञा होती है । जैसे वचन बोले नृप के लिए । नृप में सम्प्रदान

होना चाहिए। किन्तु सम्प्रदान की विवक्षा न होने पर नृप कर्म में प्रयुक्त हुआ है। **उपपत्तिमत्**—युक्तियुक्तम् उप+पद्+क्तिन् भावे। उपपत्तिः अस्ति अस्मिन्—उपपत्ति+मतुप्, तत्। **ऊर्जिताश्रयम्**—ऊर्ज्+क्त नपुंसके भावे ऊर्जितम् आ+श्रि+अच् कर्मणि—आश्रयः। ऊर्जितम् आश्रयो यस्य तत् (बहुव्रीहि) ऊर्जितम्—अर्थयुक्तम् अथवा ऊर्ज्+क्त कर्मणि ऊर्जित; उदार। ऊर्जितः आश्रयो यस्य तत् बहुव्रीहि। इसके दो अर्थ हैं (१) उदार अर्थों वाला (२) सार (बल)। **वचनम्**—उच्यते या उच्यते अनेनेति वचनम्। वच्+ल्युट् कर्मणि करणे वा।—शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः (शिशु० १.) 'व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः' इति अमरः। **ऊचे**—उदाजहार—ब्रू+लिट् ए कर्त्तरि। यहाँ 'ब्रुवो वचिः' सूत्र से ब्रू को वच् हो जाता है। **सूत्रार्थ**—आर्धधातुक प्रत्यय परे रहने पर ब्रू को वच् आदेश होता है। ब्रू द्विकर्मक धातु है इसके दो कर्म हैं (१) वचनम् (प्रधानकर्म) (२) नृपम् (अप्रधानकर्म)। द्विकर्मक धातुओं की सूची निम्नाङ्कित कारिका में है—'दुह याच् पच् दण्ड् रुधि प्रच्छि चि ब्रूशासुजिमथ्मुषाम्। कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥' ये धातुएँ और तदर्थक धातुएँ द्विकर्मक होती हैं॥ (ब्रू धातु—ब्रवीति—आह—ब्रूते, ब्रवीतु—ब्रूताम्, अब्रुवत्—अब्रूत, वक्ष्यति—वक्ष्यते, अवोचत्—अवोचत)

वाच्यपरिवर्तनः—अथ वृकोदरेण प्रियया विहताम् मनःप्रियाम् गिरम् गरीयसीम् निश्चित्य उपपत्तिमत् ऊर्जिताश्रयम् वचनम् नृपः ऊचे।

किं तद्वचनं तदाह—

द्रौपदी का वक्तव्य मनस्विता पूर्ण था उसे कहते हैं—

यदवोचत वीक्ष्य मानिनी परितः स्नेहमयेन चक्षुषा।
अपि वागधिपस्य दुर्वचं वचनं तद्विदधीत विस्मयम् ॥२॥

अन्वयः—मानिनी स्नेहमयेन चक्षुषा परितो वीक्ष्य यदवोचत, दुर्वचं तत् वागधिपस्यापि विस्मयं विदधीत ॥२॥

यदिति। क्षत्रियकुलाभिमानवती द्रौपदी। स्नेहमयेन स्नेहप्रचुरेण 'तत् प्रकृतवचने मयट्'। चक्षुषा ज्ञानचक्षुषा। एतेनाप्तत्वमुक्तम्। परितो वीक्ष्य

समन्ताद्विविच्य यद्वचनमवोचत ब्रुवो वक्तेर्वा लुङ । 'वच उम्' इत्युमागमः । वागधिपस्य बृहस्पतेरपि दुर्वचम् वक्तुमशक्यम् । शेषे षष्ठीयम् । न कृद्योगलक्षणा । अतो न लोक इत्यादिना षष्ठीप्रतिषेधो नास्ति । तद्वचनं विस्मयं विदधीतेति सम्बन्धः । दुर्वचम् । केनापीति शेषः । यतः स्त्रैणमपि शास्त्रमनुरुणद्धि हितं चानुबध्नाति । अतो विस्मयकरं ग्राह्यं चैतद्वचनमिति तात्पर्यार्थः ॥२॥

हिन्दी अनुवाद--मनस्विनी द्रौपदी ने प्रेमपूर्वक सब बातों का विचार करके जो कुछ कहा है (दूसरों के लिए) दुर्वचनीय वह वाणी के स्वामी (बृहस्पति) को भी विस्मय में डाल सकती है ।

English Translation—The speech, difficult (for others) to understand, which the high spirited (Draupadi) made after having considered all over with eyes full of love would put even the lord of speech (Brihaspati) to surprise.

संस्कृतभावार्थः—युधिष्ठिरमनुकूलयितुं भीमः द्रौपदीवचनमभिनन्दन् कथयति स्म । प्रेमसिक्तेन नेत्रेण (मनसा) पूर्वापरं सर्वं वृत्तं सम्यगालोच्य क्षत्रियकुलाभिमानिनी शत्रुकृतापमानमसहमाना द्रौपदी यदवोचत तत् बृहस्पतेरपि महदाश्चर्यकरमस्ति अन्येषां तु का वार्त्ता ।

व्याख्या—द्रौपदी क्षत्रियकुल का अभिमान रखने वाली है । स्वभावतः शत्रुकृत अपमान उसे असह्य है । आपकी उपेक्षा से वह बहुत क्षुब्ध है । अत्यन्त प्रेम के कारण इस प्रकार की वाणी कही है । आपके प्रति कोई दुर्भावना नहीं है ।

टिप्पणी—**तत्**—वह वचन 'यत्तदोर्नित्यसम्बन्धः' 'यत्' और 'तत्' का नित्यसम्बन्ध है । द्रष्टव्य १-३० 'व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु य न मायिनः ।' **वीक्ष्य**--वि+ईक्ष+ल्यप् । परितः—परि+तसिल् (सर्वतोभावे)' **परितः**—अव्यय । सम्यगालोच्येत्यर्थः । **मानिनी**—मन्+घञ् भावे मानः । मानः प्रशस्तः अस्ति अस्याः इति मान+इनि मत्वर्थे+ङीप् स्त्रियाम् क्षत्रियकुलाभिमानवती । यहाँ मतुप् के अर्थ में 'इनि' प्रयुक्त हुआ है । निम्नलिखित अर्थों में मतुप् होता है—

'भूमिनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने ।
संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुवादयः ।।'

यहाँ इनि का प्रयोग 'नित्ययोग' में हुआ है। मानिनी का अर्थ है मान से सर्वदा युक्त। दूसरे से पराभव को न सह सकना अभिमान है। **स्नेहमयेन**—प्रेममयेन, स्निह्+घञ् भावे—स्नेहः ; स्नेह+मयट् (प्रकृतिवचने) 'तत्प्रकृतवचने' सूत्र ('प्रकृतवचन' के द्योतनार्थ मयट् का प्रयोग होता है) से मयट् प्रत्यय लगा है। स्नेहः प्रकृतः प्रचुरः अस्मिन् इति। 'चक्षषा' का विशेषण है। चक्षुषा—नेत्रेण; करणे तृतीया। द्रष्टव्य—'स्नेहमाहितविकाशया दृशः' (शिशु० १४) । 'लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी' इत्यमरः। **दुर्वचम्**—अन्यैः वक्तुमशक्यम् दुःखेन उच्यते दुर्+वच्+खल्—दुर्वचम् लोकैरिति शेषः। **वागधिपस्य**—वक्तीति वच्+क्विप् कर्त्तरि—वाच् अधिपातीति—अधि+पा+क कर्त्तरि अधिपः। वाचाम् अधिपः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्य कृद्योगे कर्त्तरि षष्ठी। वागधिपः विस्मयते (तिङ्योगे) वागधिपस्य विस्मय, (कृद्योगे) मल्लिनाथ इसका संबध 'दुर्वचम्' से जोड़ते हैं। इसलिए कृद्योग में षष्ठी न होकर शेषे षष्ठी हुई है। कर्त्तरि षष्ठी 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' सूत्र से षष्ठी का निषेध हुआ। 'दुर्वचम्' में खल् प्रत्यय है अतः कारक षष्ठी संभव नहीं शेषे षष्ठी ही उपयुक्त है। भट्टोजि का कथन है 'सर्वोऽयं कारकषष्ठ्याः प्रतिषेधः। शेषे षष्ठी तु स्यादेव। ब्राह्मणस्य कुर्वन्। नरकस्य जिष्णुः।' विस्मयं-वि+स्मि+अच् भावे विस्मयः तम् 'विदधीत' का कर्म है। विदधीत—वि+धा+विधिलिङ् ईत।

(धा—दधाति—धत्ते, दधातु,—धत्ताम्, धास्यति—धास्यते, अधात्—अधित, दधौ—दधे, अदधात्—अधत्त)

'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः।

'विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यं चित्रम्' इत्यमरः ।।२।।

वाच्यपरिवर्तनः—मानिन्या स्नेहमयेन चक्षुषा वीक्ष्य यदवोचि, तेन दुर्वचेन वचनेन वागधिपस्यापि विस्मयो विधीयेत।

विस्मयकरत्वे हेतुमाह—

नीति का समझना कठिन है पर उसके समान आचरण करना सरल है। विस्मयकारी होने का कारण कहते हैं :—

विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः ।
स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः ।।३।।

अन्वयः—विषमोऽपि नयः पयसामिवाशय इव कृततीर्थः (सन्) विगाह्यते। तु तत्र सः विशेषदुर्लभः यः कृत्यवर्त्म सत् उपन्यस्यति ।

विषम इति । विषमोऽपि दुर्बोधोऽपि । अन्यत्र दुष्प्रवेशोऽपि । नयो नीतिशास्त्रम् । पयसामाशयो ह्रद इव । कृततीर्थः कृताभ्यासाद्युपायः सन् । 'तीर्थं शास्त्रेऽध्वरक्षेत्रोपायोपाध्यायमंत्रिषु' इति विश्वः । अन्यत्र कृतजलावतारः सन् । 'तीर्थं योनौ जलावतारे च' इति हलायुधः । विगाह्यते गृह्यते प्रविश्यते च । किन्तु तत्र नये जलाशये च स तादृशः पुरुषो विशेषदुर्लभोऽत्यन्तदुर्लभो यः कृत्यं सन्धिविग्रहादिकार्यं स्नानादिकं च तस्य वर्त्म सत् साधु देशकालाद्यविरुद्धं यथा तथा । अन्यत्र गर्तग्राहपाषाणादिरहितम् । तथा यथोपन्यस्य त्युदाहरति । 'उपन्यासस्तु वाङ्मुखम् । उद्घात उदाहारः ।' यथा केनचित्कृततीर्थे पयसि गम्भीरेऽपि प्रवेष्टारः सन्ति । तीर्थंकरस्तु विरलः । तद्वन्नीतावापि गूढमपि तत्त्वं वक्तरि सति बोद्धारः सन्ति । वक्ता तु न सुलभः । अत इयमपठितापि साधु वक्तीति युज्यते विस्मय इत्यर्थः ।।३।।

हिन्दी अनुवाद—दुर्बोध भी नीतिशास्त्र अभ्यासादि उपाय से सुबोध बन जाता है जैसे कठिनता से प्रवेश करने योग्य भी जलाशय घाट निर्मित होने पर प्रवेश्य होता है। किन्तु वहाँ वह विशेष रूप से दुर्लभ होता है जो कर्त्तव्यमार्ग (सन्धिविग्रहादि) को ठीक-ठीक बता दे ।।३।।

English Translation—The science of statecraft though difficult can be practised if well grasped like a water-reselevoir easily entered where firm & reliable steps are constructed. But in that matter he is rarely available who

rightly shows the path of action (i.e. of peace & war or bathing).

संस्कृतभावार्थः—यथा प्राकृतो जलाशयः विषमत्वात् दुरवगाह एव न प्रत्युत दुष्प्रवेशोऽपि भवति, तत्र यदि कश्चित्कलाभिज्ञो नरः सोपानादिक-निर्माणं करोति येन सुखप्रवेशो भवेत्। एतादृक् जनः सहस्रष्वेको दृश्यते परञ्च सोपानादिकसाधने सम्पन्ने सर्वेषां जलाशयप्रवेशो सुकरो भवति। एवं विपन्नस्य न कोऽपि सहायो भवति केनाप्युपदिष्टेन निजोन्नत्यै यदि कमप्युपायं करोति नरः स एव न श्लाघ्यः परञ्च नीतिविधानस्योपदेष्टैव दुर्लभः स एव प्रशस्यः। केनाप्यपाठिताऽपि द्रौपदी नीतिरीतिमुपदिशतीत्येतन्महदाश्चर्य-करम्।

व्याख्या—भीम कहते हैं कि जब मैं कहता हूँ कि द्रौपदी का वक्तव्य वृहस्पति को भी विस्मित कर देगा मैं उसके रहस्य को पूर्णतया समझता हूँ। राजा की सफलता उसके मन्त्रियों द्वारा सुनिश्चित योजना पर अवलम्बित है। परन्तु नीतिज्ञान दुर्लभ है। द्रौपदी ने गम्भीरतापूर्वक विवेचन के पश्चात् जो योजना प्रस्तुत की है वह वास्तव में सराहनीय है। "जैसे जलाशय में सीढ़ियों के निर्माण कर देने से बहुत से लोग स्नान करते हैं पर सोपाननिर्माता दुर्लभ है, वैसे ही नीति के रहस्य को बहुत से लोग समझ सकते हैं यदि उपदेष्टा हो, पर उपदेष्टा ही दुर्लभ है" मल्लिनाथ।

टिप्पणी—विषमः। विभिन्नः समेभ्यः विषमः प्रादितत्पुरुष 'नयः' और 'आशयः' का विशेषण है। (**नयपक्षे**—कठिन, दुर्बोध, जलाशयपक्षे दुष्प्रवेश्य)। **नयः**—नीतिशास्त्रम् नीयते अनेनेति नी+अच् करणे बाहुलकात् उक्ते कर्मणि प्रथमा। 'सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः' सूत्र से—सु, वि, निर्, और दुर् के बाद आये हुए सुप् (स्वप् का सम्प्रसारण) सूति और सम के 'स' का 'ष' आदेश हो जाता है। इस नियम से 'विषम' हो गया। **अपि**—गर्हा के अर्थ में है। 'गर्हासमुच्चयप्रश्नशंकासंभावनास्वपि' इत्यमरः। **विगाह्यते**—वि+गाह्+लट् ते कर्मणि। गृह्यते नयः, प्रविश्यते जलाशयः। जनैः। **कृततीर्थः**—तरन्ति अनेनेति तृ+थक् (औणादिक) करणे तीर्थम् अथवा तीर्थः। कृ+क्त कर्मणि

कृतः । कृतः तीर्थः यस्य (बहुव्रीहि) । पयसाम् शेषे षष्ठी । **आशयः**—आ+शी+अच् अधिकरणे आशयः उक्ते कर्मणि प्रथमा । 'सः' भवति का कर्त्ता । **तत्र**—तद्+ङि (सप्तमी) नयशास्त्रे जलाशये वा । **विशेषदुर्लभः**—दुःखेन लभ्यते इति दुर्+लभ्+खल् कर्मणि दुर्लभ । 'ईषद्दुःसुषुकृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्' सूत्र 'खल्' प्रत्यय लगा है । विशेषेण दुर्लभः । **सत्**—(सत्ययास्यात्तथा) अस्+लट्—शतृ—सत् । **उपन्यस्यति**—उप्+नि+अस्+(दिवादि) लट् ति । बता देता है । 'उपसर्गात् अस्यत्यूह्योर्वा वचनम्' वार्त्तिक से विकल्प से आत्मनेपद 'उपन्यस्यते' रूप बनता है—(उपसर्ग यदि पहले हो तो अस् और ऊह् का विकल्प से आत्मनेपद होता है) । **कृत्यवर्त्म**—कृ+क्यप् भावे कृत्य, तस्य वर्त्म षष्ठी तत्पुरुष तत् । 'अयनं वर्त्ममार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः' इत्यमरः । 'अभिप्रायश्छन्द आशयः' इत्यमरः । 'तीर्थं योनौ जलावतारे च' इति हलायुधः । पूर्णोपमालंकार । 'गुणद्योतकोपमानोपमेयशब्दानां सामग्र्ये पूर्णा' इतिवामनः अर्थात् साधारणगुण, उपमान, उपमेय और वाचक शब्दों के समग्ररूपों में होने पर पूर्णोपमा होती है । दृष्टव्य—षड्गुणाः शक्तयः तिस्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः । ग्रन्थानधीत्य व्याकर्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम् ।। 'तीर्थं' और पयसामाशय के प्रयोग के संबंध में द्रष्टव्य—कृत्याकृत्यविदस्तीर्थेष्वन्तः प्रणिधयः पदम् । विदांकुर्वन्तु महतस्तलं विद्विषदम्भसः ।। (शिशुपाल २) (गाह्—गाहते, अगाहत, जगाहे, गाहिष्यते, घाक्ष्यते, अगाहिष्ट । अस्—अस्यति, आस, आस्थत् ।)

वाच्यपरिवर्तनः—लोकाः विषममपि नयं कृततीर्थं पयसामाशयमिव विगाहन्ते । तत्र येन सत्कृत्यवर्त्म उपन्यस्यते तेन विशेषदुर्लभेन भूयते ।।३।।

अथ ग्राह्यत्वे हेतुमाह—

यद्यपि द्रौपदी की वाणी स्वल्प है तो भी अत्यन्त सारगर्भित एवं गौरव-पूर्ण है—

परिणामसुखे गरीयसि व्यथकेऽस्मिन् वचसि क्षतौजसाम् ।
अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः ।।४।।

अन्वयः—परिणामसुखे गरीयसि क्षतौजसाम् व्यथके अल्पीयसि अस्मिन् वचसि अतिवीर्यवति भेषजे इव बहुगुणो दृश्यते ।

परिणामेति । परिणामः=फलकालः परिपाकावस्था च तत्र सुखे हिते । 'शस्तं चाथ त्रिषु द्रव्य पापं पुण्यं सुखादि च ।' इति सुखशब्दस्य विशेष्यलिंगत्वम् । गरीयसि भूयिष्ठे श्रेष्ठे च । क्षतौजसामुभयत्रापि क्षीणशक्तीनाम् व्यथके युद्धोपोद्बलकत्वाद्भयंकरे । अन्यत्रादौ संशयादिदुःखजनके । अल्पीयस्यल्पाक्षरेऽल्पमात्रे च । उक्तं च—'स्वल्पा च मात्रा बहुलो गुणश्च ।' अस्मिन् वचसि द्रौपदीवाक्ये । अतिवीर्यवत्यत्यन्तसामर्थ्यवति भेषज औषध इव । 'भेषजौषधभेषज्यानि' इत्यमरः । बहुरनेको गुणो मानत्राणराज्यलाभादिरारोग्यबलपोषादिश्च दृश्यते । अतो ग्राह्यमस्याः वचनमिति भावः ॥४॥

हिन्दी अनुवाद—अन्त में सुख देने वाली, गम्भीर और निर्बलों को उत्साहप्रदायिनी थोड़ी भी इस (द्रौपदी) की वाणी में महाप्रभाववाली थोड़ी औषधि के समान बहुत गुण दिखलाई पड़ते हैं ।

English Translation—There is seen great merit in this very short speech as (is seen) in a powerful (little) drug, bitter though beneficial in the long run to those who have lost their strength.

संस्कृतभावार्थः—यथा स्वल्पमपि मुहूर्तमात्रकटुकमौषधं पश्चात् हितकरं भवति तथा च निर्बलानां शक्तिवर्धकं च जायते तथैव संक्षिप्तमपि सारगर्भितं महदभिप्रायान्वितं निरुत्साहानामुत्साहवर्धकञ्च द्रौपदीवाक्यं परिणामसुखदम् अस्ति ।

व्याख्या—भीम के वचन का अभिप्राय है कि द्रौपदी का संक्षिप्त वक्तव्य भले ही कटु हो पर परिणाम में सुखद है । जैसे थोड़ी भी औषधि स्वाद में कटु होते हुए भी रोगी को शीघ्र ही शक्तिप्रदान करके नीरोग बना देती है । अतः शक्तिवर्धक औषधि के समान द्रौपदी का वाक्य भी कल्याणकारक होने से ग्राह्य है ।

टिप्पणी—परिणामसुखे—परि+नम्+घञ्—परिणाम; सुखं करोतीति सुख+णिच्+लट् तिप्—सुखि (नाम धातु) +ति सुखयति; सुखयतीति—सुखि+अच् कर्त्तरि पचादि सुखम् परिणामे सुखम् परिणामसुखम् (सहसुपेति समासः) तस्मिन् अथवा परिणामे सुखम् हितमिति परिणामसुखं तस्मिन्। "शस्तं चाथ त्रिषु द्रव्ये पापं पुण्यं सुखादि च" अमरकोश के अनुसार पाप, पुण्य और सुख आदि शब्द द्रव्यवाची होने पर तीनों लिंगों में प्रयुक्त होते हैं। अतएव 'वचन' और 'भेषज' इन विशेष्यों के अनुसार ही सुखं शब्द नपुंसकलिंग में प्रयुक्त हुआ है। द्रष्टव्य—'शैलाधिरोहणसुखान्युपलेभिरे ते'—(रघुवंश १३ सर्ग)। **गरीयसि**—अतिशयेन गुरु इति गुरु+ईयसुन्=गर्+ईयसुन् गरीयस् तस्मिन्। 'वचसि' और 'भेषजे' का विशेषण है। **क्षतौजसाम्**—क्षण+क्त=क्षत; क्षतम् ओजः शेषां ते (बहुव्रीहि) तेषाम्। 'कर्तृकर्मणोः कृति'—कृद्योग में कर्त्ता और कर्म में षष्ठी होती है—इस नियम से 'व्यथके' इस कृत्प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी हुई है। **व्यथके**—व्यथयतीति—व्यथ्+णिच्+ण्वुल् कर्त्तरि व्यथकं तस्मिन्। 'ये मूहूर्तमात्रकटुकं पश्चात् पथ्यमुपदिशंति'। 'मुद्रा' 'वचस्' और 'भेषज' आरंभ में कटु हैं पर अन्त में दोनों सुखद होंगे। **अस्मिन् वचसि**—अधिकरणे सप्तमी—प्रथम सर्ग के २७ से ४६ श्लोक तक कही हुई द्रौपदी की वक्तृता की ओर संकेत है। **अतिवीर्यवति**—वीरस्य भावः इति वीर+ष्यञ्=वीर्यम्; वीर्यमस्ति अस्य इति वीर्य+मतुप् (वतुप्)—वीर्यवत् अतिशयेन वीर्यवत् प्रादितत्पुरुष तस्मिन्। (भेषजपक्षे—अत्यन्तशक्तिसम्पन्ने, वचस् पक्षे—महाप्रभावे)। **अल्पीयसि**—अतिशयेन अल्पम् इति अल्प+ईयसुन्—अल्पीयस् तस्मिन्। **भेषजे**—भेषं रोगं जयतीति भेष+जि+ड कर्त्तरि भेषजं तस्मिन्। 'भेषजौषधभैषज्यान्यगदो जायुरित्यपि' इत्यमरः। 'ओजो दीप्तौ बले स्रोत इन्द्रिये निम्नगारये' इत्यमरः। 'व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचन वचः' इत्यमरः। 'परिणामोऽवसानः स्यात्परिपाकदशाऽपि च' इति कोषः। **बहु**—गुण का विशेषण। **गुणः**—उक्ते कर्मणि प्रथमा। समस्त विशेषण भेषज और वचन दोनों के साथ लगते हैं अतः पूर्णोपमालंकार है। यह श्लोक भारवि के अर्थगौरव का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। **दृश्यते**—अनुवदते गुणबाहुल्यमुपलभ्यते।

(दृश्—पश्यति, पश्यतु, पश्येत्, अपश्यत्, ददर्श, अद्राक्षीत्—अदर्शत्, द्रक्ष्यति)

वाच्यपरिवर्तनः—परिणामसुखे···बहुं गुणं पश्यामि (अथवा पश्यन्ति जनाः)।

सत्यमेवं तथापि मह्यं न रोचते, किं करोमीत्यत आह—

जो वाणी वृहस्पति को भी चकित कर सकती उससे आपको भी प्रभावित होना चाहिए। यह सत्य है तथापि मुझे यह चिकर नहीं तब क्या करणीय है—

इयमिष्टगुणाय रोचतां रुचिरार्था भवतेऽपि भारती।
ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः ।।५।।

अन्वयः—रुचिरार्था इयं भारती इष्टगुणाय भवते अति रोचताम्। गुण-गृह्याः विपश्चितः वचने वक्तृविशेषनिःस्पृहाः ननु ।।५।।

इयमिति। रुचिरार्था महितार्थसम्पन्नति रुचिहेतूक्तिः। इयं भारती द्रौपदीवाक्यमिष्टगुणाय। गुणग्राहिण इत्यर्थः। भवते तुभ्यमपि 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी। रोचतां स्वदताम्। विध्यर्थे लोट्। हितवचने बलादपीच्छां कुर्यादौषधवदिति भावः। तथापि स्त्रैणे वचसि का श्रद्धा तत्राह—नन्विति गुणानां गृहया गुणगृह्याः। गुणपक्षपातिनः इत्यर्थः। 'पदास्वैरिवाह्या-पक्ष्येषु च' इति ग्रहेः क्यप्। विपश्चितो विद्वांसः। 'विद्वान्विपश्चिद्दोषज्ञ' इत्यमरः। वचने विषये वक्तृविशेषे स्त्रीपुंसादिलक्षणे। निःस्पृहा ननु निरास्थाः खलु। 'बालादपि सुभाषितं ग्राह्य' मिति न्यायादिति भावः ।।५।।

हिन्दी अनुवाद—सुन्दर भावों से भरी यह वाणी गुणों के पक्षपाती आपको भी अच्छी लगे। गुणग्राही विद्वान् लोग बोलने वाले की विशेषता पर आस्थावान् नहीं होते (अपितु वाणी के गुण की ओर ध्यान देते हैं)।

English Translation—Let this speech of excellent substance please you also who is an appreciation of virtue. In connection with a speech the wise are attracted by merit and

are indeed indifferent to the individuality of the speakers...(i. e. they do not care who the speaker is, they mind the merit of speech only).

संस्कृतभावार्थः—यद् द्रौपद्योक्तम् तद् वचनमतिरमणीयं गरीयः समयोचितमतः ग्राह्यम् । भवांस्तु तत्स्वीकरोतु यतो भवान् गुणग्राही । गुणग्राहिणो वक्तृजने न श्रद्दधति अपि तु वक्तृतायामेव तेषां मनः सज्जते । यदि वृद्धस्य वचनं निःसारं तर्हि तदुपेक्षणीयम् । स्त्रीबालकवचनंसारवदपि ग्राह्यम् 'युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि । अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मयोनिना' इति नीतिमनुसरतां भवता मे प्रार्थना स्वीकर्त्तव्येति भावः ।

व्याख्या—द्रौपदी का वक्तव्य भावपूर्ण एवं सारगर्भित है जो वृहस्पति को भी विस्मित करने वाला है तथा उससे चारों भाई प्रभावित हैं । आप गुणग्राही हैं । अतः वक्ता की ओर ध्यान न देकर वक्तृता पर विचार कीजिए । स्त्री के वचन अग्राह्य हैं, ऐसा न सोचिए । क्योंकि 'बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्' अर्थात् बालक से भी अच्छी बात ग्रहण करनी चाहिए ।

टिप्पणी—**इयम्**—द्रौपदी की (भारती) वाणी की ओर संकेत है । **रुचिरार्या**—रुचिरः अर्थ—अस्याः सा (बहुव्रीहि) हिताशया । **भारती**=भरतस्य इयं; भरत+अण् स्त्रियाम् । 'भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नराश्रयः' साहित्यदर्पण । **इष्टगुणाय**—इष+क्त कर्मणि—इष्ट, इष्टः गुणः यस्य सः (बहुव्रीहि) तस्मै । 'इष्ट' में 'वर्तमाने क्त' 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' नियम से हुआ है । 'निकामेष्टं यथेप्सितम्' इत्यमरः । **भवतेऽपि**—'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' रुच् तथा रुच् के समान अर्थ वाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान में प्रयुक्त होता है—सूत्र से यहाँ चतुर्थी का प्रयोग हुआ है । अपि समुच्चयार्थ में है । **रोचताम्**—रुच्+लोट् का कर्त्ता है 'भारती' । मल्लिनाथ ने यहाँ विधि में लोट् बताया है । भट्टोजि दीक्षित के अनुसार 'विधिः प्रेरणम्, भृत्यादेः निकृष्टस्य प्रवर्त्तनम्' नौकर आदि अपने से छोटे को कार्य में प्रवृत्त करना विधि है । भीम अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को आज्ञा नहीं दे सकते, प्रार्थना कर सकते हैं, अतः प्रार्थना या प्राप्त काल के अर्थ में लोट् प्रयुक्त

हुआ है। **गुणगृह्याः**—गृह्यते इति ग्रह्+क्यप्। 'पदास्वैरिवाह्यापक्ष्येषु-पद', अस्वतंत्र, बाह्य और पक्षाश्रित अर्थ में ग्रह् को क्यप् होता है—इस सूत्र से ग्रह् को क्यप् हो गया। गुणानां गृह्याः (षष्ठी तत्पुरुष) गुणग्राह्याः हरदत्त के अनुसार यहाँ शेषे षष्ठी और कारक दोनों ही हो सकती है 'किन्तु शेषे षष्ठी' अधिक उचित है। द्रष्टव्य—'तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनुः' (रघुवंश द्वितीय) **विपश्चितः**—विद्वांसः। 'विद्वान्विपश्चिद्दोषज्ञः' इत्यमरः। विपश्चित् के रूप 'भूभृत्' के समान चलेंगे। वचने विषयाधिकरण सप्तमी। **वक्तृविशेषनिःस्पृहा ननु** वच्+तृच् कर्त्तरि—वक्ता। स्पृह्+अङ् भावे—स्पृहा। निर्गता स्पृहा येषां ते निःस्पृहाः (बहुव्रीहि) वक्तृणां विशेषः—(षष्ठी तत्पुरुष); वक्तृविशेषे निःस्पृहाः इति वक्तृविशेषनिःस्पृहाः। 'सप्तमी शौण्डैः' इति समासः शौण्डादेः आकृतिगणत्वात्। **ननु**—अवधारण अर्थ में 'ननु प्रश्नेऽवधारणे' इति हलायुधः। द्रष्टव्य—'उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे' (रघुवंश प्रथम) भावसाम्य के लिए द्रष्टव्य :—

'स्त्रीपुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम्।' कुमार० सग ६, १२

'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।' उत्तररामच० ४, १२

(रुच्—रोचते, रोचताम्, अरोचत, रुरुचे, अरोचिष्ट, रोचिष्यते) ॥५॥

वाच्यपरिवर्तनः—रुचिरार्थया अनया भारत्या इष्टगुणाय भवतेऽपि रुच्यताम्। गुणगृह्यैर्विपश्चिद्भिर्वचने वक्तृविशेषनिःस्पृहैर्भूयते।

सम्प्रति स्वयमुपालभते—

भीम उपालम्भपूर्वक कहते हैं—

चतसृष्वपि ते विवेकिनी नृप विद्यासु निरूढिमागता।
कथमेत्य मतिर्विपर्ययं करिणी पङ्कमिवावसीदति ॥६॥

अन्वयः—हे नृप चतसृष्वपि विद्यासु निरूढिमागता विवेकिनी ते मतिः कथं करिणी पङ्कमिवेत्य अवसीदति।

चतसृष्वति। हे नृप चतसृष्वपि विद्यास्वान्वाक्षिक्यादिषु। 'आन्वीक्षिकी

त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती। विद्याश्चैताश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः ।।' इति कामन्दकः। निरूढिमागता प्रसिद्धिः गता अतएव विवेकिनी सदसद्विवकवती। यथाह मनुः "आन्वीक्षिक्यां तु विज्ञा ं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ। अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ" इति। ते मतिः करिणी पङ्कमिव विपर्ययं वैपरीत्यमविवेकरूपमेत्यावसीदति नश्यति, तन्न ुक्तमिति भावः।

हिन्दी अनुवाद—हे राजन्, चारों विद्याओं (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति) में प्रसिद्ध, सदसत् को समझने वाली तुम्हारी बुद्धि विचार विपर्यय को प्राप्त होकर कीचड़ में फंसी हथिनी के समान कैसे नष्ट हो रही है।

English Translation—Oh King, why does your distinguishing intellect, that has acquired fame in all the four sciences, having now suffered reverse, is helpless like a she-elephant on getting into mire ?

संस्कृतभावार्थः—द्रौपदीवचनमहत्त्वोपपादितेऽपि महाराजं युधिष्ठिरं तदनवहितमवलोक्य भीमः कथयति। यथा चतुश्चरणेषु स्थिताऽपि स्वप्राणभयशंकितापि हस्तिनी पङ्के पतिता अवसीदति तथैव ते मतिः राजोचितासु चतसृषु विद्यासु प्रसिद्धि गता शत्रुविहितकपटप्रपञ्चे निमग्ना अस्ति। पंके निमग्नाः पशवो बलवता पुरुषेणोत्तायन्ते परञ्च करिणीमुद्धर्तुं न कोऽपि शक्नोति। क्षुद्रजनबुद्धिविपर्ययपतिता विबोधनीया। भवन्मतिस्तु केन विबोधयितुं शक्यते।

व्याख्या—चारों विद्याओं में निष्णात तुम्हारी बुद्धि शीघ्र ही भले-बुरे का विवेचन करने में समर्थ है। पर पंकनिमग्ना हथिनी के समान तुम्हारी मति भ्रष्ट हो गई है। सदसत् की विवेचना करने का आप कोई प्रयत्न ही नहीं करते।

टिप्पणी—**हे नृप**—राजन्। नृन् पातीति नृपः—नृ+पा+क कर्त्तरि तत्सम्बुद्धौ। **चतसृषु विद्यासु**—वेत्ति विद्यते वा अनया इति विद्या; विद्+क्यप्

करणे। तासु, अधिकरणे सप्तमी। "आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती। विद्या ह्येताश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः" कामन्दक अर्थात् आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्त्ता और दण्डनीति ये चारों विद्याएँ संसार की स्थिति के कारण हैं। आन्वीक्षिकी आत्मान्वेषण के साधन तर्क को कहते हैं। ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद को त्रयी अथवा (वेदत्रयी) कहते हैं। वार्त्ता, कृषि, वाणिज्य आदि अर्थोपार्जन के उपायों को बताने वाला शास्त्र है। दण्डनीति के द्वारा अर्थ-संरक्षण तथा नीति-अनीति का ज्ञान प्राप्त होता है। मनु के अनुसार 'आन्वीक्षिक्यां तु विज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ। अथानर्थौ च वार्त्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ ॥' अर्थात् आन्वीक्षिकी से ज्ञान, त्रयी से धर्म और अधर्म, वार्ता से लाभ तथा हानि और दण्डनीति से न्याय एवं अन्याय (का ज्ञान) प्राप्त होता है। **निरूढिमागता**—नि+रूह्+क्तिन् भावे—निरूढि, ताम्। आ+गम्+क्त—कर्त्तरि स्त्रियाम् आगता। **कथम्**—अव्यय; केन प्रकारेण इति किम्+थमु+कथम्। एत्य—आ+इ+ल्यप्। मतिः—मन्+क्तिन् भावे। **विपर्ययम्**—वि+परि+इ+अच् भावे, तम्। 'एत्य' का कर्म है। **विवेकिनी**—वि+विच्+घञ् भावे विवेक=सः; अस्ति अस्याः प्रशस्तः इति विवेक+इनि मत्वर्थे स्त्रियाम् विवेकिनी 'प्रशंसायां मतुप्'। मतुप् के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं—"भूमिनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। संसर्गेऽस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुवादयः ॥" अथवा विविनक्तीति वि+विच्+घिनुण् कर्त्तरि स्त्रियाम्—विवेकिनी। करिणी—प्रशस्तः करः अस्ति अस्याः इति कर+इनि मत्वर्थे स्त्रियां प्रशंसायाम्—करिणी 'अवसीदति' का 'कर्त्ता' है। कर का अर्थ है 'सूँड़'। **अवसीदति**—अव+सद्+लट् ति। (ससाद, असदत्, सत्स्यति)। ते मतिः करिणी पंकमिवावसीदति में पूर्णोपमालंकार है। 'मति' की 'तुलना' 'करिणी' से, 'विपर्यय' को 'पंक' से की गई है। 'करिणी हस्तिनी प्रोक्ता धेनुका च वशाऽथवा' इति कोष, 'स्वाद्व्यत्यासो विपर्यासो व्यत्ययश्च विपर्यये' इत्यमरः ॥६॥

वाच्यपरिवर्तनः—निरूढिमागतया विवेकिन्या मत्या करिणया····· कथमवसद्यते।

किं नश्छिन्नमिदानीं येनेत्थमुपालभ्यमहोत्यत्राह—हमारा क्या बिगड़

गया है जो इस प्रकार उलाहना दिया जा रहा है। इस संबंध में भीम कहते हैं :—

विधुरं किमतः परं परैरवगीतां गमिते दशामिमाम् ।
अवसीदति यत्सुरैरपि त्वयि सम्भावितवृत्तिपौरुषम् ॥७॥

अन्वयः—त्वयि परैः इमाम् अवगीताम् दशां गमिते सुरैरपि सम्भावितवृत्ति पौरुषम् अवसीदति अतः परं किं विधुरम् ।

विधुरमिति त्वयि परैः शत्रुभिरिमामीदृशीमवगीतां गर्हिताम् । 'अवगीतं तु निर्वादे मुहुर्धृष्टे च गर्हिते' इति विश्वः । दशां गमिते प्रापिते सति । सुरैरपि सम्भावितवृत्ति बहुकृतप्रसारम् । अथवा निश्चितसद्भावम् । पौरुषं पुरुषकारः । युवादित्वादणप्रत्ययः । अवसीदति नश्यतीति यत् । अतः परम् अतोऽन्यदधिकं किं विधुरं किं कष्टम् । न किञ्चिदित्यर्थः । "विधुरं प्रत्यवाये स्यात्कष्टविश्लेषयोरपि ।" इति वैजयन्ती । अस्तीति शेषः । 'अस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्ति' इति भाष्यकारः । भवन्तीति लटः पूर्वाचार्याणां संज्ञा । यद्वा पुरुषाधिकारस्य दुर्दशा सा शत्रुकृता । तदुपरि महत्कष्टं तच्च त्वदुपेक्षयेत्युपालभ्यत इत्यर्थः ॥७॥

हिन्दी अनुवाद—शत्रुओं के द्वारा तुम्हारे इस अवस्था में पहुँचा दिये जाने पर (तुम्हारा) पुरुषार्थ, जिसकी प्रशंसा देवता लोग भी करते हैं, नष्ट हो रहा है। इससे बढ़कर और क्या कष्ट हो सकता है ?

English Translation—What can be a greater calamity than this that, on your, having been brought to this sad plight by enemies, the very prowess which is respected by the gods, is fading away.

संस्कृतभावार्थः—यस्य शक्तिर्नास्ति स यदि शत्रुभिः पीड्यते तर्हि युक्तमेव यतः स प्रतीकारकरणेऽसमर्थः । परञ्च तव पौरुषं तु देवैरपि सम्मानितं ते त्वद्बिभ्यतीत्थं शक्तिसम्पन्नोऽपि इमां गर्हितां दशां प्रापितोऽसि । एतत्सर्वं त्वदुपेक्षायाः फलम् । तस्मादतोऽधिकं अद्भुतं कष्टं न दृश्यते ।

व्याख्या—आपकी शक्ति की प्रशंसा देवता लोग भी करते थे। इतन शौर्यसम्पन्न होकर भी शत्रुओं के कारण आपकी यह दुर्दशा हो रही है। इस बात का महान् कष्ट है।

टिप्पणी—**त्वयि परैः**—शत्रुभिः अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। **अवगीतां**—गर्हितां अव+गै+क्त स्त्रियाम्, ताम्। 'अवगीतः ख्यातगर्हणः' इत्यमरः। 'अवगीतं तु निर्वादे मुहुर्दृष्टे च गर्हिते' इति विश्वः। **इमां दशां गमिते**—राज्यनाश-वनवासादिरूपामिमामवस्थां प्रापिते सति। गम्+णिच्+क्त कर्मणि-गमित, तस्मिन्। 'दशाम्' कर्म है 'गमिते' का। **अवसीदति**—नश्यति; अव+सद्+लट् ति; इसका कर्त्ता है 'पौरुषम्'। **सुरैरपि**—विबुधैरपि; अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। 'अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः' इत्यमरः। **सम्भावितवृत्ति**—सम्+भू+णिच्+क्त कर्मणि स्त्रियाम्—सम्भाविता; वृत्+क्तिन् भावे—वृत्तिः सम्भाविता वृत्तिर्यस्य तत् (बहुव्रीहि)। 'पौरुषम्' का विशेषण है। द्रष्टव्य—'सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्'—(शाकुन्तलम्) 'भूयिष्ठसम्भाव्यकुलेष्व-मीषु' (रघुवंश) मल्लिनाथ के अनुसार इसके दो अर्थ होते हैं। (१) जिसका प्रसार सम्मानित है बहुकृतप्रसारम्—बहुकृतः पूजितः प्रसारो यस्य तत् (२) दूसरा अर्थ है निश्चितसद्भावम्—निश्चितः अवधारितः सद्भावः अस्तित्वं यस्य तत् जिसका अस्तित्व निश्चित किया गया है। चित्रभानु 'वृत्ति' का अर्थ मनोव्यापार बताते हैं। अर्थात् देवताओं द्वारा भी जिसका मनोव्यापार सम्मानित है। **पौरुषम्**—पुरुषस्य भावः कर्म वा इति पुरुष+अण्—पौरुषम्; 'हायनान्तःयुवादिभ्योऽण्' सूत्र से पुरुष में अण्प्रत्यय लगा क्योंकि पुरुष 'युवादि' के अन्तर्गत है। **अतः**—एतद्+ङसि (चमी) +तसि स्वार्थे=अतः, परशब्दयोगेपंचमी से। **परं**—का अर्थ है 'अधिकं' 'विधुरम्' का विशेषण है। 'परः श्रेष्ठारिदूरान्योत्तरे क्लीबन्तु केवले' इति मेदिनी। 'पुम्भावे तत्क्रियायां च पौरुषम्' इत्यमरः। **विधुरम्**—विगता धूः अस्मिन् इति (बहुव्रीहि) क्लीबत्वं लोकात्; वि+धुर् को 'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे' सूत्र से विधुर हो जाता है, सूत्रार्थ—ऋच् पुर् अप और पथिन् में समासान्त 'अ' जोड़ दिया जाता है पर जब धुर् का सम्बन्ध 'अक्ष' से होता

है तव नहीं। वैकल्पिक रूप होता है 'विगतधुरम्' 'प्रादिभ्यो धातुजस्य बहुव्रीहिः वाच्यो वाचोत्तरपदलोपः' वार्त्तिक से ।।७।।

वाच्यपरिवर्तनः—सम्भावितवृत्तिना पौरुषेण यत् अवसद्यते अतः परेण केन विधुरेण भूयते।

अथोपेक्षाकालत्वादियमुपेक्षेत्याशंक्य नायमुपेक्षाकालः इति वक्तुं तदेव तावच्छ्लोकद्वयेन विविनक्ति—यह उपेक्षा का समय नहीं है; शत्रु की उन्नति एवं अवनति दोनों को सावधानी से विवेचना करनी चाहिए—

द्विषतामुदयः सुमेधसा गुरुरस्वन्ततरः सुमर्षणः।
न महानपि भूतिमिच्छता फलसम्पत्प्रवणः परिक्षयः ।।८।।

अन्वयः—भूतिमिच्छता सुमेधसा गुरुः अस्वन्ततरः द्विषतामुदयः सुमर्षणः महानपि फलसम्पत्प्रवणः परिक्षयः न उपेक्ष्यः।

द्विषतामिति। भूतिमुदयमिच्छता। शोभना मेधा यस्य तेन सुमेधसा सुधिया। "नित्यमसिच्प्रजामेधयोः" इत्यसिच्प्रत्ययः। गुरुर्महानप्यस्वन्ततरोऽत्यन्तदुरन्तः। क्षयोन्मुख इत्यर्थः। द्विषतामुदयो वृद्धिः। सुखेन मृष्यतइति सुमर्षणः सुसहः। उपेक्ष्य इत्यर्थः। स्वन्तश्चेद् दुर्मर्षण इति भावः। "भाषायां शासि—" इत्यादिना खलर्थे युच्प्रत्ययः। महानपि फलसम्पत्प्रवणः फलसम्पदुन्मुखः। "प्रणिरन्तर—" इत्यादिना णत्वम्। परिक्षयो न सुमर्षणः। नोपेक्ष्य इत्यर्थः। अन्यथा तूपेक्ष्य इतिभावः। नह्युदय एव प्रति कार्यो न च क्षय इत्येवोपेक्ष्यः किन्तुस्वन्तत्वास्वन्तत्वाभ्यामुभावपि प्रति कार्यावुपेक्ष्यौ च भवत इत्यर्थः ।।८।।

हिन्दी अनुवाद—ऐश्वर्याभिलाषी बुद्धिमान् राजा के द्वारा महान् अशुभ परिणाम वाला शत्रुओं का उत्कर्ष सहा जा सकता है पर अभ्युदय की ओर अग्रसर उसका बड़ा विनाश भी उपेक्षणीय नहीं है।

English Translation—By the wise king, desiring fortune, the rise of the enemies though great can easily be tolerated if its

end is not at all good; but not even a heavy decadance if fostering to the accomplishment of their purpose.

संस्कृतभावार्थः—दुर्योधनस्योपचीयमानां शक्तिमाकर्ण्यापि भवता स उपेक्ष्यते। यदि वर्तमाना दशा उत्तमा किन्तु अनुदिनं क्षीयमाणा तर्हि च स शत्रु रुपेक्ष्यः। परञ्च यस्य दशा क्षीणापि शनैः शनैरुन्नतिमुपैति स कदापि नोपेक्षणीयः। शुभाशुभपरिणामेन प्रतिकार्योऽथवोपेक्षणीयः इति विशदार्थः।

व्याख्या—हस्तिनापुर में शत्रु के अभ्युदय का समाचार सुनकर भी आप मौन हैं इससे आपको चिन्तित होना चाहिए। यदि इस सम्बन्ध में आपको निश्चय है कि इस उन्नति का परिणाम दुःखद होगा तो ठीक है परन्तु इसका प्रमाण क्या। अतः शत्रु के विरुद्ध उठना चाहिए। महदापन्नावस्था में भी शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए जब तक कि यह निश्चित न हो जाय कि वह वर्तमान आपत्तियों पर विजय पाकर पुनः उन्नति न कर लेगा।

टिप्पणी—**भूतिमिच्छता**—भू+क्तिन् भावे भूतिः ताम्, 'कर्म' है 'इच्छता' का। ऐश्वर्य चाहने वाला। **सुमेधसा**—सुशोभना मेधा अस्येति सुमेधः (बहुव्रीहि) तेन। 'सुमेधस्' के रूप 'वेधस्' की भाँति चलेंगे। 'नित्यमसिच् प्रजामेधयोः'—बहुव्रीहि समास में नञ्, दुस् और सु उपसर्ग के साथ मेधा और प्रजा में असिच् (अस्) लगता है—इस सूत्र से अस् लग कर 'सुमेधस्' बना। अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। **गुरुः**—महानपि। **अस्वन्ततरः**—अशुभ परिणाम वाला शोभनः अन्तरः अस्येति स्वन्तः (बहुव्रीहि) अतिशयेन स्वन्तः स्वन्ततरः—स्वन्त+तरप्। न स्वन्ततरः अस्वन्ततरः (नञ् तत्पुरुष) 'उदयः' का विशेषण है। **द्विषतामुदयः**—शत्रूणां वृद्धिः उद्—इ+अच् भावे—उदयः उक्ते कर्मणि प्रथमा। द्विषन्तीति द्विष्—शतृ कर्त्तरि=द्विषन्तः तेषाम्, 'कृद्योगे कर्त्तरि षष्ठी'। शत्रु के अर्थ में 'द्विष्' में 'द्विषोऽमित्रे' सूत्र से शतृ प्रत्यय लगता है। द्रष्टव्य—प्रथमसर्ग श्लोक २७। **सुमर्षणः**—सुसहः; सु सुखेन मृष्यते इति सु+मृष्=युच् (खलर्थे) कर्मणि। 'उदयः' का विशेषण है? 'भाषायां शासियुधिदृशिमृषिमृषिभ्योयुज् वक्तव्यः—' भाषा में शास्, युध, दृश्, धृष, मृष् धातुओं से खल् के स्थान पर युच् प्रत्यय लगना चाहिए—इस सूत्र से युच् प्रत्यय लगा है।

महानपि—विपुलोऽपि। **फलसम्पत्प्रवणः**—(फलसिद्धि प्रति उन्मुखः) सम्+पद्+क्विप् भावे—सम्पत्, वनंप्रगतः प्रवणः (उन्मुखः) 'अल्पादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' वार्तिक से 'प्रादितत्पुरुष' हुआ। फलस्य सम्पत् (षष्ठी तत्पुरुष) फलसम्पदि प्रवणः सुपसुपेति समासः 'परिक्षय' का विशेषण है। 'प्रणिरन्तः शरेक्षुल्पक्षाम्रकार्यखदिरपी यूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि' सूत्र से 'वन' के 'न' का 'ण' आदेश हो गया। सूत्रार्थ यदि 'वन' शब्द प्र, निर, अन्तर, शर, इक्ष, आम्र, कार्य, खदिर और पीयुक्षा के बाद आवे तो उसके 'न' का ण' हो जाता है, पर वह संज्ञा का द्योतक नहीं होता। द्रष्टव्य—'सम्पन्नतालद्वयसः पुरस्तात्' (भट्टि द्वितीय)।

परिक्षयः—परि+क्षि+अच् भावे उक्ते कर्मणि प्रथमा। वाक्य है—परिक्षयः न सुमर्षणः ॥८॥

वाच्यपरिवर्तनः—भूतिमिच्छम् सुमेधाः गुरुमस्वन्ततरं द्विषतामुदयं अथवा गुरुणा अष्वन्तरेण उदयेन सुमर्षेण (भूयते)। महतापि फलसम्पत्प्रवणेन परिक्षयेण न सुमर्षेण भूयते।

अथोभयोरपि मध्य एकतरस्योदयक्षययोर्गतिमुक्त्वेदानीं युगपत् परिक्षयागमे गतिमाह—

यदि दोनों में से एक की अर्थात् अपनी उन्नति हो तथा शत्रु की हानि हो तो उपेक्षा करने में भी कोई क्षति नहीं—

अचिरेण परस्य भूयसीं विपरीतां विगणय्य चात्मनः।
क्षययुक्तिमुपेक्षते कृती कुरुते तत्प्रतिकारमन्यथा ॥९॥

अन्वयः—कृती परस्य अचिरेण भयसीम् क्षययुक्ति आत्मनः विपरीतां च विगणय्य उपेक्षते, अन्यथा तत्प्रतिकारं कुरुते ॥९॥

अचिरेणेति। कृतमनेनेति कृती। कुशल इत्यर्थः। "इष्टादिभ्यश्च" इतीनिप्रत्ययः। परस्य शत्रोः क्षययोगमचिरेणाशुभाविनीं भूयसीं दुरन्तां च, तथात्मनः क्षययुक्ति विपरीतां चिरभाविनीमल्पीयसीं च विगणय्य विचार्य।

"ल्यपि लघुपूर्वात्" इत्ययादेशः। उपेक्षते। अन्यथोक्तवैपरीत्ये। परस्य क्षययुक्तावल्पीयस्याम्, स्वस्य भूयस्यां च सत्यामित्यर्थः। तत्प्रतिकारं तस्याः क्षययुक्तेः प्रतिकारमचिरेणाशु कुरुते। एवं सति यदा शत्रोरभ्युदयः स्वस्य चातिपरिक्षयो यथास्माकं तदा किं वक्तव्यम्। सद्यः प्रति कुरुत इत्यर्थात्सिद्ध-मनुसंधेयम् ॥६॥

हिन्दी अनुवाद—चतुर राजा शत्रु के शीघ्र होने वाले प्रचुर क्षय और अपने विपरीत चिरकाल में होने वाली अल्प वृद्धि के योग को विचार कर उपेक्षा करता है, अन्यथा उसका प्रतिकार करता है।

English Translation—An experienced man waits on seeing heavy and immediate loss to the enemy and the averse to himself. otherwise he resorts to countermeasures.

संस्कृतभावार्थः—धर्म एवं हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः इति अधर्म-मूलको दुर्योधनस्याभ्युदयोऽतस्तस्य नाशो निश्चितः धर्मावलम्बिनामस्माकंविजयो भविष्यतीति विचार्याकर्मण्यतां मा अजस्व। दक्षो जनस्तु शत्रोराशुभाविनं महान्तं क्षयं तथा स्वचिरसम्भवं तमवलोक्योपेक्षते। अथ चिरादा-गच्छन्तीमरेर्विपत्तिम् निजस्य च शीघ्रमेव भाविनीं ज्ञात्वा तत्प्रतिकारार्थं प्रयतते। साम्प्रतं तु दुर्योधनः सम्पन्नावस्थायां वर्तते तस्य क्षयो भवतु मात्र। अस्माकमुन्नतिः का वार्त्ता। स्वोन्नत्यै चेष्टेतेति विशदार्थः।

व्याख्या—आपने तो अकर्मण्यता का आश्रय लिया है, पर एक कुशल व्यक्ति जब देखता है कि शत्रु की बड़ी भारी हानि शीघ्र ही तथा अपनी चिरकाल में कम होने वाली है तो चुप होकर बैठ रहता है। यदि वह इसके विपरीत देखता है अर्थात् शत्रु की हानि कम और अपनी अधिक तो प्रति-कारार्थ कटिबद्ध हो जाता है, पर हमारी वर्तमान दशा शोचनीय है। शत्रु की सतत वृद्धि हो रही है, हमारी हानि। कोई भी कुशल व्यक्ति आपके समान चुप न बैठता, वरन् अवश्य प्रतिकार करता।

टिप्पणी—कृती—कुशलः—कृ+क्त नपुंसके भावे, कृतमस्ति अस्येति कृत+इनि मत्वर्थे सु=कृती। मल्लिनाथ के अनुसार 'इष्टादिभ्यश्च' सूत्र से

कर्तृवाच्य में 'इनि' का प्रयोग हुआ है, किन्तु इष्टादिगण में 'कृत' कहीं भी नहीं आया है फलतः 'कृतमनेन कृती' इस अर्थ में 'इष्टादिभ्यश्च' से 'इनि' न होगा। अतएव मत्वर्थ में 'इनि' होगा। अथवा क्रियते इति कृ+क्त कर्मणि कृतं कर्म; प्रशस्तं कृतमस्य इति कृत+इनि प्राशस्त्ये। द्रष्टव्य—'न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान्'—रघुवंश। 'मधुकरत्वं खलु कृती'—शाकु० १.। **परस्य**—शत्रोः; शेषे षष्ठी। **अचिरेण**—चिरेण-विभक्तिप्रतिरूपक अव्यय, न चिरेणेति अचिरेण (नञ् तत्पुरुष) अपवर्गे तृतीया। अव्ययत्वात् सुब्लोपः। **भूयसीम्**—अतिशयेन बहु इति बहु+ईयसुन् स्त्रियाम् भूयसी, ताम् क्षययुक्ति का विशेषण है। **क्षययुक्तिं**—क्षययोगं। युज्+क्तिन् भावे—युक्तिः; क्षि+अच् भावे क्षय; क्षयस्य युक्तिः (षष्ठी तत्पुरुष) ताम्। **विपरीतां**—वि+परि+इ++क्त कर्त्तरि स्त्रियाम्; ताम्। **विगणय्य**—वि+गण्+णिच् (चुरादि)+ल्यप्। 'ल्यपि लघुपूर्वात्'—नियम से 'णिच्' के स्थान पर 'अय' आदेश हो जाता है क्योंकि 'णिच्' ह्रस्व स्वर के बाद आता है। **उपेक्षते**—उप+ईक्ष+लट् 'कृती' इसका 'कर्त्ता' है। **अन्यथा**—अन्य+थाल् (प्रकारवचने) तद्विपरीते। **तत्प्रतिकारम्**—प्रति+कृ+घञ् वे=प्रतिकारः तस्य प्रतिकारः (ष० तत्पु०) तम्। 'कुरुते' का कर्म है। 'प्रतीकार' भी शुद्ध है। 'उपसर्गस्य घञि अमनुष्ये बहुलम्' नियम से दीर्घ हो जाता है। कुरुते—करोति 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' नियम से आत्मनेपद हो गया है। मल्लिनाथ के अनुसार इसका अन्वय होगा 'कृती परस्य क्षययुक्तिम् अचिरेण भूयसीम् आत्मनः विपरीताञ्च विगणय्य उपेक्षते। अन्यथा तत्प्रतिकारं कुरुते' अर्थात् चतुर शत्रु के विपुल और शीघ्र होने वाले क्षय और अपने विपरीत अर्थात् देर से होन वाली और अल्प हानि का विचार कर उपेक्षा करता है। ईक्ष्—ईक्षते, ईक्षताम्, ऐक्षत, ईक्षाञ्चक्रे, ऐक्षिष्ट, ईक्षिष्यते। गण्—गणयति—गणयते—गणयाम्बभूव,—गणयामास,—गणयाञ्चकार—गणयाञ्चक्रे, अजीगणत्—अजीगणत ॥९॥

वाच्यपरिवर्तन :—कृतिना·····उपेक्ष्यते अन्यथा तत्प्रतिकारः क्रियते। तथाप्युपेक्षायामनिष्टमाचष्टे—

तथापि उपेक्षा करने में अनिष्ट है। लक्ष्मी इस प्रकार उपेक्षा करने वाले राजाओं का परित्याग कर देती है—

अनुपालय तामुदेष्यतीं प्रभुशक्तिं द्विषतामनीहया ।
अपयान्त्यचिरान्महीभुजां जननिर्वादभयादिवश्रियः ।।१०।।

अन्वयः—उदेष्यतीं द्विषतां प्रभुशक्तिम् अनीहया अनुपालयतां महीभुजां श्रियः जननिर्वादभयादिव अचिरात् अपयान्ति ।।१०।।

अनुपालयतामिति । उदेष्यतीं वर्धिष्यमाणाम् । "आच्छीनद्योर्नुम्" इति विकल्पान्नुमभावः । द्विषतां प्रभुशक्तिं कोशदण्डजं तेजः । "स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्" इत्यमरः । अनीहयाऽनुत्साहेनानुपालयतामुपेक्षमाणानां महीभुजां श्रियं सम्पदो जननिर्वादभयान्निकृष्टपुरुषानुरागोत्थलोकापवाद-भयादिः—त्रेति हेतूत्प्रेक्षा । अचिरादपयान्ति । यथाह कामन्दकः—"स्त्रीभिः षण्ढ इव श्रीभिरलसः परिभूयते" इति । अतः पराक्रमितव्यमित्यर्थः ।।१०।।

हिन्दी अनुवाद—बढ़ती हुई शत्रुओं की प्रभुशक्ति की उपेक्षा करने वाले नृपतियों की लक्ष्मी मानो लोकापवाद के भय से शीघ्र दूर चली जाती है ।

English Translation—Fortune of Kings awaiting without any effort the regal power of enemies that is about to grow, runs away without delay as if through fear of peoples slander.

संस्कृतभावार्थः—यः शत्रोरुपचीयमानां शक्तिमवलोक्योद्योगाभावेनोपेक्षां करोति तस्मात् श्रियः लोकापवादभयादिव पलायन्ते । 'उद्योगिनं पुरुषसिंह-मुपैति लक्ष्मीः' इति तु लोके प्रसिद्धमेव । उत्साहहीनं राजानं राजलक्ष्मीः परित्यजति लोके च निन्दाऽपि भवतीति विशदार्थः ।

व्याख्या—दुर्योधन की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने की आप बिलकुल भी चेष्टा नहीं करते । लोक में प्रसिद्ध ही है कि पृथ्वी वीरभोग्या है तथा लक्ष्मी उद्योगी का ही वरण करती है, आलसी को त्याग देती है। अतः आप उदासीनता त्याग दीजिये अन्यथा आपको राज्य पुनः कदापि न प्राप्त होगा ।

टिप्पणी—उदेष्यतीम्—वर्धिष्यमाणाम् उद् + इ + लृट् + शतृ+ङीप् स्त्रियाम्। 'लृटः सद्वा' सूत्र से शतृ प्रत्यय, पुनः 'उगितश्च' से 'ङीप्'। 'आच्छी नद्योर्नुम्' सूत्र से वैकल्पिक रूप 'उदेष्यन्ती' होता है। द्विषताम्—शत्रूणाम् 'शेषे षष्ठी'। **प्रभुशक्तिम्**—प्र + भू + उ, कर्तरि—प्रभुः; शक् + क्तिन् भावे—शक्ति; प्रभोः शक्तिः (षष्ठी तत्पुरुष) ताम्। प्रताप, प्रभुशक्ति राजा के कोष और सेना से उत्पन्न शक्ति को कहते हैं। 'सः प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोषदण्डजम्' इत्यमरः। **अनीहया**—ईह् चेष्टायाम् + अ भावे ईहा; न ईहा इत्यनीहा (नञ् तत्पुरुष) तया अनीहया 'हेतौ तृतीया' से तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है। **अनुपालयताम्**—अनु + पा+णिच् + शतृ कर्त्तरि तेषाम्। 'महीभुजाम्' का विशेषण है। **श्रियः**—श्रयति पुरुषम् इति श्रि+ क्विप् कर्त्तरि श्रीः ताः कर्त्ता है 'अपयान्ति' का। **महीभुजाम्**—राज्ञाम्; महीं भुञ्जन्ति इति मही+भुज्+क्विप् कर्त्तरि महीभुजः तेषाम् उपपद तत्पुरुष। **जननिर्वादभयादिव**—निर + वद् + घञ् भावे + सु—निर्वादः; भी + अच् सु—भयम्। जनानां निर्वादः। (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मात् भयम् (पंचमी तत्पुरुष) तस्मात्। 'अवर्णक्षेपनिर्वादपरीवादापवादवत्' इत्यमरः। **अचिरात्**—झटिति। **इव**—अव्यय, यहाँ उत्प्रेक्षा का द्योतक है। **अपयान्ति**—अप+ या+लट् अन्ति; इसका कर्त्ता है 'श्रियः'। उत्प्रेक्षालंकारः। तल्लक्षणं तूक्तं काव्यप्रकाशे—

'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेनयत्' अर्थात् उपमेय की उपमान के साथ सम्भावना उत्प्रेक्षा कहलाती है।

(या धातु—याति, यातु, ययौ, अयात्, अयासीत्) ॥१०॥

वाच्यपरिवर्तनः—उदेष्यतीं द्विषतां प्रभुशक्तिं; अनीहया अनुपालयतां महीभुजाम् श्रीभिः जननिर्वादभयात् इव अपयायते।

ननु परिक्षीणः कथं प्रबलेन अभियुज्यते इत्यत्राह—

राजलक्ष्मी नष्ट हो जाने पर प्रबल शत्रु पर कैसे आक्रमण किया जा सकता है क्योंकि न धन है, न सेना है, न मित्र-बल है। इसके उत्तर में भीम कहते हैं कि असहाय होते हुए भी उत्साही वीर विजयी होता है—

क्षययुक्तमपि स्वभावजं दधतं धाम शिवं समृद्धये ।
प्रणमन्त्यनपायमुत्थितं प्रतिपच्चन्द्रमिव प्रजा नृपम् ।।११।।

अन्वयः—क्षययुक्तमपि स्वभावजं शिवं धाम दधतं समृद्धये उत्थितम् अनपायं नृपं प्रतिपच्चन्द्रमिव प्रजाः प्रणमन्ति ।।११।।

क्षयेति । क्षययुक्तमपि तथा सन्तं क्षीणमपि स्वभावजं सहजमनवायं शिव सवलोकाह्लादकं धाम क्षात्रं तेजः प्रकाशं च दधतं समृद्धये वृद्ध्यर्थमुत्थित-मुद्युक्तम् वर्धिष्णुमित्यर्थः । नृपं प्रजाः प्रतिपच्चन्द्रं द्वितीयाचन्द्रमिवेत्यर्थः । प्रतिपच्छब्देन द्वितीया ग्रहणाम् । प्रतिपदि तस्यादृश्यत्वादिति । प्रणमन्ति प्रह्वीभावेन वर्तन्त इति भावः । चन्द्रं तु नमस्कुर्वन्ति । क्षीणस्याप्युत्साहः कार्यसिद्धेर्निदानम् इत्यर्थः । "जयं हि सततोत्साही दुर्बलोऽपि समश्नुते" इति कामन्दकः ।।११।।

हिन्दी अनुवाद—(वर्तमान परिस्थिति में) क्षीण होने पर (दुर्दशाग्रस्त होने पर) भी स्वाभाविक कल्याणकारी तेज धारण करते हुए तथा समृद्धि के निमित्त उठे हुए नाश न होने वाले राजा को प्रतिपच्चन्द्र अर्थात् नवीन चन्द्रमा के समान प्रजा प्रणाम करती है ।

English Translation—People bow down to the King though decaying the irrepressible, carrying his inborn auspicious majesty and striving after prosperity as they do to the first moon.

संस्कृतभावार्थः—वर्तमानसमये धनमित्रबलविहीनो भवानुत्साहं भजितुं शक्नोति । ततो यथाऽनुदिनं वृद्ध्यै उदितं नैसर्गिक सुभं तेजो धारयन्तं प्रतिपच्चन्द्रं जनाः अभिनन्दन्ति तथैव स्वाभ्युदयायोद्योगपरं भाविकल्याणकरं तेजः धारयन्तं भवन्तमपि प्रजाः अभिनन्दिष्यन्ति ।

व्याख्या—यह सत्य है कि इस समय आप धनजनबलरहित हैं, पर जब आप अपनी उन्नति के लिए कटिबद्ध हो जायेंगे तो प्रजा अवश्य आपका साथ देगी । जैसे प्रतिपदा का चन्द्रमा क्षीणप्रकाश होता है, पर वर्धिष्यमाण

(प्रतिदिन बढ़ती हुई कला) होने के कारण पूर्णचन्द्र के समान ही वह लोगों का वन्दनीय होता है।

टिप्पणी—क्षययुक्तमपि—क्षीणमपि, क्षि+अच् भावे—क्षय=युज्+क्त कर्मणि युक्तः क्षयेन युक्तः (तृ० तत्पु०) तम्। **स्वभावजं**—स्वस्य भावः (ष० तत्पु०) या स्वः भावः (कर्मधारय) स्वभावात् जात, इति स्वभाव+जन्+उ कर्त्तरि भूते—स्वभावजं, तत्, विशेषण है 'धाम' का। चन्द्रवत् 'प्रकाशः'। **शिवं**—शुभं, सर्वलोकाह्लादकं। **धाम**—तेजः (क्षात्रं) 'धाम तेजसि दीप्तौ च गृहे स्थाने शरीरके' इति। 'स्वभावश्च निसर्गश्च प्रकृतिर्वा' इति कोषः। 'श्वःश्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मंगलं शुभम्' इत्यमरः। 'गृहदेहत्विट्प्रभावाधो माजि' इत्यमरः। **दधतम्**—धारयंतम् धा+शतृ कर्त्तरि—दवत् 'अभ्यस्तत्वात् नुमभावः' तम्। **समृद्धये**—सम्+ऋध्+क्तिन् भावे समृद्धिः तस्यै तादर्थ्ये चतुर्थी अथवा कर्मणि चतुर्थी—क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः—जब तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का प्रयोग परोक्ष रहे तो उसके 'कर्म' में चतुर्थी होती है—सूत्र से 'समृद्धये' में चतुर्थी हुई है। **उत्थितम्**—उद्+स्था+कर्त्तरि क्त नृपपक्षे चन्द्रपक्षे च उत्थितः, तम्। **अनपायम्**—अविनाशिनम्, अप+इण्गतौ+घञ् भावे—अपायः; अविद्यमानः अपायः अस्य (बहुव्रीहि) तम्; नृपं तथा चन्द्रं का विशेषण है। **नृपं**—नॄन् पातीति नृ+पा+क कर्त्तरि नृपः तम् कर्म है 'प्रणमन्ति' का। **प्रतिपच्चन्द्रमिव**—द्वितीया अथवा नूतन चन्द्रमा के समान। प्रतिपदा को चन्द्रमा दिखाई नहीं पड़ता अतः प्रतिपत् का अर्थ द्वितीया ग्राह्य है। 'प्रतिपच्छब्देन द्वितीया ग्रहणम्'। 'प्रतिपदि तस्यादृश्यत्वात्' मल्लिनाथ। प्रतिपदः चन्द्रः (ष० त०) प्रतिपदि चन्द्रः सहसुपा। तम्। 'हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः' इत्यमरः।

द्रष्टव्य—नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवोदयं नाथमिवौषधीनाम्' रघुवंश द्वितीय।

प्रणमन्ति—प्र+नम्+लट् अन्ति। 'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य'—उपसर्ग से समान न होने पर भी 'न' का 'ण' आदेश हो जाता है सूत्र से 'ण' हो गया है।

(धा—दधाति—धत्ते, अदधात्—अधत्त, अधात्—अधित, दधौ—दधे, धास्यति—धास्यते ।)

नम्—नमति, अनमत्, नमेत्, नमाम, अनंसीत्, नंस्यति 'जयं हि सततोत्साही दुर्बलोऽपि समश्नुते' कामन्दक अर्थात् दुर्बल व्यक्ति जो निरन्तर उत्साही है अन्त में विजयी होता है ।।११।।

वाच्यपरिवर्तनः—क्षययुक्तोऽपि स्वभावजं शुभं धाम दधत् समृद्धये उत्थितः अनपायः नृपः प्रतिपच्चन्द्र इव प्रणम्यते ।

ननु प्रभुशक्तिशून्यस्योत्साहः कुत्रोपयुज्यत इत्यत्राह—यदि प्रभुशक्ति नहीं है तो उत्साह ही कहाँ से होगा ? इस आशंका के उत्तर में कहते हैं—

प्रभवः खलु कोशदण्डयोः कृतपञ्चाङ्गविनिर्णयो नयः ।
स विधेयपदेषु दक्षतां नियतिं लोक इवानुरुध्यते ।।१२।।

अन्वयः—कृतपञ्चाङ्गविनिर्णयो नयः कोषदण्डयोः प्रभवः खलु । सः विधेयपदेषु दक्षतां लोकः नियतिमिव अनुरुध्यते ।।१२।।

प्रभव इति । कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसम्पद्देशकालविभागो विनिपातप्रतीकार कार्यसिद्धिश्चेतिपञ्चाङ्गानि । यथाह कामन्दकः—"सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः । विनिपातप्रतीकारः सिद्धिः पञ्चाङ्गमिष्यते ।" इति पञ्चानामङ्गनां विनिर्णयो पञ्चाङ्गविनिर्णयः । "तद्धितार्थ—" इत्यादिनोत्तरपदसमासः । कृतः पञ्चाङ्गविनिर्णयो यस्य येन वा स तथोक्तः । नयो नीतिः । मन्त्र इति यावत् । कोशोऽर्थराशिः । "कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः" इत्यमरः । दण्डश्चतुरङ्गसैन्यम् । "दण्डोऽस्त्री शासने राज्ञां हिंसायां लगुडे यमे । यात्राज्ञायां सैन्यभेदे" इति वैजयन्ती । तयोः कोशदण्डयोः । प्रभुशक्तेरित्यर्थः । प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम् । "ऋदोरप्" । स नयो-विधेयपदेषु कार्यवस्तुषु । "पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु" इत्यमरः । दक्षतां क्षिप्रकारित्वम् । उत्साहमित्यर्थः । लोकः कृष्यादिप्रवृत्तो जनः । नियतिं दैवमिव । "नियतिर्नियमे दैवे" इति विश्वः । अनुरुध्यतेऽनुसरति । रुधेर्दैवादि-

कात्कर्तरि लट्। मन्त्रस्यापि मूलमुत्साहस्तन्मूलायाः प्रभुशक्तेर्मूलमिति किमु वक्तव्यम्, अतः स एवाश्रयणीयः। यतो नक्तन्दिवं मन्त्रयतस्तस्यापि प्रभोर्निरुत्साहस्य न किञ्चित्सिद्ध्यतीति ॥१२॥

हिन्दी अनुवाद—पाँचों अंगों के ठीक-ठीक निर्णय करने वाली राजनीति कोष और सेनाविभाग का उद्गम होती है। वह करणीय वस्तु में कौशल की अपेक्षा करती है; जैसे (कृषकादि) लोग दैव ही की अपेक्षा करते हैं।

English Translation—Statecraft, the five elements of which are well thought out, is indeed the source of funds and forces but like an individual who waits for fate it awaits enterprise in actions that have to be executed.

संस्कृतभावार्थः—कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसम्पत्देशकालविभागं, विनिपातप्रतीकारः, कार्यसिद्धिश्च इति पंचांगानि राजनीतौ समाविष्टानि। सा राजनीतिः कोषसैन्ययोः कारणं भूत्वा दक्षतामपेक्षते न तु दैवम्। दैवं निहत्य यः आत्मशक्त्या पौरुषमेवावलम्बते सः सफलो जायते। राजनीतिस्तु दीर्घसूत्रेण हतोत्साहेन नाश्रीयते इति सर्वं पर्यालोच्य भवता समयानुकूलमेव शत्रुनिराकरणरूपं पौरुषमाचरणीयमिति विशदार्थः।

व्याख्या—यद्यपि मंत्रणा करना प्रभुशक्ति का मूल कारण है, तथापि उत्साह के बिना वह भी निरर्थक है। राजा को दैव पर भरोसा न कर पुरुषार्थ करना चाहिए। शत्रु के निराकरणार्थ उसे उत्साहपूर्वक आगे बढ़ना चाहिए। उसके अथक परिश्रम एवं उत्साह को देखकर लोग धन, जन से उसकी सहायता करेंगे।

टिप्पणी—**प्रभवः**—प्रभवत्यस्मात् इति प्र+भू+अप् अपादाने; प्रभवः। **खलु**—अव्यय है, एवं के अर्थ में प्रयुक्त है। **कोषदण्डयोः**—कोषश्च दण्डश्च कोषदण्डौ इतरेतरद्वन्द्व तयोः शेषे षष्ठी। सुविनिर्णीत नय से धन और जन प्राप्त होता है। **कृतपंचांगविनिर्णयः**—कार्यसिद्धि के पाँच अंग हैं (१) सहायक, (२) कार्यसाधन के उपाय, (३) देशविभाग, (४) कालविभाग और (५)

विपत्ति-प्रतिकार। मल्लिनाथ ने राजनीति के पंचांग निम्नलिखित बतलाया है —(१) कर्मणामारम्भोपायः अर्थात् कार्य को आरम्भ करने का उपाय, (२) पुरुषद्रव्यसम्पत् (कार्य के लिए आवश्यक पुरुष और धन की प्राप्ति), (३) देशकालविभागः (कार्य के लिए उपयुक्त स्थान और समय) (४) विनिपात-प्रतीकारः (सम्भावित विघ्न का निराकरण), (५) कार्यसिद्धिः (कार्य की सिद्धि)। कामन्दक का कथन है :—

'सहायाः साधनोपायाः विभागो देशकालयोः।
विनिपातप्रतीकारः सिद्धिः पंचांगमिष्यते ॥'

द्रष्टव्य—"सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्ध पंचकम्। सौगतानामिवात्मान्यो नास्तिमन्त्रो महीभृताम्।" शिशुपालवध द्वितीय सर्ग २८। राजनीति के इन पाँचों अंगों को ठीक-ठीक विनियोजित करने से ही राजा को सफलता मिल सकती है। कृ+क्त कर्मणि सु=कृतः, वि+निर्+नी+अव् भावे सु=विनिर्णयः **नयः सः**—कोषदण्डहेतुः नयः। **विधेयपदेषु**—करणीय वस्तुषु; वि+धा+यत् कर्मणि—विधेयानि; विधेयानि च तानि पदानि इति (कर्मधारय) तेषु अथवा विधेयस्य पदेषु (ष० तत्पु०) 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्मीङ्घ्रवस्तुषु' इत्यमरः। **दक्षताम्**—दक्षस्य भावः इति दक्ष+तल् भावे दक्षता, ताम्। कर्म है 'अनुरुध्यते' का। **नियतिम्**—नियम्यते अनया इति नि+यम्+क्तिन् करणे —नियतिः ताम्। लोकः—यहाँ कृषक के लिए आया है 'लोकः कृष्यादिप्रवृत्तो जनः' मल्लिनाथ। 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः। दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः।" इत्यमरः। **अनुरुध्यते**—अनु+रुध् (दिवादि)+लट् ते कर्त्तरि—अनुसरति इसका कर्त्ता है सः और लोकः।

(रुध् धातु—रुणद्धि, रुन्धे, रुणद्धु, रुन्द्धाम्, रुन्ध्यात्, रुन्धीत, अरुणत्, अरुन्द्ध, रुरोध—रुरुधे, अरुधत्, अरौत्सीत्, अरुद्ध, रोत्स्यति—रोत्स्यते ॥१२॥

वाच्यपरिवर्तनः—कृत पंचांगविनिर्णयेन नयेन कोषदण्डयोः प्रभवेन (भूयते) खलु। तेन लोकेन विधेयपदेषु दक्षता नियतिरिवानुरुध्यते ॥१२॥

ननु सोत्साहस्यासहायस्य कथमर्थसिद्धिरित्यत्राह—यदि उत्साही है, तो सहायक का अभाव कार्यसिद्धि में रुकावट नहीं डाल सकता—

अभिमानवतो मनस्विनः प्रियमुच्चैः पदमारुरुक्षतः ।
विनिपातनिवर्तनक्षमं नतमालम्बनमात्मपौरुषम् ॥१३॥

अन्वयः—अभिमानवतः प्रियम् उच्चैः पदम् आरुरुक्षतः मनस्विनः आत्मपौरुषम् विनिपातनिवर्तनक्षमम् आलम्बनं मतम् ॥१३॥

अभिमानवत इति । अभिमानवतो मानधनस्य प्रियमिष्टमुच्चैरुन्नतं पदं स्थानं राज्यादिकमारुरुक्षतः आरोढुमिच्छतः प्राप्तकामस्य मनस्विनो धीरस्यात्मपौरुषं स्वपुरुषकार एव विनिपातनिवर्तनक्षममनर्थप्रतिकारसमर्थमालम्बनं सहकारि मतमिष्टम् । यथा कस्यचित्तुङ्गमारोहतः किञ्चित्पतनप्रतिबन्धकमनुचरहस्तादिकमालम्बनं तद्वदितिध्वनिः । किं पौरुषादन्यैः सहायैः । शूराणामिति भावः ॥१३॥

हिन्दी अनुवाद—अभिमानी, प्रिय उच्चपद पर आरोहणार्थ इच्छक, मनस्वी का अपना पुरुषार्थ ही आपत्ति का निवारण करने में समर्थ आश्रय माना गया है ।

English Translation—Their over manliness of (persons) of steady nerves, having self-respect and desirous of reaching a high position, is considered the main stayable to averse disaster.

संस्कृतभावार्थः—यस्मिन् राजनि स्वजातेः कुलस्य च अभिमानो वर्तते तथा सोऽभीष्टमुन्नतपदमारोढुं प्रवर्तते अन्येषां साहाय्यं नापेक्षतेऽसौ यतः 'स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः' इत्यनुस्मरन् केवलं निजभुजविक्रमस्यैवाशां करोति । मनस्विनस्तु अनर्थनिस्तरणसमर्थस्य स्वपौरुषमेव साहाय्यम् । यत्साधने स्वयमेव समर्थः ततः अन्यैः सहायैः किमिति भावः ।

व्याख्या—राजनीति के और सब चारों अंगों के सम्पन्न होने पर भी

विनिपातप्रतीकार के लिए (पाँचवें अंग) पुरुषार्थ ही अपेक्षित है। जो स्वाभिमानी एवं मनस्वी है तथा अपने ही पुरुषार्थ पर अवलम्बित है वह असहाय होते हुए भी निश्चय विजयी होता है।

टिप्पणी--अभिमानवत—मानधनस्य, अभिमानः अस्ति अस्येति अभिमान्+वतुप्। **मनस्विनः**—प्रशस्तं मनः अस्ति अस्य इति मनस्+विनि (मत्वर्थ)--मनस्वी तस्य। शेषे षष्ठी; 'आत्मपौरुष' से संबंध है। अथवा 'क्तस्य च वर्तमाने'—जब क्त प्रत्ययान्त शब्द (जो अधिकांश में भूतकाल का बोधक है) वर्तमान के अर्थ में प्रयुक्त हो तो षष्ठी होती है—इस सूत्र से षष्ठी हुई है। 'मतम्' में वर्तमान क्त है। द्रष्टव्य—सदाभिमानै-कधना हि मानिनः—शिशुपालवध प्रथम सर्ग। **प्रियम्**—प्रीणातीति प्री+कः कर्तरि—प्रिय तत्। **उच्चैः**—अव्यय। **उच्चै पदं**—उन्नतं पदं। आरुरुक्षतः का कर्म है 'पदम्'। **आरुरुक्षतः**—आ+रुह्+सन्+लटः स्थाने शतृ कर्त्तरि—आरुरुक्षत् तस्य 'मनस्विनः' का विशेषण है। **विनिपात निव-र्तनक्षमम्**—वि + नि + पत् + घञ् भावे—विनिपातः नि +वृत्+ ल्युट् भावे—निवर्त्तन। क्षमते इति क्षमम् 'पचाद्यच्'। विनिपातस्य निवर्त्तनम् (षष्ठी तत्पुरुष) तत्र क्षमम् 'आलम्बनम्' का विशेषण है। **मतम्**—मन्+क्त कर्मणि वर्तमाने—इष्टम्। **आलम्बनम्**—आलम्ब्यते अनेनेति आ+लम्ब्+ल्युट् करणे—आलम्बनम्। **आत्मपौरुषम्**—पुरुषस्य भावः कर्म वा इति पौरुषम् पुरुष+अण्। आत्मनः पौरुषम् (षष्ठी तत्पुरुष) उक्ते कर्मणि प्रथमा। 'गर्वोऽभिमानोऽहङ्कारो मानश्चित्तसमुन्नतिः' इत्यमरः ॥१३॥

(मन्—मन्यते, मन्यताम्, अमन्यत, मेने, अमंस्त। रुह्—रोहति, रोहतु, अरुहत्, रुरोह, अरुक्षत्।)

वाच्यपरिवर्तनः—अभिमानवतो मनस्विनः प्रियम् उच्चैः पदम् आरुरु-क्षतः विनिपातनिवर्तनक्षमेण आत्मपौरुषेण आलम्बनेन भूयते।

पौरुषानंगीकारे दोषमाह—

पुरुषार्थ का अभाव ही सब दोषों की जड़ है।

विपदोऽभिभवन्त्यविक्रमं रहयत्यापदुपेतमायतिः ।
निरायतेरगरीयान्नृपश्रियः पदं नृपश्रियः ॥१४॥

अन्वयः—अविक्रमं विपदः अभिभवन्ति । आपदुपेतम् आयतिः रहयति । निरायतेः लघुता नियता । अगरीयान् नृपश्रियः पदं न भवति ॥१४॥

विपदः इति । अविक्रमं पौरुषहीनं विपदोऽभिभवन्त्याक्रामन्ति । आपदुपेतं विपन्नमायतिरुत्तरकालः । "उत्तरः काल आयातिः" इत्यमरः । रहयति त्यजति । निरायतेः, आसन्नक्षयस्येत्यर्थः । लघुता गौरवं नियतावश्यम्भाविनी । न कश्चिदेनमाद्रियत इत्यर्थः अगरीयांल्लघीयान्नृप श्रियो राजलक्ष्म्याः पदमास्पदं न भवति । यद्वा नृपेति पदच्छेदः । तस्मात् पौरुषं कर्तव्यमेवत्यर्थः । अत्र पूर्वपूर्वस्याविक्रमत्वादेत्तरोत्तरविपदादिकं प्रतिकारणत्वात्कारणकालाख्योऽलङ्कारः । तथा च सूत्रम्—"पूर्वपूर्वस्योत्तरहेतुत्वेकारणमाला" इति ॥१४॥

हिन्दी अनुवाद—पुरुषार्थहीन (व्यक्ति) को विपत्तियाँ आक्रान्त बना लेती हैं। विपद्ग्रस्त को भावी उन्नति छोड़ देती है। भविष्यहीन की लघुता निश्चित है। गौरवहीन (मनुष्य) राजलक्ष्मी का पात्र नहीं होता।

English Translation—Calamities overcome one that is without prowess. The future discards one who is surrounded by obstacles. Want of importance is inevitable to one without a future. One without a good weight is not the resort of Royal fortune.

संस्कृतभावार्थः—उद्योगरहितः पुरुषो विपदधीनो भवति । विपन्नस्य च भाविनी वृद्धिरवरुध्यते । भाविवृद्धिविहीनः ध्रुवमेवामान्यो भवति । हतगौरवो जनः राजलक्ष्मीं न लभते । पौरुषमेव राजलक्ष्म्याः हेतुः । वीरभोग्या वसुन्धरेत्यव्यभिचारि वचः । अतो भवता पौरुषं कर्त्तव्यमेवेत्यर्थः ।

टिप्पणी—**विपदः**—वि+पद्+किवप् भावे—क्रुच्छ्राणि । **अविक्रमं**—वि+क्रम+घञ् भावे—विक्रमः । अविद्यमानो विक्रमो यस्य स (बहुव्रीहि) ।

"नञोऽस्त्यर्थानां बहुव्रीहिः वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः" वार्त्तिक से विद्यमान इस उत्तरपद का लोप विकल्प से हो गया है। **अभिभवन्ति**—ग्रसन्ते, आक्रमन्ति। अभि+भू+लट् अन्ति। द्रष्टव्य—परित्रायेथां मामनेन दुर्विनीतेन मधुकरेणाभिभूयमानाम्—शाकुन्तल १। **आपदुपेतं**—विपन्नं उप+इ+क्त कर्मणि—उपेतः। अपदा उपेतः (तृतीया तत्पुरुष)। अथवा उप+इ+क्त कर्त्तरि (गत्यर्थत्वात्)—उपेतः। आपदम् उपेतः सहसुपा तम् कर्म है 'रहयति' का। **आयतिः**—आ+यम्+क्तिन् भावे—आयति। रहयति—रह्+णिच् (चुरादि)+लट् ति—त्यजति। **निरायतेः**—भाविवृद्धिरहितस्य। निरस्ता आयतिः अस्य तस्य। **लघुता**—लघोः भावः इति लघु+तल—लघुता। **नियता**—नि+यम्+क्त कर्त्तरि+टाप् स्त्रियाम्—नियता। **अगरीयान्**—अतिशयेन गुरु इति गुरु+ईयसुन्—गरीयस्, न गरीयान्, नञ् तत्पुरुष 'प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवबंहि गर्वर्षिन्नपद्माधिवृन्दाः' सूत्र से 'गुरु' के स्थान में 'गर' आदेश होगा। **पदं**—आस्पदं, आश्रयं। **नृपश्रियः**—नृपस्य श्रीः (षष्ठी तत्पुष) शेषे षष्ठी—जहाँ स्वामी तथा भृत्य, जन्म तथा जनक, कार्य तथा कारण इत्यादि सम्बन्ध दिखाये जाते हैं वहाँ षष्ठी होती है—इस सूत्र से यहाँ पर षष्ठी हुई है। कारणमाला अलंकार। तल्लक्षणं काव्यप्रकाशः—'यथोत्तरं चेत्पूर्वस्य पूर्वस्यार्थस्य हेतुता। तदा कारणमाला स्यात्।' अर्थात् जहाँ अगले-अगले अर्थ के प्रति पहले-पहले अर्थ का कारण रूप में वर्णन किया गया हो वहाँ 'कारणमाला' नामक (अलंकार) होता है। इस कारिका के अनुसार यदि पूर्व वर्णित वस्तु उत्तरोत्तर वर्णित वस्तु का कारण बनती जाय तो 'कादणमाला' होता है। इस श्लोक में पूर्व पूर्व वर्णित अविक्रमत्व, विपद, आयति, त्याग, लघुत्व आदि उत्तरोत्तर के कारण बनते जाते हैं; जैसे अविक्रमत्व विपत्ति का कारण है, विपत्ति परवर्ती आयति-त्याग का कारण है, आयतित्याग लघुता का कारण है, लघुता लक्ष्मी राहित्य का कारण है। इस प्रकार पहले-पहले वर्णित परपरवर्ती के कारण होने से कारणमाला अलंकार है।

क्रम्—क्रामति, क्रामतु, अक्रामत्, चक्राम, अक्रमत्।

रह्—रहयति, अररहत्, अरीरहत्, रहयामास, रहयिष्यति।

वाच्यपरिवर्तनः—अविक्रमो जनः विपद्भिः अभिभूयते । आपदुपेतो जनः आयत्या रह्यते । निरायतेर्लघुतया निपतया भूयते । अगरीयसा नृपश्रियः पदेन न भूयते ।।१४।।

फलितमाह—भीम सारांश बताते हैं कि उद्योगहीनता का परित्याग कर पराक्रम का अवलम्बन कीजिए—

तदलं प्रतिपक्षमुन्नतेरवलम्ब्यव्यवसायबन्ध्यताम् ।
निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः ।।१५।।

अन्वयः—तत् उन्नतेः प्रतिपक्षम् व्यवसायबन्ध्यताम् अवलम्ब्य अलम् । पराक्रमश्रियाः समृद्धयः विषादेन समं न निवसन्ति ।।१५।।

तदिति । तत्तस्माद् उपेक्षायां दोषसम्भवादित्यर्थः । उन्नतेरभ्युदयस्य प्रतिपक्षमन्तरायं व्यवसायबन्ध्यतामुद्योगशून्यतामवलम्ब्यालम् । अवलम्बनेनालमित्यर्थः । "अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा" इति क्त्वा प्रत्ययः । तस्य ल्यबादेशः । तथाहि । पराक्रम आश्रयः कारणं यासां तास्तथोक्ताः समृद्धयः सम्पदो विषादेन सममनुत्साहेन सह न निवसन्ति । पौरुषसाध्यः सम्पदो नानुत्साहसाध्याः, उभयोः सहावस्थानविरोधादित्यर्थः । वैधर्म्येण कार्यकारण रूपोऽर्थान्तरन्यासः ।।१५।।

हिन्दी अनुवाद—उन्नति के शत्रु (में बाधक) अनुद्योग का अवलम्बन करना ठीक नहीं है । पराक्रम का आश्रय लेने वाली समृद्धियाँ अनुत्साह के साथ नहीं रहतीं ।

English Translation—So it is of no use to stick to aversion of courage which is the enemy of prosperity. The riches, resorting to enterprise, does not dwell with dependency.

संस्कृतभावार्थः—नाकर्मशीले पुरुषे वसामीति लक्ष्म्या स्वयं उक्तम् महाभारते । अतः स्पष्टमेव यत्सम्पदस्तु पौरुषसाध्या नानुद्योगसाध्याः । उत्साह-

रहिताः कदाप्युन्नतं पदं नाप्नुवन्ति। उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्। शूरं कृतज्ञं दृढ़सौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोरिति वचनानुसारं आलस्यं विहाय भवता पौरुषमालम्बनीयम्।

टिप्पणी—तत्—अव्यय 'तस्मात्' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। **उन्नतेः**—उत्कर्षस्य। उद्+नम्+क्तिन् भावे तस्याः 'शेषे षष्ठी' इसका सम्बन्ध प्रतिपक्ष से है। **प्रतिपक्ष**—प्रतिगतः पक्षः प्रादितत्पुरुष 'प्रादयः गताद्यर्थेप्रथमया—इस वार्तिक से तम्—शत्रुम्। **व्यवसायबन्ध्यताम्**—वि+अव्+सो+घञ् भावे—व्यवसायः; बन्धुं योग्यः इति बन्ध+ण्यत् कर्मणि बन्ध्यः तस्य भावः इति बन्ध्य+तल्—बन्ध्यता; व्यवसाये बन्ध्यता, (सहसुपा) ताम् कर्म है 'अवलम्ब्य' का। अवलम्ब्य अलम् (अव+लम्ब्+ल्यप्) "अलं खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा" नियम से प्रतिषेधार्थक 'अलम्' के योग में अव्+लम्ब से क्त्वा हो गया। क्त्वा को ल्यप् हुआ। (अलं भूषणंपर्याप्तं शक्ति-कारणवाचकाः) इत्यमरः। 'उद्योगो व्यवसायश्च पौरुषम्' इति कोषः। **पराक्रमाश्रयाः**—परा+क्रम+घञ् भावे—पराक्रमः। आ+श्रि+अच् भावे—आश्रयः। पराक्रमः आसाम् आश्रयः (बहुव्रीहि)। 'समृद्धयः' का विशेषण है। द्रष्टव्य—'नेतुर्यशस्विनि पदे नियता प्रतिष्ठा' मुद्राराक्षस। **समृद्धयः**—सम+ऋध्+क्तिन् भावे। **विषादेन समं न निवसन्ति**—अनुत्साहेन सह न वर्त्तन्ते। वि+सद्+घञ् भावे—विषादः तेन। सहार्थक 'कमं' शब्द योगे तृतीया। 'सहसाकंसार्धं समं योगे तृतीया' सूत्र से विषादेन में तृतीया हुई है। 'सदिरप्रतेः' सूत्र से 'षत्व' का आदेश हो गया है। 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार। तल्लक्षणं तूक्तं काव्यादर्शे—

ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किंचन।
तत्साधन समर्थस्यन्यासोयोऽन्यस्य वस्तुनः॥

इस श्लोक में 'व्यवसायवन्ध्यताम् अवलम्ब्य अलम्' अर्थात् व्यवसाय हीनता के अवलम्बन का त्याग करो 'न विषादेन समं समृद्धयः' अर्थात् समृद्धियाँ विषाद के साथ नहीं निवास करतीं। इन दोनों का भव-स्थान एक साथ नहीं हो सकता। अतः 'वैधर्म्य' से कारण से कार्य का समर्थन रूप-अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

(वस्—वसति, वसतु, अवसत्, अवात्सीत्, उवास, वत्स्यति) ॥१५॥

वाच्यपरिवर्तनः—पराक्रमाश्रयाभिः समृद्धिभिः विषादेन समं न न्युष्यते।

ननु समयः प्रतीक्ष्यवे किं यगेनेत्य माह—

अवधि की प्रतीक्षा करनी चाहिए जल्दीबाजी से क्या लाभ—कदाचित् प्रतिज्ञानुसार दुर्योधन राज्य लौटा दे इस सम्बन्ध में कहते हैं।

अथ चेदवधिः प्रतीक्ष्यते कथमाविष्कृतजिह्मवृत्तिना।
धृतराष्ट्रसुतेन सुत्यजाश्चिरमास्वाद्य नरेन्द्रसम्पदः ॥१६॥

अन्वयः—अथ अवधिः प्रतीक्ष्यते चेत्, आविष्कृतजिह्मवृत्तिना धृतराष्ट्र-सुतेन नरेन्द्रसम्पदः चिरम् आस्वाद्य कथं सुत्यजाः ॥१६॥

अथेति। अथावधिः कालः प्रतीक्ष्यते चेत्। 'अवधिस्त्ववधाने स्यात्-सीम्नि काले विलेऽपि च' इति विश्वः। आविष्कृतजिह्मवृत्तिना प्रकटित-कपटव्यवहारेण धृतराष्ट्रसुतेन दुर्योधनेन नरेन्द्रसम्पदो राज्यसम्पदः। नरेन्द्रेति वा पदच्छेदः। चिरं चतुर्दशवर्षाण्यास्वाद्यानुभूय कथं सुत्यजाः। ज्ञातास्वादेन तेन पश्चादपि सुखन युद्धक्लेशं विना न त्यक्ष्यन्त एवेत्यवधिप्रतीक्षणं व्यर्थमित्यर्थः ॥१६॥

हिन्दी अनुवाद—यदि अवधि की प्रतीक्षा की जाती है तो कुटिल व्यवहार को प्रकट करने वाले धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन द्वारा राजलक्ष्मी चिरकाल तक भोगी जाकर कैसे सुगमता से त्यागी जा सकती है।

English Translation—If the limited period is awaited, how can the royal fortune, after having been long enjoyed; be renounced easily by Dhritarashtra's son, who has revealed his crooked conduct.

संस्कृतभावार्थः—त्रयोदशवर्षाणि यावत् वनवासावधिं पूरयित्वा यदाहमा-गमिष्यामि तदा स प्रतिज्ञानुसारं राज्यं समर्पयिष्यतीति मन्यमानः क्षमावल-

म्बनमेवोचितमधुनेति तव धारणा सर्वथा भ्रान्तिमूला । यतः बहुधा स स्वकुटिलस्वभावस्य परिचयं अदात् । तस्य जिह्मत्वं भवता नियुक्तेन वनेचरेणावगतवृत्तान्तेन सर्वमेव निवेदितम् । एतावत्कालं राजलक्ष्मीमास्वाद्य स राज्यं कदापि न समर्पयिष्यतीति मे मतिः । अतः समयप्रतीक्षाकरणं न वरम् ।

टिप्पणी—अथ—पक्षान्तरे । **चेत्**—अव्यय 'यदि' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । **अवधिः**—अवधीयते अनेनेति अव+धा+कि करणे—अवधिः 'समयः त्रयोदशसंवत्सरान् वने वत्स्यामि इत्येवंरूपा संवित्' उक्ते कर्मणि प्रथमा । **प्रतीक्ष्यते**—प्रति+ईक्ष्+लट् ते कर्मणि । **कथम्**—केन प्रकारेण इति किम्+थमु । **आविष्कृतजिह्मवृत्तिना**—प्रकटितकपटव्यवहारेण । जहाति सरलमार्गमिति; हा+मन्+स्त्रियाम्—जिह्मा । आविस्+कृ+क्त कर्मणि स्त्रियाम्—आविष्कृता । कृत्+क्तिन् भावे—वृत्तिः । आविष्कृता जिह्मवृत्तिः येन (बहुव्रीहि) तेन; (धृतराष्ट्रसुतेन) का विशेषण है । 'पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' इस सूत्र से जिह्मवृत्ति में 'पुंवद्भाव' हुआ है । 'इदुदुपधस्यचाप्रत्ययस्य'—इ, उ के बाद आने वाले प्रत्यय के 'स' को 'ष' आदेश होता है यदि क, ख, प, फ परे रहे तो—इस सूत्र से आविष्कृत में 'ष' का आदेश हुआ है । **धृतराष्ट्रसुतेन**—धृतराष्ट्रस्य सुतः (षष्ठी तत्पुरुष) तेन । अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया । **नरेन्द्रसम्पदः**—नराणां नरेषु वा इन्द्रः अथवा नरः इन्द्र इव (सहसुपा) अथवा षष्ठी तत्पुरुष अथवा उपमितकर्मधारय । 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्यप्रयोगे' सूत्र से उपमित कर्मधारय हुआ । नरेन्द्रस्य सम्पदः (ष० त०) **चिरम्**—अव्यय । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया हुई । 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से । चिरम् चिरकालं व्याप्य, नपुंसक लिंग चिर शब्द का द्वितीया एकवचन । 'जब कोई क्रिया लगातार कुछ समय तक होती रहे या कोई वस्तु कुछ दूरी तक लगातार हो तो समय और मार्गवाचक शब्द में द्वितीया होती है' । **आस्वाद्य**—भुक्त्वा—आ+स्वद्+णिच्+ल्यप् । **सुत्यजाः**—सु सुखेन त्यज्यन्ते इति सु+त्यज्+खल् कर्मणि स्त्रियाम्—सुत्यजाः । 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्' सूत्र से खल् प्रत्यय हुआ जिसका अर्थ है कठिन (अतएव दुःखात्मक) और सरल (अतएव सुखात्मक) के भाव का बोध कराने के लिए धातुओं के अनन्तर खल् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है ।

(त्यज्—त्यजति, त्यजतु, अत्यजत्, तत्याज, आत्याक्षीत्, त्यक्ष्यति) ॥१६॥

वाच्यपरिवर्तनः—अथ चेदवधि प्रतीक्षसे, तदा आविष्कृतजिह्मवृत्तिः धृतराष्ट्रसुतः नरेन्द्रसम्पदश्चिरमास्वाद्य कथं त्यक्ष्यति । अथवा आविष्कृत-जिह्मवृत्तिना धृतराष्ट्रसुतेन चिरमास्वाद्य कथं नरेन्द्रसम्पद्भिः सुत्यजाभि-र्भूयते ।

अथवा तदा दैववशात् स्वयमेव सम्पदो दास्यति चेत्तथाऽपि तत्कथं रोचयेमहीत्याह—

यदि दुर्योधन दैववश स्वयं ही राज्य लौटा दे तो वह कैसे हमें रुचिकर होगा क्योंकि राज्य तो विजय द्वारा अधिगत करना चाहिए न कि दानरूप से—

द्विषता विहितं त्वयाथवा यदि लब्धा पुनरात्मनः पदम् ।
जननाथ तवानुजन्मनां कृतमाविष्कृतपौरुषैर्भुजैः ॥१७॥

अन्वयः—अथवा द्विषता विहितम् आत्मनः पदं त्वया यदि पुनः लब्धा, हे जननाथ तवानुजन्मनाम् आविष्कृतपौरुषैः भुजैः कृतम् ॥१७॥

द्विषतेति । अथवा द्विषता विहितं पुनः प्रत्यर्पितमात्मनः पदं राज्यं त्वया लब्धा लप्स्यते यदि । लभेः कर्मणि लुट् । हे जननाथ तवानुजन्मनामनुजाना-माविष्कृतपौरुषैः । प्रकटितपराक्रमैर्भुजैः कृतमलम् । अस्मद्भुजैर्नकिञ्चित् साध्यमित्यर्थः । राज्यदानादानयोद्वतामेव स्वातन्त्र्येऽस्मद्भुजवैफल्यात् । "क्षत्रियस्य विजेतव्यम्" इति शास्त्रात् क्षात्रेणैव राज्यं ग्राह्यमिति भावः । कृतमिति प्रतिषेधार्थमव्ययम् चादिषु पठ्यते "कृतिमिति निवारणनिषेधयोः" इति गणव्याख्याने । भुजैरिति गम्यमानसाधनक्रियापेक्षया करणत्वात्तृतीया । उक्तं च न्यासोद्योते—"न केवलं श्रूयमाणैव क्रिया निमित्तं कारकभावस्यापि तु गम्यमानापि" इति ॥१७॥

हिन्दी अनुवाद—हे महाराज यदि शत्रु द्वारा दिया हुआ राज्य आपने पुनः प्राप्त कर लिया तो आपके अनुजों की प्रदर्शित पौरुषवाली भुजाओं से हो चुका (क्या लाभ) अर्थात् उनकी भुजाओं का पराक्रम व्यर्थ है ।

English Translation—Or o lord of men, if your own states (Kingdom) is to be got back by you as a gift by the enemy, then the arms of your younger brothers that have shown their powers, are useless.

संस्कृतभावार्थः—वनवासावधिकाले व्यतीते सति दुर्योधनो यदि स्वयमेव राज्यमर्पयिष्यति तेन दत्तेन राज्येन भवान् महाराजो भविष्यति तर्हि अस्माकं प्रथितपराक्रमैर्बाहुभिः किम् । पाण्डवाः वीराः अतुलितपराक्रमाः दुर्जेयाश्चेति लोके प्रसिद्धम् । एतेन दीनताप्रकाशेन तत्प्रसिद्धिरपागता भवेत् । पाण्डवा अपि परपिण्डोपजीविनः इति जनाः कथयिष्यन्ति ।

टिप्पणी—अथवा—पक्षपन्तरे 'पक्षान्तर' अर्थ में अव्यय है। **द्विषता**—शत्रुणा (शत्रु के द्वारा) 'अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया'। **विहितम्**—समर्पितम् वि+धा क्त कर्मणि। **आत्मनः पदम्**—(शेषे षष्ठी)—राज्यम् 'उक्ते कर्मणि प्रथमा'। **त्वया**—युधिष्ठिरेण 'अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया।' **यदि पुनः लब्धा**—यदि फिर प्राप्त किया जावेगा यदि पुनरपि लप्स्यते लभ्+लुट् ता कर्मणि लब्धा लुट् (अनद्यतनभविष्य) 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' लुट् के प्रथम पुरुष के तीनों वचनों को क्रमशः डा, रौ, रस् होते हैं—इस नियम से 'डा' हुआ। 'डित्व' सामर्थ्य से 'त' में 'अ' का लोप हो गया। फलतः 'लब्धा' बना। **जननाथ**—जानानां नाथः (षष्ठी तत्पुरुष) तत् सम्बुद्धौ। **तवानुजन्मनाम्**—अनु—पश्चात् अनु परवर्त्ति जन्म येषां (बहुव्रीहि) तेषाम्। **आविष्कृतपौरुषैः**—दर्शितपराक्रमैः आविष्कृतं पौरुषं यैः तैः, 'भुजैः' का विशेषण है। **भुजैः**—'करणे तृतीया' बाहुभिः। **भुजैः कृतम्**—भुजैः किमपि न साध्यते। 'गम्यमानाऽपि क्रिया कारक-विभक्तौ प्रयोजिका। अलं श्रमेण साध्यं नास्तीत्यर्थः। इह साधनक्रियां प्रति श्रमः करणम्'—भट्टोजि। 'भुजैः कृतम्' का अर्थ है भुजाओं से कुछ साध्य नहीं। साधन क्रिया का कार्य लाने में साधकतम हैं 'भुजाएँ' अतः करण में तृतीया हुई। यद्यपि साधनक्रिया यहाँ प्रत्यक्ष सुनाई नहीं पड़ती, अपितु 'गम्यमान' है तथापि गम्यमान क्रिया के साधकतमत्व के आधार पर तृतीया हुई है। द्रष्टव्य—'अथवा कृतं सन्देहेन'—शाकु० १। **कृतम्**—भुजैः किमपि

न साध्यते—यह अव्यय निवारण और निषेध अर्थ में आता है। 'रिपौ वैरि-सपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः' इत्यमरः। 'जघन्यजे स्युः कनिष्ठवीयोऽवरजानुजा' इत्यमरः। 'भुजबाहू प्रवेष्टो दः' इत्यमरः।

(लभ्—लभेते, लभेताम्, अलभत, लेभे, अलब्ध, लप्स्यते)

वाच्यपरिवर्तनः—यदि त्वं लब्धाऽसि।

ननु साम्नैव कार्यसिद्धौ किं क्षात्रेण यथाह मनुः 'साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक्। विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन।'

यदि शान्ति से ही कार्य सिद्ध हो जाय तो क्षात्रतेज दिखाने से क्या लाभ इस पर कहते हैं कि तेजस्वी व्यक्ति परोपजीवी न होकर अपने पौरुष से ही राजलक्ष्मी प्राप्त करता है—

मदसिक्तमुखैर्मृगाधिपः करिभिर्वर्त्तयते स्वयं हतैः।
लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः ॥१८॥

अन्वयः—मृगाधिपः मदसिक्तमुखैः स्वयं हतैः करिभिः वर्त्तयते। तेजसा जगत् लघयन् महान् अन्यतः भूतिम् न इच्छति खलु।

मदेति। मृगाधिपः सिंहो मदसिक्तमुखैः। मदवर्षिभिरित्यर्थः। स्वयं स्वेनैव हतैः करिभिर्वर्त्तयते वृत्तिं करोति। तैरेव जीवतीत्यर्थः। चौरादिकाद्वर्तेर्लट्। भौवादिकस्य तु "अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्" इति परस्मैपदनियमादिति। तथाहि। तेजसा प्रभावेण। "तेजो बले प्रभावे च ज्योतिष्यर्चिषि रेतसि" इति वैजयन्ती। जगल्लघयंल्लघू कुर्वन् महांस्तेजस्व्यन्यतोऽन्यस्मात्पुरुषाद् भूति वृद्धिं नेच्छति खलु। नहि तेजस्विनः परायत्तवृत्तित्वं युक्तम्। मनुवचनं त्वशूर-विषयमिति भावः। विशेषेण वक्ष्यमाणसामान्यसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः ॥१८॥

हिन्दी अनुवाद—सिंह मदसिक्त मुखवाले तथा स्वयं (अपने हाथों) मारे गए हाथियों से अपनी जीविका निर्वाह करता है। निश्चय ही महान् व्यक्ति अपने तेज से संसार को लघु करता हुआ दूसरे से समृद्धि की इच्छा नहीं करता।

English Translation—The King of beasts (i.e., lion) lives on elephants that have their faces wet with ichor and are killed by himself. The great making the world small by his lustre never desires prosperity from others.

संस्कृतभावार्थः—यथामृगाधिपः मदमत्तान् गजान् स्वविक्रमेणैव हत्वा स्वजीविकां करोति दुर्बलान् जीवान्न हन्ति नान्यैर्हतैः पशुभिः स्वप्राणान् धारयति। तथैव महान् स्वप्रभावेण भूतलं तृणवन्मन्यमानः नान्यतोऽभ्युदयमिच्छति। भवान् सर्वेषां नृपतीनां शासकोऽभूत् तथाविधोऽपि निजौजसा राजलक्ष्मीमाप्तुं न प्रयतते परञ्च अन्यतः समृद्धिमभिलषतीत्यनुचितम्।

टिप्पणी—मृगाधिपः—मृगाणामधिपः (षष्ठी तत्पुरुष) 'शेषे षष्ठी' से। अधिषातीति अधिपः—अधि+पा+क कर्त्तरि। 'आतश्चोपसर्गे'—उपसर्गपूर्वक अकारान्त धातु से क प्रत्यय होता है—इस सूत्र से 'अधिपः' में 'क' प्रत्यय हुआ। 'सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यो हर्यक्षः केसरी हरिः' इत्यमरः। **मदसिक्तमुखैः**—मदवर्षिभिः मदेन सिक्तं मुखं येषां (बहुव्रीहि) तैः। विशेषण है 'करिभिः' का। **स्वयं हतैः**—स्वेनैव घातितैः। 'स्वयं' अव्यय का अर्थ है 'आत्मना'। हन्+क्त कर्मणि—हतः तैः। करिभिः का विशेषण है। **करिभिः**—प्रशस्तः करः अस्ति एषाम् इति क+इनि मत्वर्थे करिणः तैः 'करणे तृतीया'। **वर्त्तयते**—वृत्तिं करोति वृत्+णिच् (चुरादि) लट्। यहाँ 'णिचश्च' जब क्रियाफल कर्त्ता को प्रभावित करता है तो णिजन्त धातु आत्मनेपद होती है—इस सूत्र से आत्मनेपद हो गया। यहाँ 'वर्त्तन' क्रिया का फल मृगाधिपगामी है। अतः 'वृत्' धातु आत्मनेपद हो गयी। **तेजसा**—ओजसा। **जगत्**—गच्छतीति जगत् गम्+क्विप् संसारम्। **लघुयन्**—लघु करोति इति लघु+णिच्+लटः स्थाने शतृ कर्त्तरि लघयन्। 'तत्करोति तदाचष्टे' नियम से 'णिच्' हो गया। **महान्**—तेजस्वी। **अन्यतः**—पुरुषान्तरात्। भूतिं भू+क्तिन् भावे—ऐश्वर्यम्। **न इच्छति लघु**—नैवाभिलषति। इष्+लट्+ति। 'खलु' अव्यय अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस श्लोक में 'सिंह स्वयं मारे हुए मदसिक्त हाथियों से जीविका निर्वाह करता है' इस सामान्य कथन का 'तेजस्वी दूसरे से समृद्धि नहीं चाहता' विशेष कथन से समर्थन हुआ है अतः 'अर्थान्तर-

न्यास' अलंकार है। 'मदो दर्पेऽभिमाने च गजगण्डस्थलाम्बुनि' इति कोषः। (इष्—इच्छति, ऐच्छत्, इयेष, ऐषीत्, ऐषिष्यति) (हन्—हन्ति, हन्तु, अहन्, जघान, अवधीत्, हनिष्यति) ॥१८॥

वाच्यपरिवर्तनः—मृगाधिपेन स्वयं हतैर्मदसिक्तमुखैः करिभिः वर्त्यते। तेजसा जगत् लघयता महता अन्यतो भूतिर्न इष्यते ॥१८॥

ननु युद्धात् पाक्षिको लक्ष्मीलाभः उपायान्तरैस्तु न तथेत्याशङ्क्य आह—

युद्ध से लक्ष्मी का लाभ होता है, युद्ध के अतिरिक्त अन्य उपायों द्वारा शत्रुविजय का प्रयत्न किया जा सकता है। इस आशंका पर भीम कहते हैं—

अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभिः स्थास्नु यशश्चिचीषतः।
अचिरांशुविलासचञ्चला ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम् ॥१९॥

अन्वयः—अभिमानधनस्य गत्वरैः असुभिः स्थास्नु यशः चिचीषतः अचिरांशुविलासचञ्चला लक्ष्मीः आनुषङ्गिकं फलम् ननु।

अभिमानेति। अभिमानधनस्य वैरनिर्यातनमात्रनिष्ठस्य। अतएव गत्वरैर्गमनशीलैरस्थिरैः। "गत्वरश्च" इति क्वरवन्तो निपातः। असुभिः प्राणैः करणैः। "पुंसि भूम्न्यसवः प्राणा" इत्यमरः। स्थास्नुस्थिरम्। "ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः" इति ग्स्नु प्रत्ययः। यश्चिचीषतश्चेतुं सङ्ग्रहीतुमिच्छतः। चिनोतेः सन्नन्ताच्छतृप्रत्ययः। अचिरमंशवो यस्याः साऽचिरांशुर्विद्युत्तस्या विलासः स्फुरणं तद्वच्चञ्चला। क्षणिकेत्यर्थः। लक्ष्मीः सम्पदनुषङ्गादागतमानुषाङ्गिकमन्वाचयशिष्टमल्पं फलम्। मानत्राणजं यश एव मुख्यं फलमभ्युच्चयस्तु लक्ष्मीरिति मानिनामिदमेव श्लाघ्यमित्यर्थः। अत्रास्थिरप्राणत्यागेन स्थिरयशः स्वीकाराभिधानान्न्यूनाधिकविनिमयाख्यः परिवृत्त्यलङ्कारः। तदुक्तं काव्यप्रकाशे—"परिवृत्तिर्विनिमयो योऽर्थानां स्यात् समासमैः" इति ॥१९॥

हिन्दी अनुवाद—अभिमान को ही धन मानने वाले नाशवान प्राणों से स्थिर यश के एकत्र करने की इच्छा वाले के लिए विद्युत् की चमक की भाँति अस्थिर लक्ष्मी आकस्मिक फल है।

English Translation—Riches, fickle like a flesh of lightning is but an incidental gain to one whose wealth is self-respect and who wants to acquire indying fame in exchange for transitory life.

संस्कृतभावार्थः—नश्वरैः प्राणैः यशः स्थायि । अभिमानधनाः जातिकुलगौरवरक्षणार्थं स्वप्राणपणेनापि चेष्टन्ते । यतः 'अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थात् यशोधनानां हि यशो गरीयः' । अतो मनस्विनः समरे वैरनिर्यातनार्थं शत्रुदमनेनोपलब्धां कीर्त्तिं प्राणैरपिगरीयसीं मन्यन्ते धनमप्युपेक्षन्ते च । यतः लक्ष्मीः विद्युदिवास्थिरा । युद्धे विजयलाभेन समं लक्ष्मीरप्यायाति तत्तु प्रंसगप्राप्तं फलमेवेत्यर्थः ।

टिप्पणी—अभिमानधनस्य—अभि+मन्+घञ् भावे—अभिमानः स एव धनमस्य (वहुव्रीहि) तस्य । **गत्वरैः**—अस्थिरैः—गच्छतीति; गम् +क्वरप् कर्त्तरि—गत्वराः तैः; 'असुभिः' का विशेषण है । **असुभिः**—प्राणैः करणे तृतीया । **दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वञ्च**—दारा, अक्षत, लाजा, असु (प्राण) आदि शब्दों का प्रयोग बहुवचन में ही होता है । **स्थास्नु**—तिष्ठतीति स्था+ग्स्नु कर्त्तरि, 'ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः' ग्लै, जि और स्था के साथ ग्स्नु प्रत्यय लगता है—इस सूत्र से ग्स्नु प्रत्यय लगा है । द्रष्टव्य—'स्थास्नु रणे स्मेरमुखो जगाद' भट्टिकाव्य । 'स्थास्नुः स्थिरतरः स्थेयान्' इत्यमरः । **यशः**—कीर्त्तिम्; 'यशः कीर्त्तिः समज्ञा च' इत्यमरः । **चिचीषतः**—चेतुमिच्छतीति चि+सन्+लटः स्थाने शतृ चिचीषत् (प्रातिपादिक) तस्य । 'विभाषा चेः'—चि धातु का 'च' लिट् में और सन् में अभ्यास के बाद आने पर विकल्प से 'क' हो जाता है—इस सूत्र से वैकल्पिक रूप 'चिचीषतः' वनता है । अचिरांशुविलासचञ्चला—न चिरम् अचिरम् (नञ्तत्पुरुष), अचिरं अंशवः अस्य (वहुव्रीहि) अचिरांशोः विलासः (ष० त०) अचिरांशु विलास इव चंचला (उपमानकर्मधारय) वि+लस्+घञ् भावे—विलासः । द्रष्टव्य—'स्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम्'—रघुवंश । 'अचिरांशुस्तडित् विद्युत् क्षणभा चपला अपि' इति कोषः । 'शम्पा चपला क्षणिका शतह्रदा ह्लादिनी तडिद्विद्युत् । सौदामिन्यचिरांशुः प्राज्ञैरैरावती च विज्ञेया' इति हलायुधः । **लक्ष्मीः**—सम्पत्; लक्षयति

पश्यति नीतिमन्तं पुरुषमिति; लक्ष्+णिच्+ई (श्रीणादिको मुडागमश्च) —लक्ष्मीः। **आनुषङ्गिकम्**—प्रसङ्गप्राप्तम्, अनु+सञ्ज्+घञ् भावे—अनुषङ्गः; अनुषङ्गात् आगतम्; आनुषङ्ग+ठक्। **फलं ननु**—फलमेव। 'ननु' अव्यय यहाँ 'अवधारण' अर्थ में है—"प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु।" 'विधेयोद्देश्ययोर्लिङ्गवचनेषु न तन्त्रता' इति उद्देश्यस्य लक्ष्मीशब्दस्य विधेयस्य फलशब्दस्य च भिन्नलिंगत्वम्'। इस श्लोक के पूर्वार्ध से तुलना कीजिए :—

'अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थात् यशोधनानां हि यशो गरीयः'—रघुवंश सर्ग १४। अत्र अस्थिरप्राणत्यागेन स्थिरयशः स्वीकाराभिधानात् न्यूनाधिक-विनिमयाख्यः' परिवृत्तिरलंकारः—यहाँ नश्वर प्राणत्याग से स्थिरयश के स्वीकार करने से परिवृत्ति अलंकार है। उसका लक्षण काव्यप्रकाश में इस प्रकार है :—'परिवृत्तिर्विनिमयो योऽर्थानां स्यात्समासमैः' अर्थात् पदार्थों का समान अथवा असमान् (न्यून अथवा अधिक पदार्थों) के साथ जो विनिमय (का वर्णन) है वह परिवृत्ति अलंकार कहा जाता है ॥१९॥

वाच्यपरिवर्तनः—अचिरांशुविलासचंचलया लक्ष्म्या आनुषङ्गिकेण फलेन भूयते।

नन्वल्पस्य मानस्य हेतोः कथं प्राणत्यागः शक्यते कर्त्तुम् यतः—'जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येत्' इत्याशंक्याह—जरा से मान के लिए प्राण-त्याग क्यों किया जाय क्योंकि यदि जीवन रहेगा तो बहुत कुछ प्राप्त हो सकेगा इस शंका पर कहते हैं—

ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः।
अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाममानिनः ॥२०॥

अन्वयः—जनः भस्मनां चयम् आस्कन्दति ज्वलितं हिरण्यरेतसं न। अतः मानिनः अभिभूति भयात् असून् सुखम् उज्झन्ति धाम न ॥२०॥

ज्वलितमिति। जनः भस्मनां चयं पुञ्जमास्कन्दति पादादिनाऽक्रामति। अदाहकत्वादिति भावः। ज्वलितं ज्वलन्तम्। कर्त्तरि क्तः। "मतिबुद्धि"

इत्यादिसूत्रे चकाराद्वर्तमानार्थत्वम्। हिरण्यं रेतो यस्य तं हिरण्यरेतसमग्निं नास्कन्दति। दाहकत्वादितिभावः। अतो हेतोर्मानिनोऽभिभूतिभयात्प्राणलाभेन तेजस्त्यागे परिभवो भविष्यतीति भयादसूनेव सुखमक्लिष्टमुज्झन्ति त्यजन्ति, धाम तेजस्तु नोज्झति। मानहानिकराज्जीवनात्स्वतेजसा मरणमेव वरमित्यर्थः। पूर्वतरश्लोकवदर्थान्तरन्यासः ॥२०॥

हिन्दी अनुवाद—लोग राख के ढेर को पैर से आक्रान्त करते हैं किन्तु जलती हुई अग्नि को नहीं (पादाक्रान्त करते)। इसलिए स्वाभिमानी लोग अपमान के भय से सुखपूर्वक प्राण त्याग देते हैं, तेज नहीं।

English Translation—People walk on a heep of ashes but not on the burning fire. Hence the selfconceited, through fear of insult, easily give up life, but not their spirit.

संस्कृतभावार्थः—'मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छत। अपि निर्वाणमायाति नानलो याति शीतताम् ॥' इति कथनमेवानुस्मरन् तेजस्वी सुखेन प्राणान् त्यक्तुमिच्छति परञ्च स्वतेजो कदापि न जहाति। मानवस्तु भस्मराशिमेव पादादिनाक्रामति यतोऽसावदाहको भवति प्रज्वलितमग्निमभिभवितुं न कोऽपि शक्नोति। 'मृदुर्हि परिभूयते' इत्युक्तिस्तु सत्यमेव। मानहानिकराज्जीवनात्स्वतेजसा मरणमेव वरमित्यर्थः।

टिप्पणी—**जनः**—मानवः। **भस्मनां चयम्**—भस्मराशिं चि+अच् भावे—चयः तम्। 'भूतिर्भसितभस्मनि' इत्यमरः। 'समुदायः समुदयः समवायश्चयो गणः' इत्यमरः। **आस्कन्दति**—पादादिना आक्रामति। आ+स्कन्द्+लट् ति इसका कर्त्ता 'जनः'। **ज्वलितं**—प्रज्वलितं। ज्वल्+क्त कर्त्तरि वर्तमाने—ज्वलितः तम्। 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च'—इच्छार्थक, बुद्ध्यर्थक पूजार्थक धातुओं के अतिरिक्त अन्य धातुओं में भी 'क्त' प्रत्यय लगाया जाता है—इस सम्बन्ध में गिनाई गई सूची निम्नाङ्कित है। 'शीलितः रक्षितः क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि। रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृति इत्यपि ॥ हृष्टतुष्टौ तथा कान्तस्तयोर्भौ संयतोद्यतौ। कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृतः पूर्ववत् स्मृतः ॥' इसमें

'ज्वल्' धातु नहीं है अतः इस सूची को पूर्ण न मानकर उदाहरणमात्र मान लेना चाहिए। विकल्प से ज्वलितम् (ज्वल्+क्त नपुंसके भावे) अस्ति अस्येति ज्वलित+अच् मत्वर्थे ज्वलितः तम्। **हिरण्यरेतसम् न**—अग्नि नाक्रामति; हिरण्यं रेतो यस्य सः (बहुव्रीहि) तम्। 'हिरण्यरेता हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः' इत्यमरः। **अतः**—अस्माद्धेतोः। एतद्+ङसि+तसिल् स्वार्थे अतः अव्यय। **मानिनः**—मन् घञ् भावे—मानः; स अस्ति एषामिति मान + इनि मत्वर्थे मानिनः। **अभिभूतिभयात्**—अपमानभयात्, भी+अच् भावे भयः; अभि+भू+क्तिन् अभिभूतिः तस्य भयः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मात्। 'हेतौपञ्चमी'। **असून्**—प्राणान्। **सुखम्**—अक्लिष्टम्; सुखेन क्रिया विशेषण है। **उज्झन्ति**—परित्यजन्ति उज्झ् + लट् अन्ति। **धाम न**—तेजः न त्यजन्ति। 'धाम रश्मौ गृहे देहे तेजस्यपि निगद्यते' इति। यहाँ पर 'मनस्वी अभिभव की आशंका से सुखपूर्वक प्राण त्याग देते हैं किन्तु तेज नहीं' इस सामान्य कथन का 'लोग भस्मराशि को (पैर से) आक्रान्त करते हैं' इस विशेष कथन से सामान्य समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है। श्लोक के उत्तरार्ध के लिए द्रष्टव्य—'सम्भावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते'—गीता।

'मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति।

अपि निर्वाणमायाति नानलो याति शीतताम्॥' हितोपदेश।

(चि धातु—चिनोति—चिनुते, चिनोतु—चिनुताम्, अचिनोत्—अचिनुत, चिकाय—चिक्ये—चिचाय, अचैषीत्—अचेष्ट, चेष्यति—चेष्यते।)

(उज्झ्—उज्झति, औज्झीत्, उज्झाम्बभूव, उज्झिष्यति) ॥२०॥

वाच्यपरिवर्तनः—जनेन भस्मनां चयः आस्कद्यते, किन्तु ज्वलितो हिरण्यरेताः न। अतो मानिभिः अभिभूतिभयात् असवः सुखम् उज्झ्यन्ते किन्तु धाम न (उज्झ्यन्ते)।

अथवा किमत्र प्रयोजनचिन्तया, किन्तु तेजस्विनामयं स्वभाव एव यज्जिगीषुत्वमित्याशयेनाह—

तेजस्वियों का तो स्वभाव ही जिगीषुत्व का होता है उन्हें फल की अपेक्षा नहीं। महान् व्यक्ति दूसरों की उन्नति सहन नहीं कर सकते—

किमपेक्ष्य फलं पयोधरान् ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः ।
प्रकृतिं खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया ॥२१॥

अन्वयः—मृगाधिपः किं फलं अपेक्ष्य ध्वनतः पयोधरान् प्रार्थयते । महीयसः सा खलु प्रकृतिः यया अन्यसमुन्नतिं न सहते ।

किमिति । मृगाधिपः सिंहः किं फलं प्रयोजनमपेक्ष्य ध्वनतो गर्जतः धरन्तीति धराः । पचाद्यच् । पयसां धरास्तान्पयोधरान्मेघान् प्रार्थयतेऽभियाति । 'याञ्चायामभिधाने च प्रार्थना कथ्यते बुधैः' इति केशवः । अथवा प्रार्थयते अवरुणद्धि इत्यर्थः । प्रा अर्थयते । 'प्रा स्याद् याञ्चाऽवरोधयोः' इत्यभिधानात्प्रा अवरोधेन । प्रा इति तृतीयान्तस्य प्राशब्दस्य योगविभागाद् 'आतो धातोः' इत्यालोपः । तथा हि—महीयसो महत्तरस्य सा प्रकृतिः खलु यया प्रकृत्याऽन्य समुन्नतिं न सहते । महतः परभञ्जनमेव पुरुषार्थः इत्यर्थः । पूर्ववदलंकारः ।

हिन्दी अनुवाद—सिंह किस फल की अपेक्षा करके गरजते हुए बादलों से माँगता है (ललकारता है) । निश्चय ही यह बड़े लोगों का स्वभाव है जिससे वे दूसरों की उन्नति नहीं सहन कर पाते ।

English Translation—With what object in view does the lord of beasts challenge the roaring clouds. It is, indeed, the nature of the great that they do not tolerate the rise of the others.

संस्कृतभावार्थः—महान्तस्तु फलमनपेक्ष्यैव स्वपराक्रमप्रदर्शनार्थं कार्येषु प्रवर्त्तन्ते ते त्वयेषामुत्कर्षं सोढुं न शक्नुवन्ति । यथा सिंहः प्रयोजनं विनैव गर्जतः मेघानतिक्रमितुं प्रत्युद्गच्छति ।

टिप्पणी—मृगाधिपः—सिंहः मृगाणामधिपः (ष० त०) । **किं फलं अपेक्ष्य**—अप+ईक्ष्+ल्यप् । ईक्षण का अर्थ है केवल देखना नहीं, बल्कि विचार करना, किस फल की अपेक्षा करके यहाँ पर प्रश्न है अथवा 'फलमपेक्ष्य प्रार्थयते किम्' फल को इच्छा करके ललकारता है क्या । **ध्वनतः**—ध्वन्+लटः स्थाने शतृ तान् 'पयोधरान्' का विशेषण है । **पयोधरान्**—धरन्तीति

धराः पचाद्यच् पयसां धराः इति पयोधराः तान् (षष्ठी तत्पुरुष) 'स्त्रीस्तनाब्दौ पयोधरौ' इत्यमरः। **प्रार्थयते**—प्र+अर्थ+णिच् (चुरादि)+लट् ते। 'मृगाधिपः' इसका कर्त्ता है। 'याञ्चायामभियाने च प्रार्थना कथ्यते बुधैः' इति केशवः। यहाँ पर इस सन्दर्भ में 'प्रार्थयते' का अर्थ (अभियाति) अधिक उपयुक्त है। **महीयसः**—अतिशयेन महान् इति महीयान् (महत्+ईयसुन्) तस्य शेषे षष्ठी। मनस्विनः महतः वा। **सा खलु प्रकृतिः**—निश्चयेन एषः महतां स्वभावः। प्र+कृ+क्तिन् भावे—प्रकृतिः। 'संसिद्धिप्रकृती त्विमे। स्वरूपञ्च स्वभावश्च निसर्गश्च' इत्यमरः। **यया**—प्रकृत्या हेतौ तृतीया। **अन्यसमुन्नतिं**—अन्येषां समुन्नतिं सम्+उद्+नम्+क्तिन् भावे—समुन्नतिः (षष्ठी तत्पुरुष)। तुलना कीजिए :—

न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां वियहते।
स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः॥ उत्तररामचरितम् ६, १४

नाभाजि केवलमभाजि गजेन शाखी।
नान्यस्य गन्धमपि मानभृतः सहन्ते॥ शिशु० ५,४२

अथ तत्र पाण्डुतनयेन सदसि विहितं मुरद्विषः।
मानमसहत न चेदिपतिः परिवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम्॥ शिशु० ।१५।१

गर्जन्हरिः साम्भसि शैलकुंजे प्रतिध्वनीनात्मकृतान्निशम्य।
क्रमं ववन्ध क्रमितुं सकोपः प्रतर्कयन्नन्यमृगेन्द्रनादान्॥ भट्टिकाव्य ३।९

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है। 'सिंह क्या इच्छा करके मेघों को ललकारता है।' इस विशेष कथन का 'महान् का यह स्वभाव ही है' इस सामान्य कथन से समर्थन किया गया है।

(इक्ष्—इक्षते, ऐक्षत, ईक्षाञ्चक्रे, ऐक्षिष्ट; अर्थ—अर्थयते, आर्थयत, अर्थयामास—अर्थयाम्बभूव—अर्थयाञ्चक्रे, आर्थयत ॥२१॥)

वाच्यपरिवर्तनः—ध्वनन्तः पयोधराः मृगाधिपेन प्रार्थ्यन्ते। तया महीयसः प्रकृत्या भूयते यथा अन्यसमुन्नतिः न सह्यते।

उक्तं प्रयोजनं निगमयति—

आपकी उपेक्षा के कारण ही आपके शत्रु की उन्नति हुई है अतः अब युद्ध के लिए तत्पर हो जाइये—

कुरु तन्मतिमेवविक्रमे नृप निर्धूय तमः प्रमादजम् ।
ध्रुवमेतदवेहि विद्विषां त्वदनुत्साहहता विपत्तयः ॥२२॥

अन्वयः—हे नृप, तत् प्रमादजं तमः निर्धूय विक्रमे एव मतिं कुरु । विद्विषां विपत्तयः त्वदनुत्साहहताः एतत् ध्रुवम् अवेहि ।

कुरु तदिति । हे नृप, तत्तस्मादुक्तरीत्या पराक्रमोत्साहयोर्हेतुत्वाद्धेतोः "यत्तद्यतस्ततो हेतौ" इत्यमरः । प्रमादजं तमो मोहं निर्धूय निरस्य विक्रमे पौरुषे एव मतिं कुरु । विक्रममेवाङ्गीकुरु, न तूपायान्तरमित्यर्थः । न च विक्रमवैफल्य-शंकाकार्येत्याह—ध्रुवमिति । विद्विषां विपत्तयस्त्वदुत्साहहतास्तवानुत्साहे-नाव्यवसायेन हताः प्रतिबद्धाः । अन्यथा प्रागेव विपद्येरन्निति भावः इत्येतद्ध्रुवं निश्चितमवेहि विद्धि । "ध्रुवं नित्ये निश्चिते च" इति शाश्वतः ॥२२॥

हिन्दी अनुवाद—हे राजन्, इस कारण प्रमाद से उत्पन्न मोह (अन्ध-कार) को दूर कर उद्योग में ही मन लगाइये । शत्रुओं की विपत्तियाँ आपके अनुत्साह से नष्ट हो गई हैं, इसे आप निश्चित समझें (अर्थात् यदि आप पराक्रम का अवलंबन करेंगे तो शत्रुओं की विपत्तियाँ बढ़ जायेंगी ।)

English Translation—O lord of men, having shaken off your lethargy caused by carelessness, make up your mind for valour only. Know it for certain that the miseries of enemies are averted by your lack of enterprise.

संस्कृतभावार्थः—उद्यमेन हि कार्याणि सिध्यन्तीति विचार्य भवानपि अनवधानतोत्पन्नं मोहं परित्यज्योद्योगतत्परो भव । भवतामुदासीनता शत्रोरुन्न-तिकारणमिति निश्चितमवेहि । यदा भवान्पौरुषमंगीकरिष्यति तदा तेषां विनाशो निश्चितमेव भविष्यति ।

व्याख्या—शत्रु के प्रति उपेक्षा रखने के कारण उनकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। इधर तो आप अपने त्रयोदश वर्ष वनवास की अवधि बिताने में लगे हैं उधर वनेचर के कथनानुसार दुर्योधन निश्चिन्त होकर सुव्यवस्था में तत्पर है अतः उसकी स्थिति दृढ़ हो गई है। यदि आप उसका उन्मूलन करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो जायँ तो सहज ही में उसको पराजित कर सकते हैं। अतः आलस्य छोड़कर युद्धार्थ सन्नद्ध हो जाइए।

टिप्पणी—**नृप**—नृ पातीति नृपः तत्संबुद्धौ; नृ+पा+क कर्त्तरि। तत्—'अव्यय' तस्मात् हेतोः। "यत्तद्यतस्तर्तो हेतौ" इत्यमरः। **प्रमादजं**—प्र+ मद् +घञ् भावे प्रमादः तस्मात् जातम्। 'प्रमादोऽनवधानता' इत्यमरः। प्रमादात् जातम् इति प्रमाद+जन्+ड—कर्त्तरि भूते प्रमादजम्। 'तमः' का विशेषण है। **तमः**—अन्धकार, अज्ञान, मोह। निर्धूय का कर्म है। युधिष्ठिर का प्रमाद उनके अज्ञान का कारण है। क्योंकि वे उदासीनता का अवलम्बन करने लगे। **निर्धूय**—निरस्य, निर्+धू+ल्यप्। धञ् धातु तथा उसके समान अन्य धातुओं की सूची हलायुधकोश में इस प्रकार है :—

धूनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोकं,
चूतं धुनाति धुवति स्फुटितातिमुक्तम्।
वायुर्विधूनयति केसरपुष्परेणून
यत्कानने धवति चन्दनमञ्जरीश्च॥

विक्रमे एव—वि+क्रम्+घञ् भावे विक्रमः तस्मिन्। "शक्तिः पराक्रमः प्राणो विक्रमस्त्वतिशक्तिता" इत्यमरः। विषयाधिकरणे सप्तमी। **बुद्धिं विधेहि मतिं कुरु**—बुद्धिं विधेहि मन्+क्तिन् भावे करणे वा मतिः ताम्। कर्म है 'कुरु' का। **विद्विषां**—शत्रूणां द्विषन्तीति द्विष्+क्विप् कर्त्तरि द्विषः विशेषेण द्विषः विद्विषः (सुप्सुपा) तेषाम्। शेषे षष्ठी; इसका सम्बन्ध है 'विपत्तयः' से। **विपत्तयः**—आपत्तियाँ वि+पद्+क्तिन् भावे विपत्तिः ताः (भवन्ति) का कर्त्ता है। **त्वदनुत्साहहताः**—उत्+सह्+घञ् भावे उत्साहः न उत्साहः नञ् तत्पुरुष। तव अनुत्साहः तेन हताः। **एतत् ध्रुवम्**—निश्चयम् "ध्रुवं नित्ये निश्चिते च" इति शाश्वतः। **अवेहि**—अव+इ+लोट् अवपूर्वक इ धातु का

अर्थ है 'जानना' । द्रष्टव्य—अवैमि चैनां अनघेति किन्तु लोकापवादो बलवान् मतो मे—रघुवंश सर्ग १४ ।

(कृ—करोति—कुरुते, चकार—चक्रे, करिष्यति—करिष्यते, अकार्षीत्, अकृत, अकरोत्—अकुर्वत । जन्—जनयति, अजनयत्, जनयामास । इ—एति, ऐत्, एतु, इयाय, एष्यति, अगात् ।)

वाच्यपरिवर्तनः—विक्रमे एव मतिः क्रियताम् । विद्विषां विपत्तिभिः त्वदनुत्साहहताभिः भूयते एतद्ध्रुवं भक्ता भवेयताम् ।

न च नः पराजयशंका कार्या इत्याह—

आपके भाई युद्ध में अजेय हैं अतः आपको पराजय की शंका नहीं करना चाहिए :—

द्विरदानिव दिग्विभावितांश्चतुरस्तोयनिधीनिवायतः ।
प्रसहेत रणे तवानुजान्द्विषतां कः शतमन्युतेजसः ॥२३॥

अन्वयः—दिग्विभावितान् आयतः चतुरः द्विरदानिव तोयनिधीनिव रणे शतमन्युतेजसः तव अनुजान् द्विषतां कः प्रसहेत ।

द्विरदानिति । दिग्विभावितान् दिक्ष प्रसिद्धांस्तानायत आगच्छतः । आङ्-पूर्वादिण्धातोः शतृप्रत्ययः चतुरो द्विरदान् दिग्गजानिव, तथोक्तविशेषणांश्चतुरस्तोयनिधीनिव, रण आयतो दिग्विभावितांश्छतमन्युतेजसः इन्द्रविक्रमांश्चतुरस्तवानुजान् द्विषतां मध्ये कः प्रसहेत । सोढुं शक्नुयादित्यर्थः । "शकि लिङि च" इति शक्यार्थे लिङ् अतो निःशंकं प्रवर्तस्वेति भावः ॥२३॥

हिन्दी अनुवाद—दिशाओं के अन्त में विख्यात, आते हुए चार दिग्गजों के समान अथवा (दिगन्त में प्रसिद्ध ज्वार के समय में प्रवृद्धोर्मि चार) समुद्रों के सदृश युद्ध में शतक्रतु इन्द्र के समान तेजवाले (चारों दिशाओं में प्रख्यात, उत्साहपूर्वक युद्धार्थ आगे बढ़ते हुए) तुम्हारे (चारों) अनुजों (भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) को शत्रुओं में कौन सहन कर सकता है ।

English Translation—Who among enemies can withstand in battle your (four) younger brothers, famous in all directions, and advancing forward like the four quarter elephants or like the four oceans well known in all directions rushing forward and having the lustre of Indra (lit. one who has performed hundred sacrifices).

संस्कृतभावार्थः—अजेयास्तव भ्रातरः । वयं तवानुजाः इन्द्रसमतेजस्विनः ऐरावतादीन् दिग्गजानिव अभिधावतः समरे समुद्रा इवानतिक्रमणीयाः स्मः । अरीणां मध्ये कोऽस्मानभिभवितुं शक्नोति । अतः पराजयशंकां निरस्य युद्धं कुर्विति भीमकथनतात्पर्यम् ।

व्याख्या—भीम का युधिष्ठिर से कथन है कि आपको पराजय की शंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि आपके चारों छोटे भाई इन्द्र के समान पराक्रमी दिग्गजों के समान बलशाली हैं । जैसे ज्वार के समय समुद्र ऊपर उठता है वैसे ही वे भी युद्ध के लिए सदैव आगे ही बढ़ते रहते हैं । कौरवपक्ष का कोई भी वीर उन्हें पराजित करने में समर्थ नहीं हो सकता ।

टिप्पणी—**दिग्विभावितान्**—दिक्षु विभाविताः (सुप्सुपा) तान्, वि+णिच्+क्त कर्मणि । द्विरदान्, तोयनिधीन् तथा अनुजान् का विशेषण है। **आयतः**—आगच्छतः—आते हुए आ+इण्+लट् स्थाने शतृ कर्त्तरि= आयन्तः—तान् 'द्विरदान्' 'तोयनिधीन्' तथा 'अनुजान्' का विशेषण है । **चतुरः**—दिग्विभावितान् तथा आयतः के समान यह भी द्विरदान्, तोयनिधीन् और अनुजान् का विशेषण है । **द्विरदान्**—द्वौ रदौ एषामिति द्विरदाः तान्—'दन्ती दन्तावलो हस्ती, द्विरदोऽनेपोद्विपः' इत्यमरः । यह अनुजान् का उपमान है । **तोयनिधीन्**—निधीयते एषु इति नि+धा+क्त अधिकरणे; तोयानां निधयः (षष्ठी तत्पु०) तान् । यह भी 'अनुजान्' का उपमान है। 'तोयनिधि' का अर्थ है 'जलराशि' अर्थात् समुद्र । **रणे**—समरे 'अस्त्रियां समरानीकरणाः कलहविग्रहौ' इत्यमरः । **शतमन्युतेजसः**—शतं मन्यवः यस्य सः शतमन्युः (बहुव्रीहि) शतमन्योः तेज इव तेजो येषाम् ते तान् । यहाँ 'शतमन्युतेजस्तेजसः'

समास बनना चाहिए, पर 'सप्तम्युपमानपूर्वस्योत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः' वार्त्तिक से जिसका अर्थ है यदि सप्तम्यन्त अथवा उपमान पद आगे रहे तो बहुव्रीहि समास में उत्तर पद का लोप हो जाता है। प्रथम 'तेजस्' शब्द लुप्त हो गया। 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः। 'जिष्णुर्लेखर्षभः शक्रः शतमन्युर्दिवस्पतिः' इत्यमरः। **तवानुजान्**—तवारजान् अनु पश्चात् जाता इति अनु+जन्+ड कर्त्तरि भूते, तान् कर्म है 'प्रसहेत' का। **द्विषतां**—शत्रूणां 'यतश्चनिर्धारणे'—किसी वस्तु का अपने समुदाय की अन्य वस्तुओं से विशिष्टता दिखलाने पर सप्तमी अथवा षष्ठी का प्रयोग किया जाता है—इस सूत्र से षष्ठी प्रयुक्त हुई है। **कः प्रसहेत**—कः सोढुं शक्नुयात् प्र+सह्+लिङ। 'प्रसहनमभिभवः। इति काशिका।

उपमालंकार—'साधर्म्यमुपमा भेदे' इतिलक्षणम्।

(भू—भवति, भवतु, अभवत्, बभूव, भविष्यति। सह्—सहते, सहताम्, असहत्, सेहे, असोढ, सहिष्यते।)

वाच्यपरिवर्तनः—दिग्विभाविताः द्विरदा इव चत्वारस्तोयनिधय इव आयन्तः शतमन्युतेजसः तव अनुजाः द्विषतां केन प्रसह्येरन्।

आशीर्वादव्याजेन फलितमाह—

शुभकामना व्यक्त करने के बहाने निष्कर्ष कहते हैं—

ज्वलतस्तव जातवेदसः सततं वैरिकृतस्य चेतसि।
विदधातु शमं शिवेतरा रिपुनारीनयनाम्बुसन्ततिः ॥२४॥

अन्वयः—शिवेतरा रिपुनारीनयनाम्बुसन्ततिः तव चेतसि सततं ज्वलतः वैरिकृतस्य जातवेदसः शमं विदधातु ॥२४॥

ज्वलत इति। तव चेतसि सततं ज्वलतो वैरिकृतस्य जातवेदसः। क्रोधाग्नेरित्यर्थः। शिवेतराऽशिवाऽमंगला। वैधव्यदुःखजनकत्वादिति भावः। रिपुनारीनयनाम्बुसन्ततिर्वैरिवनिताम्बुप्रवाहः शमं विदधातु। वैरिकृतस्य क्रोधस्य वैरिवधमन्तरेण शान्त्यसंभवादवश्यं तद्वधस्त्वया कर्त्तव्य इत्यर्थः। क्रोधस्य विष-

यस्य निगरणेन विषयिणो जातवेदस एवोपनिबन्धादतिशयोक्तिरलंकारः। तदुक्तम्—'विषयस्यानुपादानाद्विषय्युपनिबध्यते। यत्र सातिशयोक्तिः स्यात् कवेः प्रौढोक्तिजीविता' इति। तत्रापि क्रोधस्य जातवेदसो भदेऽप्यभेदाध्यवसायाद् भेदेऽभेदरूपा। तत एवाम्बुनिर्वाप्यत्वोक्तिश्च घटते। तथा च यथाम्बुसेकेनाग्निः शाम्यति तथा शत्रुवधेन क्रोध इत्यौपम्यं गम्यते ॥२४॥

हिन्दी अनुवाद—आपके हृदय में शत्रुद्वारा उत्पन्न निरन्तर जलती हुई अग्नि को रिपुस्त्रियों के अमंगलकारी आँसुओं की धारा शान्त करे।

English Translation—Let the ceaseless flow of inauspicious tears from the eyes of the wives of the enemies quench the fire (of anger) caused by the enemies and always burning in your heart.

संस्कृतभावार्थः—यथा वारिधारापातेनाग्निरूपशान्तिमेति तथैव तव क्रोधाग्निरपि शत्रुवधानन्तरं तेषां वनितानां अश्रुभिरुपशाम्यतु। यावत्ते शत्रूणां विनाशो न भविष्यति तावत्त्वं शान्तिन्नाधिगमिष्यसीति भीमस्याशयः।

व्याख्या—दुःशासन द्वारा द्रौपदीचीरहरण तथा अन्य अनेक अपकारों के कारण युधिष्ठिर का चित्त अत्यन्त क्षुब्ध था तथा क्रोधाग्नि निरन्तर उनके हृदय में धधकती रहती थी। अग्नि वारिधारा से शान्ति होती है। दुर्योधनादि के रण-प्रस्थान के समय शृगालरव होना तथा बाँई आँख फड़कना आदि अपशकुन होने के कारण शत्रुस्त्रियों के नेत्रों से आशंका से अश्रुधारा बहने लगती थी जो शत्रुओं के विनाश का सूचक था। अतः महाराज युधिष्ठिर की क्रोधाग्नि के शान्त होने का यही उपाय था।

टिप्पणी—शिवेतरा—शिवात् इतराः (पंचमी तत्पुरुष) अथवा शिवः इतरः यस्याः सा शिवेतरा वैधव्यल्केशोत्पन्नत्वात् अमंगलकारिणी। **रिपुनारीनयनाम्बुसन्तति**—नीयते एभिः इति नी+ल्युट् करणे नयनानि; सम्+तन्+क्तिन्—सन्ततिः। रिपूणां नार्यः तासां नयनानि तेषां अम्बूनि तेषां संततिः (षष्ठी तत्पुरुष) इति रिपुनारीनयनाम्बुसन्ततिः यह 'विदधातु' क्रिया का कर्त्ता है। **तव चेतसि**—शेषे षष्ठी 'तव' का सम्बन्ध 'चेतसि' से है। भवतो मनसि

सततं—अनवरतम् । 'सततानारताश्रान्तसंततावितानिशम्' इत्यमरः । 'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः । **ज्वलतः**=ज्वलतीति ज्वलन्—(ज्वल्+लट् स्थाने शतृ) तस्य । 'जातवेदसः' का विशेषण है । **वैरिकतस्य**—वीरस्य भावः कर्म वा इति वैरम् (वीर+अण्) तत् अस्ति एषामिति वैरिणः (वैर+इनि मत्वर्थे) तैः कृतः वैरिकृतः तृतीया तत्पुरुष तस्य । **जातवेदसः**=जन्+क्त कर्त्तरि—जात जातानि विन्दति इति जात+विद्+असुन् औणादिक कर्त्तरि तस्य । षष्ठी शेषे । इसका सम्बन्ध 'शमं' से है । 'कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात्' इत्यमरः । **शमं**—शान्ति । 'शमथस्तु शमः शान्तिः' इत्यमरः । शम्+घञ् भावे—शमः तम् । कर्म है 'विदधातु' का । 'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः' सूत्र से 'शम्' में वृद्धि नहीं हुई, सूत्रार्थ—यदि चिण्—ञित् और णित् कृत्प्रत्यय परे रहे तो आङ् पूर्वक चम् धातु को छोड़कर उदात्तोपदेश मान्त धातु की उपधा को वृद्धि नहीं होती । **विदधातु**—वि+धा+लोट् । 'आशिषि लिङ्लोटौ' सूत्र से जिसका अर्थ है आशीर्वाद के अर्थ में आशीर्लिङ् और लोट् लकार प्रयुक्त होते हैं, आशीर्वाद अर्थ में यहाँ लोट् का प्रयोग हुआ है । अतिशयोक्ति अलंकार=तल्लक्षणमुक्तं काव्यप्रकाशे—

"निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत् ।
प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यथोक्तौ च कल्पनम् ।।
कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः ।
विज्ञेयातिशयोक्तिः सा ।।"

अर्थात् उपमान के द्वारा उपमेय का अन्तर्भाव (पृथक्-पृथक् न करना) करके जो अध्यवसान करना है वह, प्रस्तुत अर्थ का अन्यरूप से वर्णन करना, यदि वे समानार्थक शब्द के साथ असंभव अर्थ की कल्पना करना अथवा कार्यकारण के पौर्वापर्य का विपर्यय करना अर्थात् कार्य का प्रथम और कारण का बाद में वर्णन करना ये चार प्रकार के अतिशयोक्ति अलंकार होते हैं । इस श्लोक में 'जातवेदस्' उपमान है तथा 'शत्रुकृत क्रोध' उपमेय है । यहाँ उपमेय 'शत्रुकृत क्रोध' का पृथक् निर्देश नहीं किया गया । उपमान 'जातवेदस्' का ही

उपनिबन्धन किया गया है अतः यह प्रथम प्रकार का अर्थात् 'भेद में अभेदरूप' अतिशयोक्ति अलंकार है।

(धा—दधाति—धत्ते, दधातु—धत्ताम्, अदधात्—अधत्त, अधात्, दधौ—दधे, धास्यति—धास्यते। वि+धा का अर्थ 'सृष्टि रचना' भी होता है यथा द्रष्टव्य—तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना—रघुवंश; प्रथम सर्ग।

वाच्यपरिवर्तनः—शिवेतरया रिपुनारीनयनाम्बुसन्तत्या तव चेतसि सततं ज्वलतः वैरिकृतस्य जातवेदसः शमः विधीयताम् ॥२४॥

युधिष्ठिर भीम को शान्त करने का प्रयत्न करते हैं—

इति दर्शितविक्रियं सुतं मरुतः कोपपरीतमानसम्।
उपसान्त्वयितुं महीपतिर्द्विरदं दुष्टमिवोपचक्रमे ॥२५॥

अन्वयः—महीपतिः इति दर्शितविक्रियं कोपपरीतमानसं मरुतः सुतम् दुष्टं द्विरदं इव उपसान्त्वयितुं उपचक्रमे ॥२५॥

इतीति। इत्युक्तरीत्या दर्शिता विक्रिया विकारो वागारम्भात्मको येन तं कोपपरीतमानसं कोपाक्रान्तचित्तम्। इदं विशेषणद्वयं द्विरदेऽपि योज्यम्। मरुतः सुतं भीमं महीपतिर्युधिष्ठिरो दुष्टं द्विरदमिव। एतेन भीमस्य शौर्यमेव, न बुद्धिरस्तीति गम्यते। उपसान्त्वयितुमनुनेतुमुपचक्रमे प्रवृत्तः "प्रौपाभ्यां समर्थाभ्यां" इत्यात्मनेपदम्। राज्ञा तावदुपकारविशेषापेक्षया कथञ्चिदवशो जनः शनैर्द्विरदवद्वशीकरणीयः, न तु त्याज्य इति भावः ॥२५॥

हिन्दी अनुवाद—महाराज युधिष्ठिर इस प्रकार क्षोभ को व्यक्त करने वाले एवं कोपाविष्ट चित्त वाले वायुपुत्र भीम को दुष्ट (मदयुक्त, क्रोधाक्रान्त) हाथी के समान सान्त्वना देने के लिए प्रवृत्त हुए।

English Translation—The King (lit. protector of earth) began to pacify wind's son (Bhima) who had given vent to his perturbation and whose mind was possessed by anger like a wicked (imfuriated) elephants.

संस्कृतभावार्थः—भीमः पूर्वोक्तैश्चतुर्विंशतिभिः श्लोकैः दुर्योधनादीन् प्रति स्वक्षोभाभिव्यक्तिमकरोत् । युधिष्ठिरः क्रोधाक्रान्तचित्तं भीममनुनेतुं प्रवृत्तः । यथा कश्चिन्महामात्रो मदस्राविनं कोपाविष्टं गजेन्द्रं प्रकृतिस्थं विदधाति ।

व्याख्या—भीम अत्यन्त बलवान एवं उग्र स्वभाव के थे। दुर्योधन के अत्याचारों से वे अपने चित्त में जलते रहते थे तथा युद्ध करने को बड़े उत्सुक थे। ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा न होने से वे विवश थे। उपर्युक्त चौबीस श्लोकों द्वारा उनका हृदयोद्गार व्यक्त किया गया है। जब वे अपना मानसिक क्षोभ व्यक्त कर चुके तब महाराज युधिष्ठिर उन्हें शान्त करने का प्रयत्न करने लगे।

टिप्पणी—महीपतिः—पातीति पतिः पा+डति; मह्याः पतिः महीपतिः (षष्ठी तत्पुरुष) 'उपचक्रमे' का कर्त्ता है। 'पतिः समास एव' सूत्र से महीपति के रूप मुनि के समान चलेंगे। **इति**—अव्यय है; इत्थम् के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है। **दर्शितविक्रियम्**—दर्शिता (दृश्+णिच्+क्त कर्मणि स्त्रियाम्)। वि+कृ+श भावे स्त्रियाम्। दर्शिताविक्रियां अनेनेति दर्शितविक्रमः बहुव्रीहि तम्, विशेषण है 'सुतम्' का। **कोपपरीतमानसं**—कुप्+घञ् भावे कोपः। परि+इ+क्त कर्मणि परीतम्। मन एव इति मनस्+अण् स्वार्थे (प्रज्ञादित्वात्)। कोपेन परीतं (तृतीया तत्पुरुष) कोपपरीतम् मानसं यस्य (बहुव्रीहि) तम्। 'सुतम्' का विशेषण है। **मरुतः**—वायोः मरुत् तस्य शेषे षष्ठी 'मरुतौ पवनामरौ' 'समीर मारुतमरुज्जगत्प्राणसमीरणाः' इत्यमरः। **सुतम्**—तनयं—सु (प्राणिप्रसवे)+क्त कर्मणि—सुतः तं कर्म है 'उपसान्त्वयितुम्' का। 'आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः' इत्यमरः। **दुष्टं**—दुष्+क्त कर्त्तरि 'द्विरदम्' का विशेषण है। **द्विरदं**—द्वौ रदौ अस्येति द्विरदः तम् (बहुव्रीहि) हस्तिनं। **इव उपसान्त्वयितुम्**—उप+सान्त्व+णिच्+तुमुन्—अनुनेतुम्। **उपचक्रमे**—उप+क्रम्—लिट्—प्रवृत्तः। 'प्रोपाभ्यां समर्थाभ्यां' सूत्र से यहाँ आत्मनेपद हो गया है। उपमालंकार। भीम की उपमा गज से दी गई है अर्थात् उनमें बल असीम था, पर बुद्धि की कमी थी।

(क्रम् धातु—क्रामति—क्राम्यति, अक्रामत्, चक्राम, अक्रामीत्, क्रमिष्यति। आत्मनेपद—क्रमते, अक्रमत, अक्रंस्त, क्रंस्यते।)

वाच्यपरिवर्तनः—महीपतिना.....उपचक्रमे ।

प्रथमं तावत्स्तुत्यादिभिः प्रसादयति—

पहले भीम की प्रशंसा आदि से उन्हें महाराज युधिष्ठिर प्रसन्न करते हैं—

अपवर्जितविप्लवे शुचौ हृदयग्राहिणि मंगलास्पदे ।
विमला तव विस्तरे गिरां मतिरादर्श इवाभिदृश्यते ।।२६।।

अन्वयः—अपवर्जितविप्लवे शुचौ हृदयग्राहिणि मंगलास्पदे तव गिरां विस्तरे मतिः आदर्शे इव विमला दृश्यते ।।२६।।

अपवर्जितेति । विप्लवः प्रमाणवाधः । अन्यत्र वाह्यमलसंक्रमः । सोऽपवर्जितो यस्य तस्मिन्नवर्जितविप्लवे । शुचौ सौशब्द्यं लोहशुद्धिश्च शुचित्वम् । तद्वतीत्यर्थः । अतएव हृदयग्राहिणि मनोरमे मंगलास्पदे । एकत्र हितार्थप्रतिपादकत्वादन्यत्र मंगलवस्तुत्वाच्च श्रेयस्करे । "रोचनं चन्दनं हेम मृदंगं दर्पणं मणिम् । गुरूनग्निं तथा सूर्यं प्रातः पश्येत् सदा बुधैः ।" इति पुराणवचनात् । तव गिरां विस्तरे वाक्प्रपंचे । "प्रथमे वावशब्दे" इति घञ् प्रतिषेधात् "ऋदोरप् इत्यप्' । "विस्तारो विग्रहो व्यासः स च शब्दस्य विस्तरः" इत्यमरः । मतिस्त्वबुद्धिरादर्शे दर्पण इव । "दर्पणे मुकुरादर्शौ" इत्यमरः । विमला विशदाऽभिदृश्यते । वाग्वैशद्यादेव मतिवैशद्यमनुमीयते तत्पूर्वकत्वात्तस्येत्यर्थः ।।२६।।

हिन्दी अनुवाद—प्रमाणयुक्त, पवित्र, हृदयग्राहिणी, मंगलकारिणी तुम्हारी वाणी विस्तार में निर्मल, शुद्ध, मनोहर तथा कल्याणकारी दर्पण में (आकृति) के समान (तुम्हारी) बुद्धि स्पष्ट दिखाई देती है ।

English Translation—Your purity of purpose is seen in the long range of your speech which is chaste, free from strange thoughts, captivating to the hearts and wholesome, just as (face) is clearly visible in a polished mirror, free

from dirt, charming to the heart and leading to auspiciousness.

संस्कृतभावार्थः—प्रथा निर्मले शुद्धधातुर्निर्मिते हृदयग्राहिणि, कल्याणकरे च दर्पणे स्वाननं सुस्पष्टं सरलतयाऽवलोक्यते तथैव प्रमाणयुक्ते शब्दसौष्ठवयुते मनोरमे मंगलकरे च वाक्प्रपंचे तव बुद्धिस्वरूपं सम्यक् दृश्यते। ते वाग्वैशद्यादेव मतिवैशद्यमनुमीयते इति युधिष्ठिरः प्रथमतः भीमोक्तेः प्रशंसां करोति।

व्याख्या—युधिष्ठिर अत्यन्त नीतिकुशल थे तथा उन्हें परिस्थिति एवं काल का सम्यक् ज्ञान था। भीम की पहले प्रशंसा कर उनके हृदय में अपनी बात सुनने के लिए स्थान बना लिया। फिर उनकी बात का खण्डन करके समयानुकूल अपनी बात का प्रतिपादन किया। उन्होंने समझाया कि समयावधि की प्रतीक्षा करने के बाद ही युद्ध छेड़ना श्रेयस्कर होगा।

टिप्पणी—**अपवर्जितविप्लवे**—अप + वृज् + णिच् (चुरादि) + क्त कर्मणि—अपवर्जितः; वि+ प्लु + अप् भावे-विप्लवः—प्रमाणबाधा से रहित (वाक्पक्ष में) धूलरहित (दर्पणपक्ष में) 'विप्लवः मलसंक्रमः' मल्लिनाथ। अपवर्जितः विप्लवः अस्य (बहुव्रीहि) तस्मिन्, 'विस्तरे' और 'आदर्शे' का विशेषण है। 'प्रमाणबाधः किल विप्लवः स्याद्ययुक्तिशून्यं वचनं मतं तत्' इति कोशः। **शुचौ**—शब्दसौष्ठव से युक्त (वाक्पक्ष में) धातु की शुद्धता (दर्पणपक्ष में)। **हृदयग्राहिणि**—हृदयं साधु गृह्णातीति हृदय+ग्रह्+णिनि कर्त्तरि (साधुकारिणि) तस्मिन्। 'विस्तरे' तथा 'आदर्शे' दोनों का विशेषण है। **मंगलास्पदे**—आपद्यते अस्मिन्निति आ+पद्+घञ् अधिकरणे (सुडागमश्च) मंगलस्य आस्पदम् (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मिन्। 'विस्तरे' तथा 'आदर्शे' दोनों का विशेषण है। 'आस्पदं प्रतिष्ठायाम्'—जब आस्पद प्रतिष्ठा (निवासस्थान) के अर्थ में आता है तो सुट् का आगम होता है—इस सूत्र से 'आस्पद' में सुट् का आगम हुआ है। 'शृंगारः शुचिरुज्वलः' 'प्रतिष्ठा कृतामास्पदम्' 'स्वःश्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मगलं शुभम्' इत्यमरः। **तव गिरां विस्तरे**—तव वाक्प्रपंचे। वि+स्त्+अप् भावे विस्तरः तस्मिन्। 'विस्तारो विग्रहोव्यासः

स च शब्दस्य विस्तरः इत्यमरः । 'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती' इत्यमरः । **गिराम्**—गृ+क्विप् भावे—गीः तासाम् षष्ठी शेषे इसका संबंध 'विस्तरे' से है । **विस्तरे**—वि+ स्तृ+ अप् भावे—विस्तरः तस्मिन् । यहाँ विस्तरे का अर्थ है 'शब्द का विस्तार' अतः ऋदोरप् सूत्र से जिसका अर्थ है ऋकारान्त और उकारान्त धातुओं से अप् प्रत्यय लगता है, घञ् प्रत्यय न लगकर अप् प्रत्यय लगा है । **मतिः**—मन्+क्तिन् भावे 'अभिदृश्यते' का कर्त्ता है । **आदर्शे**—आ सम्यक् दृश्यते अस्मिन् इति आ+दृश्+घञ् अधिकरणे तस्मिन् । **अभिदृश्यते**—अभि+दृश्+लट् ते कर्मणि इसका कर्त्ता है 'मतिः ।' 'रोचनं चन्दनं हेमं मृदंगं दर्पणं मणिम् गुरुमग्निं तथा सूर्यं प्रातः पश्येत्सदा बुधः' इति पुराणवचनम् अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि नित्य प्रातःकाल रोचन, चन्दन, सुवर्ण, मृदंग, दर्पण, मणि, गुरु, अग्नि तथा सूर्य का दर्शन करे । ये कल्याणकारी होते हैं । इस श्लोक में श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा अलंकार है ।

(ग्रह्—गृह्णाति—गृह्णीते, गृह्णातु—गृह्णीताम्, अगृह्णात्—अगृह्णीत, जग्राह—जगृहे, अग्रहीत्—अग्रहीष्ट ।)

(दृश्—पश्यति, पश्यतु, अपश्यत्, ददर्श, अदर्शत्—अद्राक्षीत्, द्रक्ष्यति ।)

वाच्यपरिवर्तनः—तव विमलां मतिं आदर्शे इव अभिपश्यामि ।

अथ युग्मेनाह—

तुम्हारी वाणी पूर्ण है—इस बात का दो श्लोकों से कथन करते हैं—

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ।।२७।।

अन्वयः—पदैः स्फुटता न अपाकृता, अर्थगौरवं च न स्वीकृतम् (इति) न, गिरां पृथगर्थता रचिता, क्वचित् सामर्थ्यं न अपोहितम् ।

स्फुटतेति । उपपत्तिरिति च । पदैः सुप्तिङन्तशब्दैः स्फुटता विशदार्थता नापाकृता न त्यक्ता अर्थगौरवमर्थभूयस्त्वं च न स्वीकृतम् । स्वीकृतमेवेत्यर्थः ।

वैशद्यप्रसक्तार्थगौरवाभावनिवर्तनार्थं नञ् द्वयम् । "सम्भाव्यनिषेधनिवर्तने द्वौ प्रतिषेधौ" इति वामनः। गिरां पदानामवान्तरवाक्यानां च पृथगर्थता भिन्नार्थता । अपुनरुक्तार्थतातेति यावत् । रचिता कृता । तथा क्वचिदपि सामर्थ्यं गिरामन्योन्यसाकांक्षत्वं नापोहितं न वर्जितम् । अन्यथा दशदाडिमादिशब्दवदेकवाक्यता न स्यात् । यथाहुः—"अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साऽपेक्षं चेद्विभागे स्यात्" इति । नन्वर्थगौरवमित्यत्र कथं षष्ठी समासः । "पूरणगुण—" इत्यादिना प्रतिषेधात् । नैष दोषः । ये शुक्लादयः शब्दः गुणे गुणिनि च वर्तन्ते । यथा पटस्य शौक्ल्यं शुक्लः पट इति च तेषामेवात्र निषेधात् । ये पुनः स्वतो गुणमात्रवचना यथा गौरवं प्राधान्यं रसो गन्धः स्पर्श इत्येवमादयः तेषामनिषेधात् । तथा 'तत्स्थैश्च गुणैः षष्ठी समस्यते' इति वचनाद् बहुलमभियुक्तप्रयोगदर्शनाच्च । बलाकायाः शौक्ल्यमित्यादौ तु भाष्यकारवचनादसमासः । अतएवाह वामनः—"पत्रपोतिमादिषु गुणवचनसमासो वालिश्यात्" इति ।।२७।।

हिन्दी अनुवाद—पदों में स्पष्टता नहीं दूर की गई, अर्थ के गाम्भीर्य को नहीं स्वीकार किया गया ऐसा नहीं अर्थात् शब्दों का अर्थ स्पष्ट है तथा अर्थ गौरवपूर्ण है। वाणी में अर्थ की विभिन्नता रखी गई (जिससे पुनरुक्ति दोष न आ जाय) तथा कहीं भी सामर्थ्य (शब्दों की पारस्परिक साकांक्षता) का परित्याग नहीं किया गया ।

English Translation—Perspecrity has not been abandoned by the words, it is not that the depth of meaning has not been achieved, individual sense has been conveyed from speech, and interdependence has nowhere been sacrificed.

संस्कृतभावार्थ—हे भीम ! तव वाचि अर्थवैशद्यम् अर्थगाम्भीर्यमपुनरुक्तत्वं शब्दानां साकांक्षत्वं चेति सर्वे गुणाः सम्यगवस्थिताः सन्ति । तव वचने कोऽपि दोषो न विद्यते। सर्वविधपूर्णाऽन्यत्र दुर्लभा ते वाणीति भीमं प्रशंसयन् युधिष्ठरः जगाद ।

व्याख्या—युधिष्ठिर भीम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि तुम्हारी वाणी में शब्द-विन्यास बड़ी चतुरता से किये गये हैं तथा प्रत्येक शब्द का अर्थ स्पष्ट है। इसमें पुनरुक्तिदोष भी नहीं है। प्रत्येक शब्द एवं वाक्य परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध है। अर्थगाम्भीर्य, अपुनरुक्तत्व, सरलता एवं साकाङ्क्षत्वादि गुण तुम्हारे वक्तव्य में स्पष्ट लक्षित होते हैं। विद्वानों का कथन है इस श्लोक में प्रयुक्त 'अर्थगौरवम्' शब्द के कारण ही 'भारवेरर्थ-गौरवम्' की प्रसिद्धि हो चली। वास्तव में यह श्लोक भारवि की शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

टिप्पणी—**पदैः**—सुबन्ततिङन्तशब्दैः। पाणिनि का सूत्र है 'सुप्तिङन्तं पदम्' अर्थात् सुबन्त (सु, औ, जस्, आदि विभक्तियाँ) और तिङन्त (क्रिया के साथ आनेवाली तिप्, तस्, झि आदि) शब्द पद कहलाते हैं। 'अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया'। **स्फुटता**—स्पष्ट तस्य भावः इति स्फुट+तल् भावे स्त्रियाम् उक्ते कर्मणि प्रथमा। **न अपाकृता**—अप+आ+कृ+क्त कर्मणि स्त्रियाम् —अपाकृता (नहीं दूर की गई)। **अर्थगौरवञ्च**—गुरोः भावः इति गुरु+अण् —गौरव, अर्थस्य गौरवम् (षष्ठी तत्पुरुष)। उक्ते कर्मणि प्रथमा। अर्थगौरव में षष्ठी समास कैसे हुआ क्योंकि "पूरणगुणसुहितार्थ सदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन" सूत्र से षष्ठीसमास का प्रतिषेध होता है। (सूत्रार्थ पूरणार्थ, गुणार्थ, तृप्त्यर्थ) शतृशानजन्त, अव्यय, तव्यान्त तथा समानाधिकरण शब्दों के योग में षष्ठी-समास नहीं होता। यहाँ गौरव गुणार्थ है तब समास कैसे होगा? इसको अप-वादरूप में ग्रहण करना चाहिए क्योंकि 'तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्' सूत्र के आधार पर पाणिनि ने स्वयं समस्त पद का प्रयोग किया। अतः अर्थगौरव को अपवाद समझना चाहिए। 'बहुलमभियुक्तप्रयोगदर्शनाच्च' के द्वारा मल्लि-नाथ ने अपना मत व्यक्त किया। मल्लिनाथ ने अपना दूसरा मत इस वार्त्तिक 'तत्स्थैश्च गुणैः षष्ठी समस्यते' से बतलाया है। उनके कथनानुसार जो शब्द गुणवाची एवं गुणीवाची भी हैं उन्हीं शब्दों के साथ यह निषेध लागू होता है जैसे 'शुक्ल' 'पटस्य शुक्लः' में शुक्ल 'सफेदी' का बोधक है अतः यहाँ शुक्ल शब्द गुणवाचक है। यदि 'शुक्लः पटः' प्रयोग करें तो अर्थ होगा 'सफेद कपड़ा'। यहाँ 'शुक्ल' विशेषण अर्थात् गुणीवाचक है। केवल ऐसे शब्दों के योग में ही

यह निषेध लागू होता है। गुणमात्र बोधक शब्दों के साथ यह निषेध नहीं लगता। मल्लिनाथ का कथन कि 'तत्स्थैश्च गुणैः षष्ठी समस्यते' वार्तिक से गौरव और प्राधान्य के साथ समास हो सकता है, भ्रान्ति मूलक है। वास्तव में ऐसा नहीं होता। इसके द्वारा गुण; जैसे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श के लिए अपवाद हो जाता है। गौरव और प्राधान्य केवल गुण नहीं हैं ये द्रव्य के भाव हैं अतः इनके संबंध में निषेध लागू है। (ये शुक्लादयः शब्दाः गुणे गुणिनि च वर्तन्ते। यथा पटस्य शौक्ल्यं शुक्लः पट इति च तेषामेवात्र निषेधात् ये पुनः स्वतो-गुणमात्र वचना यथा गौरवं, प्राधान्यं, रसो गन्धः स्पर्श इत्येवमादयः तेषाम-निषधात्) इस सम्बन्ध में श्री शारदारंजन रे ने मनोरमा से निम्नलिखित उद्धत किया है—

"सूत्रे गुणाय इत्यनेन केवलगुणस्य गुणोपसर्जनद्रव्यस्य च प्रतिपादको-गृह्यते·····काकस्य काष्ण्यं ब्राह्मणस्य शुक्ला इति द्वेधा भाष्ये उदाहरणात् ···चन्दनगन्ध इत्यादौ तु निषेधे प्राप्ते तत्स्थैश्च गुणैः इति वचनेन समासा प्रतिप्रसूयते"।

अब यह द्रष्टव्य है कि बलाकायाः शौक्लाम् में समास नहीं हो सकत क्योंकि 'पूरणगुणासुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन' सूत्र इसका निषेध करता है। पर महाभाष्यकार ने दोनों ही प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं—काकस्य काष्ण्यं—गुणवाची, ब्राह्मणस्य शुक्लाः—गुणोपसर्जनद्रव्यवाची। 'गौरव' शब्द गुणोपर्जनद्रव्यवाची है। यह 'गुरु' द्रव्य के गुण को बताता है। पर 'तत्स्थैः गुणैः' इत्यादि वार्तिक से रस, गन्ध, स्पर्श आदि शब्दों के शुद्ध गुणवाची होने पर ही समास विहित होता है।

न स्वीकृतम्—न स्वमस्वं, अस्वं स्वं कृतमिति स्व+च्वि (अभूततद्भावे) +कृ+क्त कर्मणि स्वीकृतम् गतितत्पुरुष। 'अर्चादिश्च्वडाचश्च' सूत्र से गतिसंज्ञक होने के कारण 'स्त्री' गतिसंज्ञक हुआ। फिर 'कुगतिप्रादयः'—सूत्र से, कु, गति और प्रादि वास्तव में तत्पुरुष समास में पहले प्रयुक्त होते ह—गति होने से प्रथम आवेगा और गतितत्पुरुष समास बनेगा। **न गिरां**—शेषे षष्ठी। **पृथगर्थता**—पुनरुक्तिहीनता, पृथक् अर्थ एषाम् (बहुव्रीहिः ह,

सामान्ये नपुंसकम् । पृथगर्थाणां भावः इति पृथगर्थता (पृथगर्थ+तल् स्त्रियाम्) उक्ते कर्मणि प्रथमा । **रचिता**—रच्+णिच्+क्त कर्मणि स्त्रियाम् । **क्वचित्**—कस्मिन्नपि पदे । **सामर्थ्यं**—सम्बद्धः अर्थः एषां समर्थाः (बहुव्रीहि) समर्थानां भावः इति समर्थः+ष्यञ् सामर्थ्यम् उक्ते कर्मणि प्रथमा । (शब्दानां परस्पर साकाङ्क्षता) । **न अपोहितम्**—अप्+ऊह्+क्त कर्मणि । न गोपितो । द्रष्टव्य—'स हि विघ्नानपोहति' शाकुन्तलम् ।

'न किंचिदपिकुर्वाणो सुखैर्दुःखान्यपोहति'—उत्तररामचरितम् ।

वाच्यपरिवर्तनः—पदानि स्फुटतां न अपाकृतवन्ति । भवान् अर्थगौरवं न स्वीकृतवान् । गिरां पृथगर्थतां न रचितवान् । क्वचित् सामर्थ्यं न अपोहितवान् ।

उपपत्तिरुदाहृता बलादनुमानेन न चागमः क्षतः ।
इदमीदृगनीदृगाशयः प्रसभं वक्तुमुपक्रमेत कः ॥२८॥

अन्वयः—बलात् उपपत्तिः उदाहृता । अनुमानेन च आगमः न क्षतः । ईदृक् इदम् अनीदृगाशयः कः प्रसभं वक्तुम् उपक्रमेत ।

उपपत्तिरिति । किञ्च बलात् बलमाश्रित्य । कर्मणि ल्यब्लोपे पञ्चमी वक्तव्या । उपपत्तिर्युक्तिरुदाहृता । पराक्रमपक्ष एवं श्रेयानिति युक्तिरुक्तेत्यर्थः । उचितं चैतन्महावीरस्येति भावः । तथानुमानेन युक्त्वाऽऽगमः शास्त्रं च न क्षतो न हतः । किन्त्वागमाविरुद्धमेवोक्तम् । अन्यथा तद्विरोधादनुमानस्यैव प्रामाण्यभङ्गादिति भावः । ईदृगित्थं क्षात्रयुक्तमिदं वचनमविद्यमान ईदृगाशय इत्थं क्षात्रयुक्ताभिप्रायो यस्य सोऽनीदृगाशयः । "अभिप्रायश्छन्द आशयः" इत्यमरः । कः प्रसभं हठाद्वक्तुमुपक्रमेत । न कोऽपीत्यर्थः । इत्थं वक्तुमुपक्रमितैव नास्ति, वक्ता तु दूरापास्त एवेति भावः । केचिदेतच्छ्लोकत्रयं निन्दापरत्वेनापि योजयन्ति । तदसत् । हितोपदेशमात्रतत्परस्यातिवत्सलस्य राज्ञो मत्सरिण इव महावीरे भ्रातरि विधेये सर्वानर्थमूलभूतनिन्दातात्पर्यकल्पनाऽनौचित्यादिति ॥२८॥

हिन्दी अनुवाद—(हे भीम तुमने) अपने बल का आश्रय लेकर (अथवा युद्ध के पक्ष का समर्थन कर) के युक्तियुक्त बात कही; अनुमान से शास्त्र की

मर्यादा खंडित नहीं की । इससे भिन्न आशयवाला कौन हठपूर्वक ऐसा कहने में प्रवृत्त होगा ? (अर्थात् कोई ऐसा वचन नहीं कह सकता) ।

× **English Translation**—Reasons have been given by you resorting to your own heroic spirit, the Shastras have not been violated by inference. Who, that has not such a purpose would begin to speak thus with force.

संस्कृतभावार्थः—'यद्यपि त्वं स्वबलमाश्रयन् सकलं वचनमविचार्यैवाकथयः तथापि तदखिलं युक्तिप्रतिपादितं शास्त्रसम्मतञ्च । एकेनापि वाक्ये न शास्त्र-विरोधो न दृश्यते । अतस्तव वाक्प्रागल्भ्यमद्वितीयम् । इदं संयतं वचो वक्तुं त्वदन्यो न कोऽपि समर्थो भवतीति युधिष्ठिरतात्पर्यम् ।

व्याख्या—युधिष्ठिर भीम से कहते हैं कि यद्यपि तुम बिना सोचे-समझे स्वबाहुबल के भरोसे युद्ध करने की बात करते हो, तथापि तुम्हारी बात शास्त्र-सम्मत, संयत एवं युक्तिसंगत है । कोई दूसरा व्यक्ति इस आशय की बात इस ढंग से नहीं कर सकेगा । इस प्रकार भीम की प्रशंसा करके उन्हें अपनी बात सुनने के लिए महाराज युधिष्ठिर प्रेरित करते हैं ।

टिप्पणी—**बलात्**—ल्यब्लोपे कर्मणि पञ्चमी । बलमाश्रित्य के स्थान पर 'ल्यप्' का प्रयोग न कर 'बल' में पंचमी करके बलात् कर दिया गया है । **उपपत्तिः**—युक्तिः उप+पद्+क्तिन् भावे उक्ते कर्मणि प्रथमा । 'उपपत्तिस्तु युक्तिः स्यात् कारणप्रतिपादनम् ।' **उदाहृता**—कथिता । उद्+आ+हृ+क्त स्त्रियाम् । **अनुमानेन च**—तर्केण । अनु+मा+ल्युट् भावे तेन अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया । **आगमः**—आ सम्यक् गम्यते अनेनेति आ+गम् करणे शास्त्रम् 'आगमः शास्त्र आगतौ' इति मेदिनी । **न क्षतः**—न वाप्तिः । शास्त्रानुकूलम् एव वचनमुक्तं त्वयेति भावः । **अनीदृगाशयः**—आ+शी+अच् भावे—आशयः 'अभिप्रायश्छन्द आशयः' इत्यमरः । न ईदृक् अनीदृक् नञ् तत्पुरुष अनीदृक् आशयः अस्य । बहुव्रीहि; 'कः' का विशेषण है । ईदृक्—इदमिव पश्यन्ति जनाः एतत् तदेतत् इदमिव दृश्यमानम् इदमिव आत्मानं पश्यति इति इदम्+दृश्+क्विन् कर्मकर्त्तरि—ईदृक् । त्यदादिषु दृशोऽनालोचने

कञ् च' सूत्र से क्विन् प्रत्यय लगा है। 'इदं किमोरीश्की' सूत्र से इदम् के स्थान पर 'ईश्' हो गया है। इदं—'वक्तुम्' का कर्म है। प्रसभं—सहसा। प्रगता सभा विचारः अस्मात् इति प्रसभम् यथा तथा अथवा सभायाः प्रगतं प्रसभं। प्रसभेन भी प्रयुक्त होता है यथा 'परितः प्रसभेन नीयमानः' शिशुपाल वध। 'प्रसभं तु बलात्कारो हठोऽथ स्खलितं छलम्' इत्यमरः। वक्तुं—कथयितुं। उपक्रमेत—उप+क्रम+लिङ् ईत। 'प्रोपाभ्यांसमर्थाभ्यां' सूत्र से उपपूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपद में प्रयुक्त होती है।

(क्रम्—क्रामति—क्राम्यति, क्रमते, चक्राम, चक्रमे, क्रमिष्यति—क्रमिष्यते, अक्रमीत—अक्रंस्त।)

वाच्यपरिवर्तनः—उपपत्तिं उदाहृतवान् अनुमानेन चागमं न क्षतवान्। अनीदृगाशयेन केन ईदृक् वचनं वक्तुमुपक्रम्यते।

यदि साधूक्तं तर्हि तथैव क्रियतामित्याशंक्याह—

यदि भीम की उक्ति ठीक है तो महाराज युधिष्ठिर को तदनुकूल ही करना चाहिए—इस पर कहते हैं—

अवतृप्ततया तथापि मे हृदयं निर्णयमेव धावति।
अवसाययितुं क्षमाः सुखं न विधेयेषु विशेषसंपदः ॥२६॥

अन्वयः—तथापि मे हृदयम् अवितृप्ततया निर्णयम् एव धावति। विधेयेषु विशेषसम्पदः सुखम् अवसाययितुं न क्षमाः।

अवितृप्ततयेति। तथापि त्वया सम्यङ्निर्णीतेऽपि मे हृदयमवितृप्ततया-ऽसन्तुष्टतया। अद्यापि संशयगतत्वेनेत्यर्थः। निर्णयमेव धावत्यनुसरति। अपेक्षत इति यावत्। अद्यापि निर्णयस्यानुदयादिति भावः। निर्णयानुदये हेतुमाह—अवेति। विधेयेषु सन्धिविग्रहादिकर्त्तव्यार्थेषु या विशेषसम्पदोऽवान्तरभेदभूमानस्तः सुखमक्लेशेनावसाययितुम् पुरुषान्प्रत्यानुकूल्येन स्वस्वरूपं स्वयमेव शीघ्रं प्रत्याययितुमित्यर्थः। स्थतेर्ण्यन्तादणि कर्मतृकात्तुमुन्। णेरणाविति सूत्रस्यायं विषयः। क्षमन्त इति क्षमाः। पचाद्यच्। शक्ता न

भवन्ति 'क्षमं शक्ते हिते त्रिषु' इत्यमरः । विधेयमात्रस्य सुगमत्वेऽपि तद्विशेषाणां सौक्ष्म्याद् बाहुल्याच्च दुर्ज्ञेयत्वादद्यापि निर्णयाकाङ्क्षेति तात्पर्यार्थः । अत्र निर्णयधावनं प्रत्युत्तरवाक्यार्थस्य हेत्वाभिधानाद्वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिंगमलंकारः । तदुक्तम्—'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगमुदाहृतम् ।' इति ॥२६॥

हिन्दी अनुवाद—तो भी मेरा हृदय असन्तोष के कारण निर्णय को ही दौड़ता है । करने योग्य कामों में विशेष सम्पत्तियाँ आसानी से अपने स्वरूप का बोध कराने में समर्थ नहीं होतीं ।

English Translation—Yet my mind, due to absence of complete satisfaction, runs after decision alone. It is not possible to understand the various details of lines of action in the matters to be undertaken.

संस्कृतभावार्थः—युधिष्ठिरः कथयति यत्तव वाचि यद्यपि सर्वे गुणाः सन्ति तथापि मे मनसि तृप्तिर्न जायते । साम्प्रतमपि निर्णयं नाधिगच्छामि । यतः सन्धिविग्रहादि कर्त्तव्याकर्त्तव्येषु अवान्तरभेदाः दुर्ज्ञेयाः । अतः स्वस्य परस्य च बलाबलं पर्यालोच्यैव युद्धं कर्त्तुं शक्यते ।

व्याख्या—महाराज युधिष्ठिर भीम से कहते हैं कि यद्यपि तुम्हारी वाणी सर्वतः पूर्ण एवं निर्दोष है तथापि मैं उससे पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं हूँ क्योंकि राजनीति सम्बन्धी विषयों में अनेक विकल्प होते हैं । अतः निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि सभी विकल्पों पर सम्यक् रीति से विचार कर लिया गया है । उसमें किसी प्रकार की त्रुटि सम्भव नहीं जो निर्णय ले लिया गया है वही अन्तिम है उसमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं । वास्तव में यदि कोई नई सूझ आ जाय तो उसके प्रकाश में अपना निश्चय बदल देना ही श्रेयस्कर है अतः मैं अब भी निर्णय की अपेक्षा करता हूँ ।

टिप्पणी—**तथापि**—त्वया सम्यङ्निर्णीतेऽपि । **मे** 'शेषे षष्ठी' इसका संबंध 'हृदयम्' से है । 'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः । **अवितृप्ततया**—तृप्+क्त कर्त्तरि—तृप्तः विशेषेण तृप्तः वितृप्तः । प्रादितत्पुरुष न वितृप्तः—अवितृप्ता नञ् तत्पुरुष । अवितृप्तस्य भावः+ति अवितृप्त+तल्—

अवितृप्तता तया हेतो तृतीया। **निर्णयम्**—निर्+नी+अच् भावे निर्णयः तम्। कर्म है धावति का। 'उपसर्गात् असमासेऽपि णोपदेशस्य' से नी का ण आदेश हो गया है। **धावति**—धाव+लट् तिप्+अपेक्षते। द्रष्टव्य—'धावति पश्चादसंस्थितं चेतः' शाकुन्तल १—'धाव् धातु सामान्यतः अकर्मक है पर 'धातूनामनेकार्थत्वात्' से इसका अर्थ बदल जाने से यह सकर्मक हो जाती है। यहाँ 'धाव्' का अर्थ है 'ढूंढ़ना'। अतः सकर्मक हो गई है। 'धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात्। प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया।' अर्थात् दूसरे अर्थ में प्रयुक्त होने से सकर्मक धातु अकर्मक हो जाती है वैसे ही अकर्मक भी सकर्मक हो सकती है। **विधेयेषु**—वि+धा+यत् कर्मणि—विधेयानि तेषु विषयाधिकरणे सप्तमी। **विशेषसम्पदः**—वि+शिष्+घञ् भावे—विशेषः (अवान्तरभेद) तेषां सम्पदः (षष्ठी तत्पुरुष) सुखम्—क्रिया-विशेषण। अवसाययितुं की विशेषता बतलाता है। **अवसाययितुम्**—अव+सो+णिच्+तुमुन्। मल्लिनाथ के अनुसार 'अवसान' का अर्थ 'प्रत्यायन' होता है। इसका साधारण अर्थ 'अवरोध' या 'समाप्ति' है किन्तु 'धातूनामनेकार्थत्वात्' नियम से प्रत्यायन अर्थ भी संभव है। द्रष्टव्य—'अर्थं विधिमवसाध्य शास्त्रदृष्टम्' (रघुवंश ५।७६) तथा 'औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा' (शाकु०५।६)। मल्लिनाथ के अनुसार 'णेरणौ यत्कर्मणो चेत् सकर्त्ता अनाध्याने' सूत्र का यहाँ प्रयोग किया गया है। सूत्र का अर्थ है कि यदि अण्यंत में जो क्रिया कही गई है वही ण्यन्त में भी कही जाय, अण्यन्त में जो कर्म हो वही ण्यन्त में कर्त्ता हो तो ण्यन्त धातु के आत्मनेपद होता है किन्तु 'आध्यान' स्मरण अर्थ होने पर नुद्धे यहाँ तात्पर्य है कि ण्यन्त अणिकर्मकर्तृक 'सो' धातु से 'तुमुन्' प्रत्यय किया गया है। दूसरे अर्थ में 'सो' का साधारण अर्थ 'समाप्त करना' ही ग्रहण किया गया है और 'क्षमा' का अर्थ 'योग्य' किया गया। इस श्लोक में 'मे हृदयं निर्णयमेव धावति' का कारण 'विशेष सम्पदः विधेयेषु अवसाययितुं न क्षमाः' हो रहा है अतः वाक्यार्थहेतुक 'काव्यलिङ्ग अलंकार' है। तल्लक्षणं तूक्तं काव्यप्रकाशे "काव्यलिंगं हेतोर्वाक्यपदार्थता" धाव्—धावति, धावते, अधावत्, अधावत, दधाव—दधावे, अधावीत्—अधाविष्ट, धाविष्यति—धाविष्यते ॥२६॥

वाच्यपरिवर्तनः—तथापि मे हृदयेन अवितृप्ततया निर्णय एव धाव्यते। विधेयेषु विशेषसम्पदिमः सुखम् अवसाययितुम् न क्षमाभिः भूयते ॥२६॥

वस्तुविशेषावधारणमन्तरेणैव प्रवृत्तिरित्याशंक्याह—

विधेयवस्तु के अवांतर भेदों को बिना भली-भाँति समझे ही कार्य में प्रवृत्ति हो सकती है ऐसी शंका करके कहते हैं :—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥३०॥

अन्वयः—सहसा क्रियां न विदधीत। अविवेकः परं आपदां पदम्। हि गुणलुब्धाः सम्पदः विमृश्यकारिणं स्वयमेव वृणते।

सहसेति। क्रियत इति क्रियां कार्यं सहसा। अविमृश्येत्यर्थः। "सहसेत्याकस्मिकविमर्शयोः" इति गणव्याख्याने। स्वरादिपाठादव्ययम्। न विदधीत न कुर्वीत। कुतः। अविवेकोऽविमृश्यकारित्वं परमत्यन्तमापदां पदं स्थानम्। कारणमित्यर्थः। व्यतिरेकेणोक्तमर्थमन्वयेनाह—वृणत इति। गुणलुब्धा गुणगृध्नवः इति स्वयंवरहेतू। सम्पदः श्रियः। विमृश्य करोतीति विमृश्यकारी। 'उपपदमतिङ्' इति समासः। तं स्वयमेव वृणते भजते हि। 'वृङ् संभक्तौ' धातुः। तस्माद्विमृश्यैव प्रवर्तितव्यमित्यर्थः। अत्र सहसा विधान-निषेधलब्धविमृश्यकारित्वरूपकारणस्यापद्रूपव्यतिरेककार्येण समर्थनाद्वैधर्म्येणार्थान्तरन्यासः। द्वितीयार्धेन च स एव साधर्म्येणेति ज्ञेयम् ॥३०॥

हिन्दी अनुवाद—सहसा (बिना सोचे-समझे) कोई काम न करना चाहिए (क्योंकि) अविवेक (बिना विचारे काम करना) आपत्तियों का प्रधान स्थान है। गुणलोभी सम्पत्तियाँ स्वयं ही सोच-विचार कर काम करने वाले को वरण करती हैं।

English Translation—One should not adopt any measure precipitately. Thoughtlessness is an object of calamities. Fortunes, attracted by merits choose of itself the man who acts with thoughtfulness.

संस्कृतभावार्थः—सम्यग्विचार्यैव कार्यं कुर्यात्। यश्च विचारं विना कर्म विदधाति स पश्चात् क्लेशमनुतापञ्चाधिगच्छति। यश्च पूर्वापरं विमृश्य कर्मणि प्रवर्त्तते स सदैव सुखभाजनं भवति। तस्माद्विमृश्यैव प्रवर्त्तितव्यमिति विशदार्थः।

व्याख्या—सरल है।

टिप्पणी—सहसा—'विदधीत' की विशेषता बतलाता है। **विदधीत**—वि+धा विधिलिङ कुर्यात्। **न क्रियाम्**—कृ+भावे श स्त्रियाम् ताम्। कर्म है 'विदधीत' का। **अविवेकः**—वि+विच्+घञ् भावे—विवेकः, न विवेकः इति अविवेकः (नञ् तत्पुरुष) 'भवति' का कर्त्ता है। **परं**—प्रधानं 'पदम्' का विशेषण है। **आपदां**—षष्ठी शेषे इसका सम्बन्ध 'पदम्' से है। **पदम्**—स्थानम्। 'परोदूरान्यश्रेष्ठवस्तुषु' इति हेमः। 'पदं व्यवसितत्राण-स्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः। **हि गुणलुब्धाः**—लुभ्+क्त कर्त्तरि। गुण-लौलुपा। 'गृध्नस्तु गर्धनः'। 'लुब्धोऽभिलाषुकस्तृष्णक् समौ लोलुपलोलुभौ' इत्यमरः। **सम्पदः**—सम्पद्यन्ते इति सम्+पद्+क्विप् कर्त्तरि अथवा सम्पद्यन्ते आभिः इति क्विप् करणे—सम्पदः। विमृश्यकारिणम्—विमृश्य करोतीति विमृश्य+कृ+णिनि कर्त्तरि साधुकारिणि तम्। 'विमृश्य' और 'विमृष्य' दोनों ही शुद्ध हैं किंतु 'विमृश्य' अधिक प्रचलित है। द्रष्टव्य—'सविमर्शं परिक्रम्य' शाकु० चतुर्थ०। 'रामप्रवासे व्यमृशन् न दोषम्' भट्टि। 'तत्किमार्यं विमृशति' उत्तर० षष्ठ०। 'वितर्कः स्यात् उन्नयनं परामर्शो विमर्शनम्' हेमचन्द्रः। **स्वयमेव**—अव्यय 'आत्मना' के अर्थ में 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इति तृतीया। **वृणते**—वृ+लट्। श्लोक के पूर्वार्ध में 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' से सहसा-विधान का निषेध करके विमृश्यकारित्वरूप कारण का विपत्तिरूप विरुद्ध कार्य से समर्थन किया गया है अतः वैधर्म्येण अर्थान्तरन्यास है तथा उत्तरार्ध में साधर्म्य से कार्य द्वारा कारण समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है। 'वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः' श्लोक के इस उत्तरार्ध का किरात के तृतीय सर्ग के ४३ वें श्लोक के उत्तरार्ध से तुलना कीजिए :—

निरुत्सुकानामभियोग-भाजां
समुत्सुकेवांकमुपैति सिद्धिः।

(वृ—वृणीते, वव्रे, अवरिष्ट—अवृत)

वाच्यपरिवर्तनः—सहसा क्रिया न विधीयेत। अविवेकेन परमापदां पदेन भूयते। हि गुणलुब्धाभिः सम्पद्भिः स्वयमेव विमृश्यकारी व्रियते।

ननु साहसिकस्यापि फलसिद्धिर्दृश्यते एव, तत् किं विवेकेन इत्यत्राह—

सहसा कार्य करने वाले का भी कार्य सिद्ध हो जाता है तो विवेक से क्या लाभ। इस सम्बन्ध में कहते हैं :—

अभिवर्षति योऽनुपालयन् विधिबीजानि विवेकवारिणा।
स सदा फलशालिनीं क्रियां शरदं लोक इवाधितिष्ठति ॥३१॥

अन्वयः—यः विवेकवारिणा विधिबीजानि अनुपालयन् अभिवर्षति। सः सदा फलशालिनीं क्रियां लोकः शरदम् इव अधितिष्ठति।

अभीति। यः पुमान् विधीयन्त इति विधयः कृत्य वस्तूनि बीजानीवेत्युपमितसमासः। शरदं लोक इवेति वाच्यगतोपमानुसारात्। तानि विधिबीजानि विवेको वारीव तेन विवेकवारिणा पूर्ववत्समासः। अनुपालयन्प्रतीक्षमाणः संरक्षन्नभिवर्षति सिञ्चति। स पुमान्। फलं साधननिष्पाद्योऽर्थः सस्यं च "सस्ये हेतुकृते फलम्" इत्युभयत्राप्यमरः। तच्छालिनीं क्रियां कर्म लोको जनः। 'लोकस्तु भुवने जने" इत्यमरः। शरदमिव सदा नित्यमधितिष्ठति सदा क्रियाफलं प्राप्नोत्येव। न कदाचिद्व्यभिचरतीत्यर्थः। साहसिकस्य काकतालीयन्यायेन फलसिद्धिः विवेकिनस्तु नियतेति भावः। अत्र फलशब्देन सत्यहेतु कृतार्थयोरभेदाध्यवसायाच्छ्लेषमूलातिशयोक्तिस्तदनुगृहीता चोपमेत्यनुसन्धेयम् ॥३१॥

हिन्दी अनुवाद—जो विचाररूपी जल से कार्यरूपी बीजों को पालन करता हुआ सींचता है वह सदैव फलशालिनी क्रिया (सफल काम) को प्राप्त करता है, जैसे (किसान) लोग फलों से सम्पन्न शरद को (प्राप्त करते हैं)।

English Translation—He who waters seedlike measures with water-like deliberation, keeping them safe (till the time

of fruition) always enjoys successful actions as people (farmers) enjoy autumn.

संस्कृतभावार्थः—साहसिकानां कार्यसिद्धिः सन्देहान्विता। परञ्च विवेकिनां सफलता तु निश्चिता यथा कृषकाः स्वक्षेत्रे बीजानि वपन्ति धान्येष्वंकुरितेषु तानि वारिभिरभिषिञ्चन्तः शरदि (आश्विनकार्त्तिकयोर्मध्ये) सम्पन्नानि सस्यानि प्राप्नुवन्ति तथैव नीतिज्ञाः कर्त्तव्यनिदानानि सन्धिविग्रहाद्युपायैरन्ततो गत्वा सफलतामधिगच्छन्ति।

व्याख्या—जैसे वर्षा ऋतु में उचित रूप से जल द्वारा खेत सींचे जाते हैं तो शरद (कुँवार-कार्तिक) में धान खूब लहलहाते हैं वैसे ही सन्धिविग्रहादि उपायों द्वारा कर्त्तव्य निश्चित करने से सफलता मिल सकती है। इस दृष्टान्त द्वारा युधिष्ठिर भीम को समझाते हैं कि कार्य विवेक द्वारा ही सिद्ध होते हैं दुःसाहस से नहीं। अतः तुम्हें विवेक से काम लेना चाहिए।

टिप्पणी—**यः सः**—यत्तदोर्नित्यसम्बन्धः। 'यः' और 'सः' का नित्यसम्बन्ध है। **विधि**—विधीयते इति वि+धा+कि भावे—विधिः ता। विधयः बीजानीव विधिबीजानि उपमितकर्मधारय। 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' सूत्र से 'अभिवर्षति' और 'अनुपालयन्' दोनों का कर्म है। द्रष्टव्य—बुद्धिजलनिर्झरैः सिच्यमाना देशकालकलसैः। दर्शयति हि कार्यफलं गुरुकं चाणक्यनीतिलता॥ मुद्राराक्षस अंक पंचम। अर्थात् जो कार्य की योजना बना कर उचित काल और स्थान की प्रतीक्षा करता हुआ सुरक्षित रखता है उसे अन्त में सिद्धि मिलती है। **विवेकवारिणा**—विवेकः 'विवेकः पृथगात्मता' इत्यमरः। वारि इव विवेकवारि उपमित समासः तेन करणे तृतीया। **अनुपालयन्**—अनु+पा+णिच्+ लटः स्थाने शतृ—अनुपालयन् पा+णिच्= पालि 'पातेरणौ लुग्वक्तव्यः' वार्त्तिक से लुक् (ल) का आगम हो गया। **अभिवर्षति**—अभि+वृष्+लट् ति। 'यः' इसका क र्ता है। सः सदा—सर्व+ङि+दा स्वार्थे—अव्यय है 'अधितिष्ठति' की विशेषता बतलाता है। **फलशालिनीं**—'फल' का अर्थ है 'सस्य' अथवा 'कार्य'। फलेन शालते इति फल+शाल + णिनि+ङीप् स्त्रियाम् ताम्। फल—शस्य (शस्यपक्षे),

कार्यसिद्धि—(विधिपक्षे) । **क्रियाम्**—कृ+भावे श स्त्रियाम् ताम् कर्म है 'अधितिष्ठति' का । 'लोकस्तुभुवने जने' इत्यमरः । **लोकः**—जनः । शरद 'अधितिष्ठति' का कर्म है । 'स्यादृतौ वत्सरे शरद्' इत्यमरः । **अधितिष्ठति**—अधि+स्था+लट् ति इसके कर्त्ता हैं 'सः' और लोकः । 'अधिशीङस्थासां-कर्म' अर्थात् शी, स्था और आस् धातुओं के पूर्व यदि 'अधि' उपसर्ग हो तो इन धातुओं के आधार में कर्म लगता है इस सूत्र से 'क्रियाम्' और 'शरदम्' में द्वितीया प्रयुक्त हुई है । इस श्लोक में विवेक और वारि, क्रिया और शरद, विधि और बीज, सः और लोकः में परस्पर सादृश्य दिखाया गया है अतः पूर्णोपमालंकार है । श्लेष मूलातिशयोक्ति अलंकार भी है ।

(वृष्—वर्षति, अवर्षत्, ववर्ष, अवर्षीत्, वर्षिष्यति) ॥३१॥

वाच्यपरिवर्तनः—येन विधिवीजानि विवेकवारिणा अनुपालयता अभि-वृष्यन्ते तेन सदा लोकेन शरदिव फलशालिनी क्रिया अधिष्ठीयते ।

नियता विवेकिनः फलसिद्धिरित्युक्तम् । सम्प्रति तामेव रुच्यर्थं स्तौति—

विवेकशील व्यक्ति की सिद्धि निश्चित है ऐसा कहा गया है अब उसी के प्रति रुचि उत्पन्न करते हैं—

शुचि भूषयति श्रुतं वपुः प्रशमस्तस्य भवत्यलंक्रिया ।
प्रशमाभरणं पराक्रमः स नयापादितसिद्धिभूषणः ॥३२॥

अन्वयः—शुचि श्रुतं वपुः भूषयति, तस्य प्रशमः अलंक्रिया भवति । पराक्रमः प्रशमाभरणम् । सः नयापादितसिद्धिभूषणः ।

शुचीति । शुचि सम्प्रदायशुद्धं शास्त्रश्रवणं कर्तृ-वपुर्भूषयति । अन्यथा विद्वान् पुरुषः शोच्यः इति भावः । तस्य श्रुतस्य प्रशमः क्रोधोपशान्तिरलं-क्रिया भूषणं भवति । अन्यथा श्रुतिवैफल्यादिति भावः । पराक्रमः सत्यवसरे शौर्यं प्रशमस्याभरणं भवति । अन्यथा सर्वः परिभूयत इति भावः । स पराक्रमः नयापादिता नीतिसम्पादिता विवेकपूर्विकेति यावत् । सा चासौ

सिद्धिश्च सैव भूषणं यस्य तथोक्तः अन्यथा साहसिकस्य सिद्धिः काकतालीयत्वेन पक्षे पराक्रमवैयर्थ्यं स्यादिति भावः। "वपुषो भूष्यतैवात्र सिद्धेर्भूषणतैव तु। उभयं मध्यमानां तु तेषां पूर्वोत्तरेच्छया ।।" इति विवेकः। एवं विशिष्टसिद्धेरन्यभूषिताया एवं भूषणत्वोक्त्या सर्वोत्तरतया स्तुतिर्गम्यते। अत्रोत्तरस्य पूर्वपूर्व-विशेषणत्वादेकावल्यलंकारः। तदुक्तं "यत्र विशेषणभावं पूर्वं प्रतिक्रमेणैव। भवति परं परमेषालंकृतिरेकावली कथिता ।।" इति ।।३२।।

हिन्दी अनुवाद—उज्ज्वल शास्त्र शरीर को अलंकृत करता है, शान्ति उस (शास्त्रज्ञान) का आभूषण है। पराक्रम शान्ति का आभरण है और नीति से कार्य का सम्पादन करना पराक्रम का आभूषण है ।।३२।।

English Translation—Sound knowledge of the Shastras adorns the body; self-control is the ornament of that (knowledge), valour is the decoration of self-control; success achieved through policy is the adornment of valour.

संस्कृतभावार्थः—निर्दोषशास्त्रज्ञानं शरीरस्य भूषणम्। वस्तुतस्तु गुरुनिदेशानुसारं शास्त्राध्ययनं मानवजन्मनः सार्थक्यम्। यथोक्तं विद्याविहीनः पशुः अथवा 'विद्या रूपं कुरूपाणाम्।' विद्याया आभरणं शान्तिः। शौर्यं प्रशमस्य भूषणम्। नीतिसम्पादिता कार्यसिद्धिरेव पराक्रमस्य शोभा। अतः नीतिपूर्वकमस्माभिर्वर्तितव्यम् केवलं युद्धमात्रेणैव सिद्धिर्न लभ्यते इति विशदार्थः।

व्याख्या—सरल है।

टिप्पणी—**शुचि**—संप्रदायशुद्धं निर्दोषमिति यावत् 'मास्यापाढे विशुद्धेऽन्नौ शुक्लेऽनुपहते शुचिः' इत्यनेकार्थमञ्जरी। **श्रुतं**—शास्त्रश्रवणं श्रूयते इति श्रुतम्—श्रु+क्त कर्मणि। 'श्रुतं शास्त्रावधृतयोः' इत्यमरः। 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः। **वपुः**—शरीरम्। **भूषयति**—भूष्+णिच् (चुरादि)+लट् ति इसका कर्त्ता है 'श्रुतम्'। **तस्य**—श्रुतस्य। **प्रशमः**—शान्तिः—प्र+शम्+घञ् भावे। कर्त्ता है 'भवति' का। **अलंक्रिया**—अलं

+कृ+श भावे गति तत्पुरुष। 'भूषणेऽलम्' सूत्र में (भूषण के अर्थ में आने से 'अलम्' गतिसंज्ञक होता है) 'अलम्' गतिसंज्ञक है। **भवति**—जायते। 'भूषणं स्यादलंक्रिया' 'अलंकारस्त्वाभरणं परिष्कारो विभूषणम्' इत्यमरः। **पराक्रमः**—परा+क्रम्+घञ् भावे करणे वा 'भवति' का कर्त्ता है। **प्रशमाभरणम्**—आ सम्यक् भ्रियते अथवा भ्रियते अनेनेति आभरणम् (आ+भृ+ल्युट् कर्मणि करणे वा) प्रशमस्य आभरणम् (षष्ठी तत्पुरुष) अर्थात् शान्ति को समयानुसार पराक्रमसमन्वित होना चाहिए। **सः**—पराक्रमः। **नयापादितसिद्धिभूषणः**—आ+पद्+णिच्+क्त कर्मणिस्त्रियाम्—आपादिता सिध्+क्तिन् भावे—सिद्धिः। भूष्यतेऽनेनेति भूषणं (भूष्+ल्युट् करणे)। नयेन आपादिता (तृ० तत्पु०) नयापादिता सिद्धिः (कर्मधारय) नयापादितसिद्धिः भूषणम् अस्य बहुव्रीहि। 'सः' का विशेषण है। इस श्लोक में क्रमशः पूर्वपूर्व वस्तु का उत्तरोत्तर वस्तु विशेषण होता जाता है, यथा वपु का श्रुत, शास्त्र का प्रशमन, प्रशम का शौर्य और शौर्य का नयापादितसिद्धि उत्तरोत्तर विशेषण होते गये हैं अतः एकावली अलंकार होता है। **तल्लक्षणं**—स्याप्यतेऽपोह्यते वाऽपि यथापूर्वं परं परम्। विशेषणतया यत्र वस्तु सैकावली द्विधा॥" अर्थात् जहाँ पूर्वपूर्व वस्तु के प्रति उत्तर उत्तर वस्तु विशेषणरूप से रखी जाय अथवा हटाई जाय वहाँ दो प्रकार का एकावली अलंकार होता है। यहाँ प्रथम प्रकार का 'एकावली अलंकार' है। (भूष्—भूषयति, अभूषयत्, भूषयामास—भूषयांचकार—भूषयांबभूव)।

वाच्यपरिवर्तनः—शुचिना श्रुतेन वपुर्भूष्यते। प्रशमेन तस्य अलंक्रियया भूयते। प्रशमाभरणेन पराक्रमेण भूयते। तेन नयापादितसिद्धिभूषणेन भूयते॥३२॥

विमृश्य कुर्यादिति स्थितिम्। तत्र विमर्शोपायः क इत्युक्ते शास्त्रमेवेत्याह—

यह ठीक है कि विचारपूर्वक काम करना चाहिए, पर विमर्श का उपाय क्या है इसके उत्तर में कहते हैं कि शास्त्र ही विमर्श का आधार है—

मतिभेदतमस्तिरोहिते गहने कृत्यविधौ विवेकिनाम् ।
सुकृतः परिशुद्ध आगमः कुरुते दीप इवार्थदर्शनम् ॥३३॥

अन्वयः—मतिभेदतमस्तिरोहिते गहने कृत्यविधौ विवेकिनाम् सुकृतः परिशुद्धः आगमः दीप इवार्थदर्शनं कुरुते ।

मतीति । मतिभेदः कार्यविप्रतिपत्तिः । मतिभेदस्तम इवेत्युपमितसमासः दीपः इवेत्युपमानाऽनुसारात् । तेन तिरोहितेन आच्छन्नेऽतएव गहने दुरवगाहे कृत्यविधौ कार्यानुष्ठाने विवेकिनां सुकृतः सदभ्यस्तोऽत एव परिशुद्धो निश्चितोऽन्यत्र सुविहितः प्रवातादि दोषरहितश्च, आगमः शास्त्रम् । 'आगमः शास्त्र आम्नाये' इति विश्वः । दीप इवार्थदर्शनं वस्तुप्रतिभासनं कार्यज्ञानं च कुरुते ॥३३॥

हिन्दी अनुवाद—जैसे अन्धकारयुक्त घर में सम्यक् (तेलवत्तीसंयुक्त वातादि दोषमुक्त) दीपक वस्तु को दिखाता है वैसे ही मतभेदरूपी अन्धकार से आच्छन्न विषम कार्यविधि के विषय में भलीभाँति अभ्यस्त, सुनिश्चित शास्त्र कर्त्तव्यज्ञान करा देता है ।

English Translation—In the matters to be dealt with, lost in the gloom of divergent views difficult, well mastered and all round pure Shastra, like a lamp, well placed and bringing the objects in view, procures the vision of things for the thoughtful.

संस्कृतभावार्थः—यथान्धकाराच्छन्ने दुर्गमे स्थाने सुविहितः पवनादिदोषसंरक्षितो दीपो लुप्तमपि पदार्थं प्रकाशयति तथैव मतिभेदान्धकाराच्छन्ने दुरवगाहे कार्यविधाने सम्यगभ्यस्तं नीतिशास्त्रं कर्त्तव्यमार्गं दर्शयति । अतः विवेकपूर्वकं कार्यं कुर्यात् नतु केवलं भुजबलमवलम्बनमिति विशदार्थः ॥३३॥

व्याख्या—जिस प्रकार अन्धकारयुक्त स्थान में अच्छी तरह से तेल-बत्ती से संयुक्त तथा वायु से रहित दीपक वस्तु को प्रकाश में लाकर दिखा देता है

उसी प्रकार सन्देहरूप तिमिराच्छन्न दुर्ज्ञेय सम्यगभ्यस्त नीतिशास्त्र कर्त्तव्यमार्ग का निर्देश कर देता है। महाराज युधिष्ठिर के कहने का तात्पर्य है कि केवल पराक्रम से ही सफलता नहीं मिल सकती वरन् शास्त्रानुकूल कार्य करने से कल्याण हो सकता है।

टिप्पणी—**मतिभेदतमस्तिरोहिते**—मन्+क्तिन् भावे—मतिः। भिद्+घञ् भावे—भेदः। तिरस्+धा+क्त नपुंसके भावे—तिरोहितम्। **मतेः भेदः**—मतभेदः (षष्ठी तत्पुरुष) मतिभेदः तमः इव इति मतिभेदतमः (उपमितकर्मधारय) मतिभेदतमसि तिरोहितम् अस्य (बहुव्रीहि) तस्मिन्। 'कृत्यविधौ' का विशेषण है। 'मतिभेदो भ्रमो भ्रान्तिरनिश्चय इतीर्यते' इति कोषान्तरम्। 'अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः' 'दीपः प्रदीप आख्यातः' इति कोषः। 'कलिलं गहनं समे' इत्यमरः। गहने—गाह्+युच् (अन)। 'आ' को निपातन से ह्रस्व 'अ' कर दिया गया है। अतः 'गाह्' के स्थान पर 'गह्' रह गया। 'कृत्यविधौ' का विशेषण है। कृ+क्यप् भावे—कृत्यम्। वि+धा+कि भावे-विधिः। कृत्यस्य विधिः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मिन् विषयाधिकरणे सप्तमी। **विवेकिनाम्**—शेषे षष्ठी इसका संबंध 'आगम' से है। **सुकृतः**—कृ+क्त कर्मणि कृतः सु सुष्ठु कृतः सुकृतः प्रादितत्पुरुष 'आगम' और 'दीपः' का विशेषण है। **परिशुद्धः**—परि+शुध्+क्त कर्त्तरि परिशुद्धः। 'आगमः' तथा 'प्रदीपः' का विशेषण है। **आगमः**—आ सम्यक् गम्यते अनेनेति आ+गम्+अप् करणे। **दीपः**—'आगमः' का उपमान है। **अर्थदर्शनम्**—अर्थस्य (वस्तुजातस्य) दर्शनम् (प्रकाशनम्) (षष्ठी तत्पुरुष) 'कुरुते' का कर्म है। द्रष्टव्य—'शास्त्रं हि निश्चितधियां क्व न सिद्धिमेति'—शिशुपालवध पंचम।

(कृ—करोति—कुरुत, अकरोत्—अकुरुत, चकार—चक्रे, अकार्षीत्—अकृत, करिष्यति—करिष्यते) ॥३३॥

वाच्यपरिवर्तनः—सुकृतेन परिशुद्धेन आगमेन दीपेनेवार्थदर्शनं क्रियते।

एवं विमृश्य कुर्वतो दैवादनर्थागमोऽपि न कश्चिदपराध इत्याह—

इस प्रकार विचारपूर्वक काम करने में संयोगवश यदि कोई आपत्ति भी आ जाय तो भी कोई अपराध नहीं है—

स्पृहणीयगुणैर्महात्मभिश्चरिते वर्त्मनि यच्छतां मनः ।
विधिहेतुरहेतुरागसां विनिपातोऽपि समः समुन्नतेः ॥३४॥

अन्वयः—स्पृहणीयगुणैः महात्मभिः चरिते वर्त्मनि मनः यच्छताम् । विधिहेतुः आगसाम् अहेतुः विनिपातः अपि समुन्नतेः समः ॥३४॥

स्पृहणीयेति । स्पृहणीयगुणैर्लोकश्लाघ्यगुणैर्महात्मभिः । सज्जनैश्चरितेऽनुष्ठिते वर्त्मन्याचारे मनो यच्छतां निदधताम् । सन्मार्गेण व्यवहरतामित्यर्थः । विधि—हेतुः दैवनिमित्तकः । 'विधिर्विधाने दैवे च' इत्यमरः । अतएवागसामपराधानामहेतुर्विनिपातो दैविकानर्थोऽपि । 'विनिपातोऽवपाते स्याद् दैवादिव्यसनेऽपि च' इतिविश्वः । समुन्नतेरतिवृद्धेः समस्तुल्यः । दैविकेषु पुरुषस्यानुपालभ्यत्वादिति भावः । यथाह कामन्दक—'यत्तु सम्यगुपाक्रान्तं कार्यमेति विपर्ययम् । पुरुषस्त्वनुपालभ्यो दैवान्तरितपौरुषः ॥३४॥

हिन्दी अनुवाद—प्रशंसनीय गुणों वाले महात्माओं के द्वारा आचरण किए गए मार्ग में मन लगाए हुए लोगों का विधिहेतु तथा अपराध का कारण न बनने वाली अवनति भी उन्नति के समान होती है ।

English Translation—Even downfall, due to decree of fate and hence no cause for blame, of those setting their heart on the path followed by the high souled ones of enviable merits, is like a good rise.

संस्कृतभावार्थः—यत्कर्म स्पृहणीयगुणैर्महात्मभिरनुष्ठीयते तथाविधं कर्म विदधतां यदि कार्यनाशोऽपि जायते तथापि न कश्चिद्दोषः । यदि राजनीत्यनुसारमाचरतामस्माकं पराजयो भवेत्तर्हि सोऽपि परिवृद्धेस्तुल्यो ज्ञातव्यः ।

व्याख्या—लोग महात्माओं का आचरण करने से विपत्ति में नहीं पड़ते और यदि कभी संयोगवश कोई आपत्ति आ गई तो उसे प्रारब्धवश ही समझना

चाहिए। अतः नीतिशास्त्रानुसार ही आचरण करने से हमें सिद्धि प्राप्त हो सकती है। ऐसा करने से हमारी कार्यप्रणाली में दोष नहीं समझा जायगा।

टिप्पणी—**स्पृहणीयगुणैः**—स्पृह् + अनीयर् कर्मणि स्पृहणीय। स्पृहणीया गुणा एषाम् तैः (बहुव्रीहि) 'महात्मभिः' का विशेषण है। महात्मभिः—महान् आत्मा एषाम् (बहुव्रीहि) तैः। अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। **चरिते**—चर्+क्त कर्मणि—चरितम् तस्मिन्। 'वर्त्मनि' का विशेषण है। **वर्त्मनि**—पथि—विषयाधिकरणे सप्तमी। **यच्छताम्**—दा (यच्छ्)+लटः स्थाने शतृ कर्त्तरि—यच्छन्तः तेषाम् जनानाम् (प्रक्षिप्त) का विशेषण है शेषे षष्ठी इसका संबंध 'विनिपातः' से है। इसका कर्म है 'मनः'। **विधिहेतुः**—विधिः हेतुः अस्यासौ (बहुव्रीहि) "विधिर्विधाने दैवे च" इत्यमरः। **आगसाम्**—अपराधानाम्। **अहेतुः**—न हेतुः इति अहेतुः नञ् तत्पुरुष। 'विनिपातः' का विशेषण है। **विनिपातोऽपि**—'विनिपातोऽवपाते स्याद् दैवादिव्यसनेऽपि च' इति विश्वः। वि+नि + पत्+ घञ् भावे। **समुन्नतेः**—सम्+उद् +नम् + क्तिन् भावे समुन्नतिः तस्याः। "तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्" सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त हुई है। सूत्रार्थ—'तुला' तथा 'उपमा' इन दो शब्दों को छोड़कर शेष सब तुल्य का अर्थ बताने वाले शब्दों के साथ तृतीया अथवा षष्ठी होती है।

कामन्दक ने कहा है—"यत्तु सम्यगुपाक्रान्तं कार्यमेति विपर्ययम्। पुरुषस्त्वनुपालभ्यो दैवान्तरितपौरुषः॥" अर्थात् जो कार्य को अच्छी तरह करने पर भी विपरीत फल प्राप्त हो तो उस पुरुष को दोष न देना चाहिए क्योंकि दैव द्वारा ही विघ्न उसके पुरुषार्थ में उपस्थित किया गया है॥३४॥

वाच्यपरिवर्तन :—...विधिहेतुना आगसामहेतुना विनिपातेनापि समुन्नतेः समेन भूयते।

सम्प्रति यद् विमृश्यं तदाह—

अब जिस पर विचार करना चाहिए उसे कहते हैं—

शिवमौपयिकं गरीयसीं फलनिष्पत्तिमदूषितायतीम्।
विगणय्य नयन्ति पौरुषं विजितक्रोधरया जिगीषवः॥३५॥

अन्वयः—जिगीषवः विजितक्रोधरयाः गरीयसीम् अदूषितायतीं फलनिष्पत्तिं विगणय्य पौरुषं शिवम् औपयिकं नयन्ति ।।३५।।

शिवमिति । जिगीषवो विजयेच्छवो नृपाः विजितक्रोधरया जितक्रोधवेगाः सन्तो गरीयसीं प्रभूतामदूषितायतीमक्षतोत्तर कालाम् । स्वन्तामित्यर्थः । फलनिष्पत्तिं फलसिद्धिं विगणय्य । फलवत्वं निश्चित्येत्यर्थः । पौरुषं पुरुषकारं शिवमनुकूलमौपयिकमुपायम् । विनयादित्वात् स्वार्थे ठक् । उपायात् ह्रस्वत्वञ्च नयन्ति प्रापयन्ति । पौरुषमुपायेन योजयन्तीत्यर्थः । नानिश्चितफलं कर्म कुर्वीत इति भावः । यथाह कामन्दकः—"निष्फलं क्लेशबहुलं सन्दिग्धफलमेव च । न कर्म कुर्यान्मतिमान् सदा वैरानुबन्धि च ।।" इति नयतिः प्रापणार्थे द्विकर्मकः । अत्र पौरुषस्य कर्तृस्थकर्मत्वेऽप्युपायस्यातथात्वात्क्रोधं विनयत इत्यादिवत् "कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि" इत्यात्मनेपदं न भवति ।।३५।।

हिन्दी अनुवाद—विजय चाहने वाले, क्रोध के वेग को जीतने वाले गुरुतर और अदूषित अन्त वाले फल की सिद्धि को निश्चय करके पुरुषार्थ को हितकर उपाय से युक्त करते हैं।

English Translation—The kings, ambitious for conquest, who have subdued the sway of anger, and having well ascertained the weighty results of irreproachable future, employ their valour towards a wholesome plan.

संस्कृतभावार्थः—ये नृपाः विजयाभिलांषिणः सन्ति ते कोपावेगवमरुध्य परिणामे हिताहितं चिन्तयन्ति । यस्य कर्मणः परिणामे प्रभूतं सुखं लाभोऽपि महान् जायते तदेव ते कुर्वन्ति । केवलं भुजबलमाश्रयणं अनिश्चितफलकमतस्तत्त्याज्यमिति युधिष्ठिरकथनतात्पर्यम् ।

व्याख्या—विजयाभिलाषी राजा लोग क्रोध को अपने वश में कर लेते हैं और तब हिताहित की बात शान्तिपूर्वक सोचते हैं । जिस कार्य का अन्त सुखद होता है उसे ही वे सम्पन्न करते हैं । अतः क्रोध को शान्त करके

भविष्य में कल्याण करनेवाले कामों से पुनः राज्यप्राप्ति की चेष्टा करनी चाहिए।

टिप्पणी—**जिगीषवः**—जेतुमिच्छवः इति जि+सन् + उ कर्त्तरि—विजयाभिलाषी। 'सन् लिटोर्जेः' सूत्र से—सन् और लिट् निमित्तक अभ्यास से परे जि धातु को कुत्व होता है—सन् के कारण अभ्यास से परे होने पर 'जि' के स्थान पर 'गि' आदेश हो गया है। **विजितक्रोधरयाः**—वि+जि+क्त कर्मणि—विजितम्, क्रुध्+ घञ् भावे—क्रोधः, क्रोधस्य रयः (षष्ठी तत्पुरुष) विजितः क्रोधरयः यैः ते (बहुव्रीहि)। "कोपक्रोधामर्षरोषप्रतिघ्यारुट्क्रुधौ-स्त्रियौ" इत्यमरः। 'रंहस्तरसी तु रयः स्यदः' इत्यमरः। **गरीयसीम्**—अतिशयेन गुर्वी गुरु+ईयसुन्=ङीप् स्त्रियाम्, ताम्। प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फववंहिगर्वषित्रपद्राघिवृन्दाः' अर्थात् प्रिय, स्थिर, स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वृद्ध, तृप्र, दीर्घ, वृन्दारक स्थान पर क्रमशः प्र, स्थ, स्फ, वर्, वंहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राघि, वृन्द हो जाते हैं—सूत्र से गुरु के स्थान पर ईयसुन् प्रत्यय से पूर्व गर् आदेश हो गया है। पुनः 'उगितश्च' सूत्र से ङीप् हो गया। 'फलनिष्पत्तिम्' का विशेषण है। **अदूषितायतीं**—आयतिः—उत्तरकाल आ+या+ इति अथवा आ+ यम्+ क्तिन् भावे आयती। दूषिता—दुष्+णिच्+क्त कर्मणि स्त्रियाम्; न दूषिता अदूषिता, नञ् तत्पुरुष; अदूषिता आयतिः अस्याः (बहुव्रीहि) ताम् 'फलनिष्पत्तिम्' का विशेषण है। 'दोषो णौ' सूत्र से 'दुष्' का 'दूष्' आदेश हो जाता है। **फलनिष्पत्तिम्**—फलस्य निष्पत्तिः ताम् (षष्ठी तत्पुरुष) (निस्+पद्+क्तिन् भावे) 'विगणय्य' का कर्म है। **विगणय्य**—वि+गण्+णिच् (चुरादि)+ल्यप् निश्चय करके—यहाँ पर 'ल्यपि लघुपूर्वात्' सूत्र से (णिच्) इ के स्थान पर अय् हो जायगा। **पौरुषम्**—शौर्यम् 'नयन्ति' का कर्म है। **शिवम्**—कल्याणकरम् "श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्" इत्यमरः। **औपयिकम्**—उप+ अय् गतौ+घञ् अथवा उप+इण् गतौ+अच् कर्मणि—उपायः; उपाय एव इति उपाय+ठक् स्वार्थे—औपयिकः। 'विनयादिभ्यष्ठक्' सूत्र से विनयादिगणवाले शब्दों में ठक् प्रत्यय लगता है। 'उपायात् ह्रस्वत्वञ्च' सूत्र से उपाय के आ का ह्रस्व हो जाता है। 'नयति'

का 'अप्रधानकर्म'। नयन्ति—प्रापयन्ति। 'नी' द्विकर्मक धातु है 'पौरुष' प्रधानकर्म है तथा 'औपयिकम्' अप्रधान। 'कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि' सूत्र से आत्मनेपद होना चाहिए। यहाँ प्रधान कर्म 'पौरुष' कर्त्ता में स्थित है और कर्त्ता के शरीर का कोई अंग भी नहीं है। यद्यपि प्रधान कर्म 'कर्तृस्थ' है किन्तु 'अप्रधान कर्म' औपयिकम् कर्त्ता में स्थित नहीं है अतः आत्मनेपद नहीं होगा। सभी वैयाकरणों के अनुसार 'कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि' सूत्र से केवल प्रधान कर्म की ही बात कही गई है। अतः यदि केवल प्रधान कर्म ही कर्त्ता में स्थित है और वह शरीर का अंग नहीं है तो आत्मनेपद विहित पाया जाता है। रक्षिताचार्य ने जिसका समर्थन शरणदेव के द्वारा अपनी दुर्घटवृत्ति में किया गया है बताया है कि 'वेः इत्यनुवर्त्तते, तेन न तङ्' अर्थात् वेः की अनुवृत्ति होने के कारण विपूर्वक नी का प्रयोग आत्मनेपद में हो सकता है केवल 'नी' का नहीं। अकेले 'नी' धातु का प्रयोग परस्मैपद में होना चाहिए। पर यह उत्तर भी ठीक नहीं जँचता क्योंकि 'वेः' की अनुवृत्ति पाणिनि के १। ३। ३६ सूत्र पर ही समाप्त हो जाती है और 'कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि' सूत्र की संख्या १। ३।३७ है अतः यह तर्क भी युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता है। इसी कारण भट्टोजिदीक्षित इस तर्क पर ध्यान नहीं देते। वे कहते हैं 'कथं तर्हि विगणय्य नयन्ति पौरुषम् इति। कर्तृगामित्वाविवक्षायां भविष्यति'। जिनेन्द्रबुद्धि तथा हरदत्त ने इस सूत्र को नियमार्थ माना है। 'नी' के कर्म के कर्तृस्थ होने पर आत्मनेपद होता है केवल जब वह कर्त्ता के शरीर का अंग हो अन्यथा नहीं इससे यह तर्क निर्दोष नहीं रहने पाता। क्रियाफल के कर्तृगामित्व की स्पष्ट विवक्षा न होने से यहाँ आत्मनेपद न होगा। यद्यपि कर्तृगामित्व विशेषरूप से नहीं कहा गया तथापि श्लोक से कर्तृगामित्व स्पष्ट हो जाता है। किन्तु नागेशभट्ट इस सूत्र के विध्यर्थ में होने के पक्ष में हैं—'अकर्तृगेऽपि विध्यर्थं सूत्रम् शब्देन्दुशेखर।' इस प्रकार क्रियाफल कर्तृगामी न होने पर भी आत्मनेपद हो जाता है। इसलिए परस्मैपद 'नयन्ति' का प्रयोग शुद्ध नहीं है। हरदत्त ने इसके समर्थन में कहा है कि यह नियम 'नी' के केवल अपगमार्थ होने पर लागू होता है। यहाँ 'नी' धातु के प्राप्त्यर्थ होने से यह नियम न लागू होने के कारण परस्मैपद होगा।

'अनेकार्थत्वाद्धातूनाम्' को दृष्टि में रखने से 'नी' धातु अपगमार्थ हो सकती है। विपूर्वक नी धातु साधारणतः अपगमार्थ होती है। अतः 'नी' का अर्थ वही समझना चाहिए जो विपूर्वक 'नी' का है। इसलिए यह मत और शरणदेव द्वारा उद्धृत रक्षिताचार्य का मत व्यावहारिक दृष्टि से एक ही है। भेद केवल इतना है कि रक्षिताचार्य वि को अनुवृत्ति से युक्त करते हैं और हरदत्त अनुवर्तन की आवश्यकता न समझकर उसे अन्य प्रकार से प्रस्तुत करते हैं। अतः यदि 'नयन्ति' के प्रयोग का समर्थन करना है तो हरदत्त का ही मत सबसे उपयुक्त जँचता है। (प्रिंसिपल रे से उद्धृत)

(नी—नयति—नयते, नयतु—नयताम्, अनयत्—अनयत, निनाय—निन्ये, अनैषीत्—अनेष्ट, नेष्यति—नेष्यते।)

वाच्यपरिवर्तनः—जिगीषुभिर्विजितक्रोधरयैः गरीयसीं अदूषितायतीं फलनिष्पत्तिं विगणय्य शिवमौपयिकं पौरुषम् नीयते।

यदुक्तं विजितक्रोधरया इति तदावश्यकत्वमाह—

कोपावेग के जीतने की आवश्यकता बताते हैं—

अपनेयमुदेतुमिच्छता तिमिरं रोषमयं धिया पुरः।
अविभिद्य निशाकृतं तमः प्रभया नांशुमताऽप्युदीयते ॥३६॥

अन्वयः—उदेतुमिच्छता पुरः रोषमयं तिमिरं धिया अपनेयम्। अंशुमता अपि प्रभया निशाकृतं तमः अविभिद्य नोदीयते।

अपनेयमिति। उदेतुमभ्युदेतुमिच्छता राज्ञापुरः प्रथमं रोषमयं रोषादागतम्। 'मयट् च' इति मयट् तिमिरज्ञानं धिया विवेकबुद्ध्या करणेनापनेयं मनोद्यम्। तथाहि। अंशुमतापि कर्त्रा प्रभया तेजसा करणेन निशाकृतं तमो ध्वान्तमविभिद्य नोदीयते। किन्तु विभिद्यैवेत्यर्थः। सूर्यस्याप्येवं किमुतान्येषामित्यपि शब्दार्थः इणो भावे लट्॥३६॥

हिन्दी अनुवाद—उन्नति चाहने वाले को चाहिए कि पहले (वह) बुद्धि के द्वारा क्रोधजन्य अन्धकार को दूर करे। (क्योंकि) सूर्य भी रात्रिकृत अन्धकार को अपने प्रकाश से बिना नष्ट किए हुए नहीं उदय होता।

English Translation—By one wishing to prosper, the darkness born of anger should first be removed by intellect. Even the sun does not rise without having pierced with his rays the darkness caused by the night.

संस्कृतभावार्थः—यस्त्विह संसारे स्वोन्नतिमिच्छति स तु प्रथमं कोपमपहाय विचारपूर्वकं कार्यं कुर्यात् । यथा सूर्यः रात्रिजन्यमन्धकारं विच्छिद्योदेति तथैव भवानपि क्रोधं परित्यज्य विवेकबुद्धया शास्त्रानुसारमाचरेदिति युधिष्ठिरकथनाभिप्रायः ।

व्याख्या—क्रोधान्ध मनुष्य को उचित मार्गदर्शन नहीं होता अतः विजयाभिलाषी राजा को सर्वप्रथम क्रोध का परित्याग करना चाहिए । शमनावलम्बन से ही शुद्ध बुद्धि स्फुरित होती है । महाराज युधिष्ठिर के कथन का यह अभिप्राय है कि भीम क्रोध त्याग कर शान्तिपूर्वक विवेक से काम लें तभी कार्य सिद्धि हो सकती है ।

टिप्पणी—**उदेतुमिच्छता**—उद्+इ+तुमुन् उदेतुम् । इच्छता—इष्+लटः स्थानेशतृ=इच्छत् तेन । **पुरः**—पूर्व+ङि (सप्तमी)+असि स्वार्थे पुरः अव्यय 'पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्' सूत्र से अर्थात् पूर्व, अधर, और अवर से आगे यदि असि प्रत्यय रहे तो क्रमशः पुर्, अध् और अव् हो जाता है । पूर्व के स्थान पर पुर् हो गया । **रोषमयं**—रुष् हिंसायाम्+घञ् भाररोषः रोषादागतम् इति रोषमयं (रोष्+मयट्) "मयट् च" सूत्र से 'मयट्' लगा है । 'तिमिरम्' का विशेषण है । **तिमिरम्**—अन्धकारः, उक्ते कर्मणि प्रथमा । "अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः" इत्यमरः । **धिया**—ध्यायत्यनेनेति ध्यै+क्विप् करणे धीः तया करणे तृतीया । **अपनेयम्**—अपनेतुं योग्यम्—अप+नी+यत् अपनेयम् । **अंशुमता**—अंशवः सन्ति अस्य इति अंशु+मतुप्—अंशुमत् तेन सूर्येण । अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया । **अपि**—अव्यय 'गर्हा' के अर्थ में । **प्रभया**—प्र+भा+अङ् करणे स्त्रियाम् प्रभातया करणे तृतीया । "स्युः प्रभा रुग्रुचिस्त्विङ्भाभाश्छविद्युतिदीप्तयः" इत्यमरः । "स्यात्पुरः पुरतोऽग्रतः" इत्यमरः । "अंशुमान् सविता सूर्यो मार्तण्डो

मिहिरो रविः" इत्यन्यकोषः । 'निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा' इत्यमरः । निशाकृतं—निश्या कृतम् तृतीया तत्पुरुष । 'तमः' का विशेषण है। तमः—ध्वान्तं । 'अविभिद्य' का कर्म है । अविभिद्य—वि+भिद्+ल्यप् न विभिद्य नञ् तत्पुरुष । नोदीयते—उद्+इ+लट्ते भावे । इ—एति, एतु, ऐत्, इयाय, अगात्, एष्यति । इस श्लोक में सामान्य का विशेष से समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।।३६।।

वाच्यपरिवर्तनः—उदेतुमिच्छन् पुरः धिया रोषमयं तिमिरम् अपनयेत् । अंशुमानपि प्रभया निशाकृतं तमोऽविभिद्य नोदेति ।

ननु दुर्बलस्यैवमस्तु । बलीयसस्तु क्रोधादेव कार्यसिद्धिरित्याह आह—

दुर्बल के लिए क्रोध पर विजय पाना अपेक्षित है, पर बलवान् का काम तो क्रोध से ही सिद्ध होता है । इस पर कहते हैं—

बलवानपि कोपजन्मनस्तमसो नाभिभवं रुणद्धि यः ।
क्षयपक्ष इवैन्दवीः कलाः सकला हन्ति स शक्तिसंपदः ।।३७।।

अन्वयः—बलवानपि कोपजन्मनः तमसः अभिभवं यः न रुणद्धि सः क्षयपक्षे ऐन्दवीः कलाः इव सकलाः शक्तिसम्पदः हन्ति ।

बलवानिति । बलवाञ्छूरोऽपि यः कोपाज्जन्म यस्य तस्य कोपजन्मनः । 'अवर्ज्यो बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः' इति वामनः । तमसो मोहस्य कृद्योगात्कर्त्तरि षष्ठी । अभिभवमाक्रान्तिं न रुणद्धि न निवारयति । स नृपः क्षयस्य पक्षः क्षयपक्षः कृष्णपक्षः ऐन्दवीरिन्दुसम्बन्धीः कलाः इव । 'कला तु षोडशो भागः' इत्यमरः । सकलाः समग्राः शक्तिसम्पदः प्रभुमन्त्रोत्साह-शक्तोस्तिस्रोऽपि हन्ति नाशयति । अन्धस्य जङ्घाबलमिव क्रोधान्धस्य लोकोत्तरमिव सामर्थ्यम् व्यर्थमेवेत्यर्थः । अत्र कालस्य सर्वकारणत्वात् क्षयपक्षस्य कलाक्षयकारित्वमस्त्येव । तमसस्तु तत्कालविजृम्भणात्तथा व्यपदेशः ।।३७।।

हिन्दी अनुवाद—जो बलवान होते हुए भी क्रोध से उत्पन्न अज्ञानान्धकार के आक्रमण को नहीं रोकता वह कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कला के समान सब शक्तिसम्पत्ति नष्ट कर देता है ।

English Translation—He, who though strong does not check the revenges of infatuated (ignorance) arising from anger, destroys the whole wealth of power like the dark fortnight losing all the lunar digit.

संस्कृतभावार्थः—यो जनः स्वशरीरस्थं महान्तं रिपुं क्रोधं जेतुं न शक्नोति स कथं विजयी भवेत्। क्रोधजयः न केवलं निर्बलस्यावश्यकः अपितु बलवताऽपि नोपेक्षणीयः। सबलोऽपि यः कोपस्याक्रान्ति नाभिभवति तस्य प्रभुमन्त्रोत्साह-शक्तयः कृष्णपक्षे चन्द्रस्य क्षीयमाणाः कलाः इव नश्यन्ति। अतः क्रोधः परित्याज्यः।

व्याख्या—महाराज युधिष्ठिर कहते हैं कि जो पुरुष बलवान है पर क्रोध के वशीभूत है उसे सफलता नहीं मिल सकती। उसकी प्रभुमंत्रोत्साह तीनों शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। अतः अपने भुजबल पर भरोसा न करके शास्त्रानुमोदित मार्ग का अनुकरण करना चाहिए।

टिप्पणी—**बलवानपि**—बलमस्ति अस्येति (बल+वत् मत्वर्थे) 'यः' का विशेषण। **अपि**—'गर्हा' अर्थ में है। **यः कोपजन्मनः**—कुप्+घञ् भावे कोपात् जन्म अस्य (बहुव्रीहि) 'तमसः' का विशेषण है। "जनुर्जननजन्मानि जनिरुत्पत्तिरुद्भवः" इत्यमरः। **तमसः**—कृद्योगे कर्त्तरि षष्ठी। इसका संबंध अभिभव से है। तमः अभिभवति (तिङ्योगे)=तमसः अभिभवः (कृद्योगे) **अभिभवं**—अभि+भू+अप् भावे—अभिभवः तम् 'रुणद्धि' का कर्म है। **न रुणद्धि**—रुध्+लट् ति 'यः' इसका कर्त्ता है। **सः क्षयपक्षे**—क्षयस्य पक्षः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मिन्। क्षि+अच् भावे क्षयः। 'हन्ति' का कर्त्ता है। **ऐन्दवी**—उनत्ति जलोच्छ्वासेन भुवनं क्लिन्नं करोति इति उन्द=कुकर्त्तरि। इन्दोः इमाः इति इन्दु+अण्+ङीप् स्त्रियाम् ताः। 'कल्पः' का विशेषण है। **कलाः**—चन्द्रकलाः। "कला तु षोडशो भागः" इत्यमरः। 'हन्ति' का कर्म है। **इव सकलाः शक्तिसंपदः**—समस्त शक्तिसम्पत्ति अर्थात् प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तयस्तिस्रः। शक्तीनां सम्पदः—(ष० तत्पु०)। हन्ति—विनाशयति हन्+लट् ति। उपमालंकार।

(रुध्—रुणद्धि—रुन्ध, रुणद्धु—रुन्धाम्, रुन्ध्यात्—रुन्धीत, अरुणत्—अरुणद्—अरुन्ध, रुरोध—रुरुधे, अरुधत्—अरौत्सीत्—अरुद्ध, रोत्स्यति—रोत्स्यते । हन्—हन्ति, हन्तु, हन्यात्, अहन्, जघान्, अवधीत्, हन्ता, हनिष्यति ।)

वाच्यपरिवर्तनः—बलवता येन कोपजन्मनः तमसोऽभिभवो न रुध्यते तेन क्षयपक्षे ऐन्दव्यः कलाः इव सकलाः शक्ति सम्पदो हन्यन्ते ।

विमृश्य कुर्वतः क्रियाप्रकारमाह—

विचारशील राजा गतिविधि के सम्बन्ध में कहते हैं—

समवृत्तिरुपैति मार्दवं समये यश्च तनोति तिग्मताम् ।
अधितिष्ठति लोकमोजसा स विवस्वानिव मेदिनीपतिः ॥३८॥

अन्वयः—यः समवृत्तिः समये मार्दवम् उपैति तिग्मतां च तनोति स मेदिनीपतिः विवस्वानिव ओजसा लोकम् अधितिष्ठति ।

समेति । यः समानातिमृदुर्नातितिग्मा वृत्तिर्यस्य स समवृत्तिः सन्समये सत्यवसरे मार्दवं मृदुवृत्तित्वमुपैति, तिग्मतां तीक्ष्णवृत्तित्वं च तनोति । स मेदिनीपतिर्विवस्वानिव ओजसा तेजसा लोकमधितिष्ठत्याक्रामति । सूर्योऽपि ऋतुभेदेन समवृत्तिरित्यादि योज्यम् ॥३८॥

हिन्दी अनुवाद—जो सम व्यवहारवाला राजा समय-समय पर मृदुता ग्रहण करता है तथा उग्रता प्रकट करता है वह पृथ्वीपति (राजा) सूर्य के समान प्रताप से संसार को शासित करता है ।

English Translation—That king like the sunlords over the world by his prowess who being evenly disposed adopts mildness and shows (spreads) sternness at time (as occasion arises).

संस्कृतभावार्थः—राजा मध्यममार्गमनुसरेत् । सः सदैव मृदुरथवोग्रश्च न भवेत् । समयानुसारं मार्दवमुग्रताञ्च भजेत् समवृत्या च प्रजाः पालयेत् । एवं

समस्तलोकशास्तुं समर्थो भवति। यथा सूर्यः विभिन्नासु ऋतुषु यथाकालं शीतलः प्रचण्डश्च भवति तथैव राज्ञापि व्यवहर्त्तव्यम्।

व्याख्या—जो राजा आवश्यकतानुसार मृदु अथवा उग्र होता है वह अपनी सन्तुलित बुद्धि के कारण शासन करने में सफलता पाता है। भीम को सदैव अपनी भुजाओं के बल का गर्व है जो कार्यसिद्धि में बाधक है। अतः शास्त्रानुकूल आचरण द्वारा कार्यसिद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

टिप्पणी—**यः समवृत्तिः**—वृत्+क्तिन् भावे वृत्तिः समा वृत्तिः अस्य—(बहुव्रीहि)। (द्रष्टव्य—विभज्य भक्त्या समपक्षपातया—प्र० स० श्लो० ११) 'मेदिनीपतिः' का विशेषण है। **समये**—अवसरे। **मार्दवम्**—मृदोः भावः इति मृदु+अण् भावे 'मार्दवम्' 'उपैति' का कर्म है। **उपैति**—मृदुतां भजते उप्+इ+लट् ति। 'मेदिनीपतिः' इसका कर्त्ता है। **तिग्मताम्**—तेजयतीति तिग्मम् (तिज्+म) यहाँ 'मव्' प्रत्यय लगेगा। तस्य भावः इति तिग्म+तल् स्त्रियाम् तिग्मता ताम् 'तनोति' का कर्म है 'तिग्मं तीक्ष्णं खरम्' इत्यमरः। **तनोति**—विस्तारयति। **स मेदिनीपतिः**—तादृशः राजा मेदिन्याः पतिः (षष्ठी तत्पुरुष) 'गोत्रा कुः पृथिवी क्ष्मावनिमेदिनी मही' इत्यमरः। **विवस्वानिव**—सूर्यः इव विवस्ते—इति वि+वस्+क्विप् कर्त्तरि=विवस् तत् विवः अस्ति अस्येति विवस्+मतुप्—विवस्वान्। विव—किरण प्रकाश—जिसके पास किरण अथवा प्रकाश हो। 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' सूत्र से अर्थात् मकारान्त और अकारान्त तथा मकार और अकार उपधावाले शब्दों में यवादिगण के शब्दों को छोड़कर लगने वाले 'मतुप्' प्रत्यय के 'म्' के स्थान पर 'व्' हो जाता है। यहाँ पर 'म्' के स्थान पर 'व्' हो गया। 'विवस्वान्' में स् पदान्त नहीं है क्योंकि 'विवस्' एक पद नहीं है, भसंज्ञक है। अतः 'विवोवान्' न होकर 'विवस्वान्' रूप ही रहेगा। 'विवस्वान्' 'अधितिष्ठति' का कर्त्ता है। 'भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः' इत्यमरः। **ओजसा**—तेजसा करणे तृतीया। 'ओजो दीप्तौ बले' इत्यमरः। **लोकम्**—भुवनं 'लोकस्तु भुवने जने' इत्यमरः। 'अधितिष्ठति' का कर्म है। 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' सूत्र से 'लोक' में द्वितीया हुई है अर्थात् अधि, पूर्वक शी,

स्था और आस् धातुओं के योग में द्वितीया का प्रयोग होता है। अधितिष्ठति —अधि+स्था+लट् ति। 'मेदिनीपतिः' और 'विवस्वान्' इसके कर्त्ता हैं। द्रष्टव्य—'तेजः क्षमावतैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः' शिशु० २,८३। 'मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते' शिशु० २-८५। 'मृदुर्भवत्यवज्ञातस्तीक्ष्णदुद्विजते जनः। काले काले तु सम्प्राप्ते मृदुस्तीक्ष्णेऽथवा भवेत्'। (म० भा० वनपर्व २८) 'मृदुहि राजा सततं लङ्घ्यो भवति सर्वशः। तीक्ष्णाच्चोद्विजते लोकस्तस्मादुभयमाश्रय। (महाभारत)

(इ—एति, एतु, इयाय, अगात्, एष्यति। तन्—तनोति—तनुते, तनोतु—तनुताम्, तनुयात्—तन्वीत, अतनोत्—अतनुत, ततान—तेने, अतनीत्—अतनिष्ट—अतत। स्था—तिष्ठति, तिष्ठतु, अतिष्ठत्, तिष्ठौ, अस्थात्, स्थास्यति)।

वाच्यपरिवर्तनः—येन समवृत्तिना समये मार्दवमुपेते तथा च तिग्मता तन्यते। तेन महीपतिना विवस्तेव ओजसा लोकोऽधिष्ठीयते ॥३८॥

उक्ताऽन्यथाकरणेऽनिष्टमाह—

अजितेन्द्रिय के पास लक्ष्मी नहीं ठहर सकती—

क्व चिरायपरिग्रहः श्रियां क्व च दुष्टेन्द्रियवाजिवश्यता।
शरदभ्रचलाश्चलेन्द्रियैरसुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः ॥३९॥

अन्वयः—श्रियां चिराय परिग्रहः क्व, दुष्टेन्द्रिय-वाजिवश्यता च क्व। हि शरदभ्रचलाः बहुच्छलाः श्रियः चलेन्द्रियैः असुरक्षाः।

क्वेति। श्रियां सम्पदां चिराय परिग्रहः स्वायत्तीकरणं क्व। इन्द्रियाणि वाजिन इवेति समासः। दुष्टानाममार्गधाविनामिन्द्रियवाजिनां वश्यो वशंगतस्तस्य भावः तत्र क्व। नोभयमेकत्र तिष्ठतीत्यर्थः। कुतः। हि यस्माच्छरदभ्रवच्चलाश्चञ्चला। किञ्च बहुच्छला बहुव्याजाः बहुरन्ध्रा इति यावत्। 'छलं तु स्खलिते व्याजे' इति विश्वः। श्रियः सम्पदः। चलेन्द्रियैरजितेन्द्रियैरसुरक्षा रक्षितुमशक्याः। कथञ्चित् प्राप्ता अपि श्रियो नाविनीतेषु तिष्ठन्तीत्यर्थः वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलंकारः ॥३९॥

हिन्दी अनुवाद—कहाँ लक्ष्मी का चिरकाल तक अपने वश में रखना और कहाँ दुष्ट इन्द्रियरूपी घोड़ों को अधीनता। क्योंकि शरद ऋतु के बादलों के समान चंचल और अनेक छलवाली लक्ष्मी चचलेन्द्रिय पुरुषों द्वारा सुरक्षित नहीं रखी जाती।

English Translation—Where is possession of Fortune for long and where is subjection to the wicked horses of organs ? For, fortunes fickle like autumn clouds and consisting of many excuses cannot be retained by those whose senses are fickle.

संस्कृतभावार्थः—यावदिन्द्रियाणि न स्वायत्तीकृतानि तावत् श्रियं रक्षितुं कोऽपि न समर्थः। लक्ष्मीः निसर्गतश्चंचला बहुच्छला च भवति येन केन प्रकारेण निर्याति। अतो जनः सदैव जितेन्द्रियो भवेत् येन लक्ष्मीः सुस्थिरा स्यात्।

व्याख्या—जो लोग इन्द्रियों के वशीभूत होते हैं उनके पास लक्ष्मी चिरकाल तक नहीं ठहरती। क्योंकि वह शरदऋतु के मेघों के समान चंचल है और अपने निकलने का बहाना ढूंढ़ती रहती है। इसलिए अजितेन्द्रिय व्यक्ति उसे सुरक्षित नहीं रख सकता। भोग अत्यन्त क्रोधी हैं अतः लक्ष्मी को स्थिर रखने के लिए उन्हें क्रोध का परित्याग कर शान्तिपूर्वक समस्या पर विचार करना चाहिए।

टिप्पणी श्रियं—सम्पदाम् कृद्योगे कर्मणि षष्ठी। **चिराय**—चिरं कालं व्याप्त 'अत्यन्तसंयोगे द्वितीया' 'विभक्तिप्रतिरूपक अव्यय'। 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः' इत्यमरः। **परिग्रहः**—परि+ग्रह् +अप् भावे कर्त्ता है 'भवतिः का। 'पत्नी परिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः' इत्यमरः। **क्व**—कुत्र। **दुष्टेन्द्रियवाजिवश्यता च क्व**—इन्द्रियाणि वाजिन इव (उपमित समास) 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' से उपमित समास हुआ। दुष्टाश्च ते इन्द्रियवाजिनः कर्मधारय तेषां वश्यता (षष्ठी तत्पुरुष)। **दुष्ट**—दुष्+क्त कर्त्तरि। **वजति गच्छतीति**—वज्+णिनि कर्त्तरि।

इन्द्रियाणि—इन्द्रस्य इमानीति इन्द्र+घ (इच्)। **वशंगतः वश्यः**—(वश् +यत्) तस्यभावः इति वश्य+तल् स्त्रियाम्—वश्यता। **दुष्टेन्द्रिय-वाजिनां वश्यता** (षष्ठी तत्पुरुष) 'इन्द्रियों की तुलना घोड़ों से की गई है क्योंकि दोनों ही वश के बाहर हैं।' द्रष्टव्य—'इंद्रियाणि हयानाहुः'। "घोटके वीततुरगतुरंगाश्वतुरंगमाः। वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धव-सप्तयः॥" इत्यमरः। **क्व..... क्व**—'चिरायश्रीपरिग्रह' तथा 'दुष्टेन्द्रियवाजि-वश्यता' इन दोनों बातों में एक बड़ी भारी विषमता प्रदर्शित करने के लिए दो क्व प्रयुक्त हुए हैं। **हि**—यतः। **शरदभ्रचलाः**—न भ्रश्यतीति अभ्रम् (भ्रंश्+डः) यद्वा अपः बिभर्त्तीति अभ्रम् [अप्+भृ+ क (अ) 'अभ्रं मेघो वारिवाहः स्तनयित्नुर्वलाहकः' इत्यमरः। चलन्तीति चलाः (पचाद्यच्)। शरदः अभ्राणि (ष० तत्पु०) तानीव चलाः (उपमानकर्मधारय) 'उपमानानि सामान्यवचनैः' अर्थात् उपमान साधारण धर्मों में साथ समास बनाते हैं—इस सूत्र से 'उपमान कर्मधारय' हुआ है। 'श्रियः' का विशेषण है। द्रष्टव्य—'शरदम्भुधरच्छायागत्वर्यौ यौवनश्रियः' (किरात० ११)। **बहुच्छलाः**—विशेषव्याजयुक्ताः बहूनि छलानि यासाम् ताः (बहुव्रीहि)। 'श्रियः' का विशेषण। 'छलं तु स्खलिते व्याजे' इति विश्वः। **श्रियः**—सम्पदः। **चलेन्द्रियैः**—चलानि इन्द्रियाणि एषाम् (बहुव्रीहि) तैः। अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। विशेषण पद विशेष्य के रूप में प्रयुक्त हुआ है—'विशेषणमात्र-प्रयोगो विशेष्यप्रतिपत्तौ'—वामन। द्रष्टव्य—'दुराराध्या हि राजलक्ष्मीः आत्मविद्भिरपि राजभिः' मुद्राराक्षस तृतीय अंक। **असुरक्षाः**—सुखेन रक्ष्यन्ते इति सु+रक्ष्+खल् कर्मणि—सुरक्षाः न तथा इति असुरक्षाः नञ् तत्पुरुष। वास्तव में 'श्री' 'असुरक्षा' होने के कारण चला है। वाक्यार्थ हेतुक काव्य-लिङ्ग अलंकार—तल्लक्षणं तूक्तं काव्यप्रकाशे—'काव्यलिंगं हेतोर्वाक्य-पदार्थता' अर्थात् हेतु का वाक्यार्थ रूप में कथन करना काव्यलिंग अलंकार होता है।

(ग्रह्—गृह्णाति—गृह्णीते, गृह्णातु—गृह्णीताम्, गृह्णीयात्—गृह्णीत, अगृह्णात्—अगृह्णीत, जग्राह—जगृहे, अग्रहीत्—अग्रहीष्ट।)

वाच्यपरिवर्तनः—श्रियां परिग्रहेण चिराय क्व (भूयते), दुष्टेन्द्रियव-

श्यतया च क्व। हि शरदभ्रचलाभिः बहुच्छलाभिः श्रीभिः चलैरिन्द्रियैः असुरक्षाभिः (भूयते)।

क्रोधस्य दुष्टतामुक्त्वा तस्य त्यागमुपदिशति—

क्रोध के दोष को कहकर उसके परित्याग का उपदेश दे रहे हैं। अनवसर पर क्रोधाभिव्यक्ति अनुचित है :—

किमसामयिकं वितन्वता मनसः क्षोभमुपात्तरंहसः।
क्रियते पतिरुच्चकैरपां भवता धीरतयाऽधरीकृतः ॥४०॥

अन्वयः—उपात्तरंहसः मनसः असामयिकं क्षोभं वितन्वता भवतः धीरतया अधरीकृतः अपां पति किम् उच्चकैः क्रियते।

किमिति। उपात्तरंहसः प्राप्तत्वरस्य मनसः। समयोऽस्य प्राप्तः सामयिकः। 'समस्यस्तदस्य प्राप्तम्' इति ठञ्। स न भवतीत्यसामयिकस्तमप्राप्तकालं क्षोभं वितन्वता भवता धीरतया धैर्यगुणेन 'मनसो निर्विकारत्वं धैर्यं सत्स्वपि हेतुषु' इति रसिकाः। अधरीकृतस्तिरस्कृतः। प्रागिति शेषः। अपां पतिः समुद्रः किंकिमर्थमुच्चकैरधिकः क्रियते। न पराजितं पुनरुच्चकैः कुर्यादिति भावः। अत्र वितन्वतेति भीमविशेषणत्वेन अपाम्पतिपदार्थस्योचैः करणे हेतुत्वोक्त्या काव्यलिङ्गमलंकारः ॥४०॥

हिन्दी अनुवाद—अत्यन्त वेगवान् मन के असामयिक क्षोभ को व्यक्त करते हुए आपके द्वारा धैर्य से नीचा दिखाया गया समुद्र श्रेष्ठ क्यों किया जा रहा है।

English Translation—Why is the ocean once made low through calmness (now) is being made superior (to you) by showing an untimely agitation of the mind that has acquired haste ?

संस्कृतभावार्थः—पूर्वं त्वया धैर्ये समुद्रोऽपि जितः। एतावद्दिनपर्यन्तमनेकविधेषु धैर्यध्वंसकेषु दुःखेष्वापतत्स्वपि त्वं धीरतां न त्यक्तवानतो धैर्ये

अप्रतिमोऽसि। परञ्चाधुना त्वमनवसरे मनोविकारमवाप्य विपरीतमाचरसीति युधिष्ठिरस्याभिप्रायः।

व्याख्या—तुम्हारा आत्मसंयम लोकप्रसिद्ध है क्योंकि कष्ट के इतने दिन तुमने चुपचाप बिताये। इस दृष्टि से समुद्र भी तुम्हारी समता नहीं कर सकता क्योंकि ज्वार के समय उसमें बड़ी-बड़ी लहरें आती हैं जिससे वह अपने अधिकार के बाहर चला जाता है। किन्तु अब अनवसर पर क्षोभ व्यक्त करके तुमने समुद्र को अपने से ऊँचा सिद्ध कर दिया। तुम किसी भी समय क्षुब्ध हो सकते हो, पर समुद्र तो निश्चित समय पर ही क्षुब्ध होता है।

टिप्पणी—**उपात्तरंहसः**—उप + आ + दा + क्त कर्त्तरि उपात्तः, उपात्तः रंहः अनेन (बहुव्रीहि) तस्य 'मनसः' का विशेषण है। आ+दा+क्त 'अच् उपसर्गात्तः' सूत्र से 'आत्त' हो जाता है जिसका अर्थ है स्वरान्त उपसर्ग के बाद आने वाले 'दा' धातु स्वर के स्थान में 'त्' ग्रहण करता है 'त' से आरंभ होने वाला प्रत्यय बाद में हो। **मनसः**—शेषे षष्ठी इसका सम्बन्ध 'क्षोभ' से है। **असामयिकं**—अकालिकम् सम+इ+अच् कर्त्तरि समयः समयः प्राप्तः अस्येति समय+ठञ् सामयिकः न सामयिकः असामयिकः (नञ् तत्पुरुष) 'क्षोभम्' का विशेषण है। 'समयस्तदस्य प्राप्तम्' सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय लगता है। 'रंहस्तरसी तु रयः स्यदः' इत्यमरः। **क्षोभम्**—क्षुभ् +घञ् भावे क्षोभः तम्। **वितन्वन्**—वि+तन्+लटः स्थाने शतृ—वितन्वन् तेन 'भवता' का विशेषण—प्रकटयता। **भवता**—त्वया भीमेनेति भातीति भा+डवतु=भव, तेन अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। **धीरतया**—धैर्येण—धीरः तस्य भावः इति धीर+तल्—धीरता तया करणे तृतीया। द्रष्टव्य—'विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः' कुमारसंभव। अर्थात् विकार का कारण उपस्थित रहते हुए भी जिनके चित्त में विकार न उत्पन्न हो वे ही धीर होते हैं। **अवरीकृतः**—लवुकृतः अनधर अनधरः अधरः सम्पद्यमानः इति अधर+च्वि (अभूततद्भावे) कृ+क्त कर्मणि। गति तत्पुरुष। 'अस्य च्वौ' सूत्र से 'च्वि' लगने के कारण 'अधर' का '—अधरी' हो गया है। **अपां**—जलानाम् 'अप्' शब्द नित्य स्त्रीलिंग तथा बहुवचन में प्रयुक्त होता है। शेषे

षष्ठी। इसका सम्बन्ध 'पति' से है। **पतिः**—स्वामी। **अपांपतिः**—समुद्रः इति यावत् किम्—प्रश्नार्थेऽव्ययम्। **उच्चकैः क्रियते**—उच्चैः+अकच् स्वार्थे। 'किं पृच्छायां जुगुप्सने' इत्यमरः। **क्रियते**—कृ+लट् ते कर्मणि। अनुक्ते कर्त्ता है। 'भवता' 'रत्नाकरो जलनिधिर्यादःपतिरपांपतिः' इत्यमरः। पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार—अपांपतिः उच्चैः क्रियते—समुद्र के ऊँचा किये जाने का कारण 'क्षोभं वितन्वता' पद है ।।४०।।

(कृ—करोति—कुरुते, करोतु—कुरुताम्, अकरोत्—अकुरुत, चकार—चक्रे, अकार्षीत्—अकृत, करिष्यति—करिष्यते)।

वाच्यपरिवर्तनः—उपान्तरंहसः मनसः असामयिकं क्षोभं वितन्वन् भवान् चीरतया अधरोकृतम् अपांपतिं किमुच्चकैः करोति ।।४०।।

कामादि को वश में न करने वाले मनुष्य का लक्ष्मी शीघ्र ही परित्याग कर चंचला की अपकीर्त्ति पाती है—

श्रुतमप्यधिगम्य ये रिपून् विनयन्ते न शरीरजन्मनः।
जनयन्त्यचिराय सम्पदामयशस्ते खलु चापलाश्रयम् ।।४१।।

अन्वयः—ये श्रुतमधिगम्यापि शरीरजन्मनः रिपून् न विनयन्ते ते खलु अचिराय सम्पदां चापलाश्रयम् अयशः जनयन्ति।

श्रुतमिति। किञ्च। ये श्रुतं शास्त्रमधिगम्यापि शरीरजन्मनः शरीरप्रभवान् रिपून् कामक्रोधादीन्न विनयन्ते न नियच्छन्ति। 'कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि' इत्यात्मनेपदम्। ते खल्वचिराय सम्पदां चापलाश्रयमस्थैर्यनिबन्धनमयशो दुष्कीर्त्तिं जनयन्ति। आश्रयदोषादस्थैर्यं सम्पदां न स्वदोषादित्यर्थः। अजितारिषड्वर्गस्य कुतः सम्पद इति भावः ।।४१।।

हिन्दी अनुवाद—जो शास्त्र का अध्ययन करके भी शरीर से उत्पन्न हुए कामक्रोधादि शत्रुओं का दमन नहीं करते वे निश्चय ही शीघ्र लक्ष्मी के चपलता रूप आधार वाले अपयश को उत्पन्न करते हैं।

English Translation—Verily they, who even having studied the Shastra, do not control the enemies born of their bodies, do quickly cause the infamy of Lakshmi (Fortune) (which is) based upon fickleness.

संस्कृतभावार्थः—ये शास्त्राण्यधीत्यापि कामक्रोधादीन् देहस्थरिपून् निवारयितुं न शक्नुवन्ति ते श्रियामस्थिरतामूलं दुष्कीर्तिं शीघ्रमेव लभन्ते। अजितेन्द्रियसविधे लक्ष्मीर्निवासहेतोर्नागच्छति। अतो लक्ष्म्याः आधारभूतस्य जनस्यैव दोषः न तु लक्ष्म्याः जितेन्द्रियत्वेन लक्ष्म्याः निवासोऽस्माकं सन्निधौ भवेदिति युधिष्ठिरकथनतात्पर्यम्।

व्याख्या—शास्त्रों का भली भाँति अध्ययन करने पर भी जो लोग अरिषड्वर्ग—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य के वशीभूत रहते हैं वे अपयशभोगी होते हैं क्योंकि कहा गया है—

'शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् पुरुष स विद्वान्'।

शास्त्रों का अध्ययन मात्र ही अपेक्षित नहीं है किन्तु शास्त्रानुकूल आचरण करना शास्त्राध्ययन का वास्तविक फल है। महाभारत में लक्ष्मी ने अपने निवास के सम्बन्ध में कहा है—

'वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने।
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे'॥

लक्ष्मी जितेन्द्रिय के पास रहती है। अतः महाराज युधिष्ठिर भीम को उपदेश देते हैं कि जितेन्द्रिय बनने का अभ्यास करो क्रोध को वश में करके स्थिर लक्ष्मी को प्राप्त कर सकते हो, उद्दण्डता से नहीं।

टिप्पणी—ये श्रुतम्—शास्त्रम् 'श्रुतं शास्त्रावधृतयोः' इत्यमरः। अधिगम्य-सम्यगवगत्य; अधि+गम्+ल्यप्। अपि—गर्हा के अर्थ में अव्यय है। शरीर-जन्मनः—शरीरात् जन्म एषाम् (बहुव्रीहि) तान्। 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः। रिपून्—कामक्रोधलोभमदमोहमात्सर्यादीनन्तः शत्रून्।

न विनयन्ते—न नियच्छन्ति वि+नी+लट् अन्ते 'कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि' सूत्र से आत्मनेपद होता है। यहाँ कर्म 'रिपून्' कर्तृस्थ है तथा कर्त्ता के शरीर का भाग भी नहीं है। ते खलु—निश्चयेन। अचिराय—शीघ्रमेव। सम्पदां—श्रियाम्। सम्पद्यन्ते इति सम्+पद+विवप् कर्मणि सम्पदः तासाम्। शेषे षष्ठी इसका सम्बन्ध 'अयशः' से है। चापलाश्रयम्—चपलस्य भावः इति चपल+अण्—चापलम्; आश्रीयते इति आ+श्रि+अच् कर्मणि—आश्रयः चापलमाश्रयः अस्य (बहुव्रीहि) तत्। 'अयशः' का विशेषण है। अयशः—न यशः इति अयशः नञ् तत्पुरुष कर्म है 'जनयन्ति' का। 'यशः कीर्तिः समज्ञा च' इत्यमरः। द्रष्टव्य—येन श्रियः संश्रयदोषरूढं स्वभावलोलेत्ययशः प्रमृष्टम्' रघु० ६।४१। जनयन्ति—जन्+णिच्+लट् अन्ति इसका कर्त्ता 'ते' है।

(श्रि—श्रयति—श्रयते, शिश्राय—शिश्रिये, अशिश्रियत्—अशिश्रियत, श्रयिष्यति—श्रयिष्यते। नी—नयति—नयते, निनाय-निन्ये, अनैषीत्—अनैष्ट, नेष्यति—नेष्यते। जन्—जनयति, अजनयत्, जनयामास, अजीजनत्, जनयिष्यति।)

वाच्यपरिवर्तनः—यैः श्रुतमधिगम्यापि शरीरजन्मनो रिपवो न विनयन्ते तैः सम्पदां चापलाश्रयमयशश्चिराय जन्यते।

तथा क्रोधात्कार्यहानिरित्याशयेनाह—

क्रोध से कार्य की हानि होती है—

अतिपातितकालसाधना स्वशरीरेन्द्रियवर्गतापनी।
जनवन्न भवन्तमक्षमा नयसिद्धेरपनेतुमर्हति ॥४२॥

अन्वयः—अतिपातितकालसाधना स्वशरीरेन्द्रिय वर्गतापनी अक्षमा। भवन्तं जनवत् नयसिद्धेः अपनेतुं नार्हति।

अतिपातितेति। अतिपातितान्यतिक्रान्तानि कालः समयोऽनुरूपः साधनानि सहायादीनि यया सा तथोक्ता। तापयतीति तापनी। कर्त्तरि ल्युट्। टित्वान्ङीप्।

स्वस्य यच्छरीरमिन्द्रियवर्गश्च तयोस्तापन्यक्षमा क्रोधो भवन्तं जनवत्पृथग्जनमिव । 'तेन तुल्यम्'—इति वति प्रत्ययः । तेनेवार्थी लक्ष्यते । 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' इत्यव्ययम् । नयसिद्धेर्नयसाध्यफलादपनेतुं पृथक्कर्तुं नार्हति । असमयक्रोधस्यात्मसन्तापातिरिक्तं फलं नास्तीत्यर्थः ॥४२॥

हिन्दी अनुवाद—अवसर और सहायकों का अतिक्रमण करने (वाला) अपने देह एवं इन्द्रिय-समूह को जलाने वाला क्रोध साधारण मनुष्य के समान आपको नीति की सिद्धि से दूर नहीं कर सकता ।

English Translation--Anger, that has transgressed time and means, and torments one's own body and the group of organs, can not drag you away like an ordinary man from the success of your policy.

संस्कृतभावार्थः--क्रोधात्कार्यहानिः संभवति । क्रोधः मनःसन्तापं जनयति । कोपो न केवलं कार्यविध्वंसकोऽपि तु शरीरं मनः इन्द्रियाणि च सन्तापयति वस्तुतस्तु अनवसरकोपस्य स्वतापातिरिक्तं न किमप्यन्यत्फलमुपलभ्यते । अतो न्यायपक्षमेवावलम्ब्यासमयक्रोधस्ताज्य इति तात्पर्यम् ।

व्याख्या--उचित समय पर ही क्रोध करना चाहिए । अनवसर पर क्रोध करना सन्तापकारी होता है । अतः धैर्य का अवलम्बन करना उचित है । अधीर मत बनो, नहीं तो पछताना पड़ेगा ।

टिप्पणी—**अतिपातितकालसाधना**--अति+पत्+णिच्+क्त कर्मणि—अतिपातितम्, साध्यते एभिः इति साध्+ल्युट् करणे साधनानि कालश्च साधनानि कालसाधनानि (द्वन्द्व), अतिपातितानि कालसाधनानि अनया (बहुव्रीहि) सा, अतिक्रान्तसमयसहाया 'निवर्त्तनोपकरणानुव्रज्यासु च साधनम्' इत्यमरः । **स्वशरीरेन्द्रियवर्गतापनी**—तापयतीति तापनी तप्+णिच् ल्युट् कर्त्तरि स्त्रियाम् । इन्द्रियाणां वर्गः (वृज्+यत्) (षष्ठी तत्पुरुष) शरीरञ्च इन्द्रियवर्गश्च, स्वौ अथवा स्वस्य शरीरेन्द्रियवर्गो कर्मधारय अथवा षष्ठी तत्पुरुष तयोः तापनी इति स्वशरीरेन्द्रियवर्गतापनी । **अक्षमा**—अशान्तिः,

क्रोधः।—भवन्तं कर्म है 'अपनेतुम्' का। जनवत्—जनेन तुल्यं जनवत्—(जन+वति)। जनेन तुल्यं यथा तथा। 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' सूत्र से अर्थात् जिस तद्धित का सब विभक्तियों में प्रयोग नहीं होता वह अव्यय होता है, जनवत् अव्यय हुआ। 'तेन तुल्यं' सूत्र से यदि क्रिया में तुल्यता होती तो 'वति' लगता है। **नयसिद्धेः**—सिध्+क्तिन् भावे सिद्धिः नयस्य सिद्धिः षष्ठी तत्पुरुष तस्मात्। ध्रुवमपायेऽपादानम्' सूत्र से अपादान में पंचमी हुई है। **अपनेतुं**—अप+नी+तुमुन्, दूरीकर्त्तुम्। न **अर्हति**—अर्ह+लट् ति। अर्ह्—अर्हति, अर्हतु, आनर्ह, आर्हत, अर्हिष्यति ॥४२॥

वाच्यपरिवर्तनः—अतिपातितकालसाधनया स्वशरीरेन्द्रियवर्गतापन्या अक्षमया जनवदभवन्तं नयसिद्धरपनेतुं न अर्ह्यते।

दुष्टः क्रोधः इत्युक्तम् क्षमायाः गुणानाह—

क्रोध का दोष दिखाकर तब क्षमा के गुणों का वर्णन करते हैं—

उपकारकमायतेर्भृशं प्रसवः कर्मफलस्य भूरिणः।
अनपायि निबर्हणं द्विषां न तितिक्षासममस्ति साधनम् ॥४३॥

अन्वयः—आयतेः भृशमुपकारकम् भूरिणः कर्मफलस्य प्रसवः अनपायि द्विषां निबर्हणं तितिक्षासमम् साधनं नास्ति ॥४३॥

उपकारकमिति। आयतेरुत्तरकालस्य भृशमत्यन्तमुपकारकम्। स्थिरफलहेतुरित्यर्थः। भूरिणः प्रभूतस्य कर्मफलस्य। प्रसूयतेऽनेनेति प्रसवः कारणम्। अपायि न भवतीत्यनपायि स्वयमविनश्यदेव द्विषां निबर्हणं विनाशकमेवंगुणकं साधनं तितिक्षासमं क्षमातुल्यं नास्ति। 'क्षान्तिः क्षमा तितिक्षा च' इत्यमरः। 'तिज् निशाने' इति धातोः 'गुप्तिज्किद्भ्यः सन्' इति क्षमार्थे सन् प्रत्ययः। तितिक्षासममित्यनुक्तोपमेया समासे आर्थी लुप्तोपमा, भृशायत्यनपायिशब्दैः साधनान्तरवैलक्षण्याद् व्यतिरेकश्च व्यज्यते। भेदप्राधान्यं उपमानादुपमेयस्याधिक्ये विपर्यये च व्यतिरेकः ॥४३॥

हिन्दी अनुवाद—भविष्य में अत्यन्त उपकारक प्रचुर कर्मफल का उत्पादक, निरुपद्रव शत्रुओं का संहार करने वाला साधन क्षमा के समान दूसरा नहीं है।

English Translation—There is no means like patience, which is highly beneficial in future, the producer of great result in your undertakings and destroyer of enemies while itself in destructible.

संस्कृतभावार्थः—तितिक्षासममन्यत्साधनं न वर्तते। क्षमा वर्तमानसमये इष्टसाधकमागामिसमयस्यात्यर्थमुपकारकं प्रभूतफलस्य कारणम् स्वयं निरुपद्रवं तथा शत्रुविनाशकं साधनमस्ति। अतः क्षमासाधनमेवावलम्बनीयमिति भावः।

व्याख्या—क्षमावलम्बन ही उचित है क्योंकि क्षमा से अनेक लाभ हैं। वर्तमान समय में तथा भविष्य में उपकारक, इष्टार्थसिद्धिदायक तथा शत्रुसंहारक साधन क्षमा ही है। इसके समान श्रेयस्कर दूसरा कोई साधन नहीं दृष्टिगोचर होता।

टिप्पणी—**आयतेः**—'उत्तरः काल आयतिः' इत्यमरः। **भृशम्**—अत्यन्तम्। "अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गादनिर्भरम्" इत्यमरः। **उपकारकम्**—उपकरोतीति उप+कृ+ण्वुल् कर्त्तरि। 'साधनम्' का विशेषण है। **भूरिणः**—'कर्मफलस्य' का विशेषण है। 'प्रचुरं भूरि विज्ञेयं काञ्चनमेव च' इत्यनेकार्थमंजरी। **कर्मफलस्य**—कर्मणः फलम् (ष० तत्पु०) तस्य कृद्योगे कर्मणि षष्ठी। **प्रसवः**—प्रसूयते अनेनेति प्र+सू+अप् करणे। **अनपायि**—अप+इ+अच् अथवा अच् घञ् भावे—अपायः स अस्त्यस्य इति अपाय+इनि मूत्वर्थे—अपायिन् न अपायि अनपायि नञ् तत्पुरुष अथवा अपैति इति अप+इ+णिनि कर्त्तरि—अपायिन् न तथा इति अनपायि 'निबर्हणम्' का विशेषण है। **द्विषाम्**—शत्रूणाम्—कृद्योगे कर्मणि षष्ठी। **निबर्हणम्**—निबर्ह्यते अनेनेति नि+बर्ह्+णिच्+ ल्युट् करणे—निबर्हणम् अथवा निबर्हतीति नि+बर्ह्+णिच् +ल्युट् कर्त्तरि। निबर्हणम्। 'कृत्यल्युटो बहुलम्' सूत्र से 'ल्युट्' होता है। **साधनम्**—साधयति अर्थाननेनेति साध्+ल्युट् करणे अथवा साध्यते अनेनेति साधनम्। 'अस्ति' का कर्त्ता। द्विषां·····साधनम् का तात्पर्य है कि ऐसा साधन जो अविनाशी अर्थात् स्वयं नष्ट न हो और शत्रुओं

का विनाशक हो। **तितिक्षासमं**—तिज्+सन्+अ भावे स्त्रियाम् तितिक्षा; तितिक्षया अथवा तितिक्षायाः समम् तृतीया अथवा षष्ठी तत्पुरुष तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्' सूत्र से तृतीया अथवा षष्ठी विकल्प से होती है। यहाँ गुप्तिजकिद्भ्यः सन्—गुप् तिज् और कित् से सन् प्रत्यय लगता है—सूत्र से तितिक्षा में सन् प्रत्यय है। 'निन्दाक्षमाव्याधिप्रतीकारेषु सन्निष्यते' वार्त्तिक से क्षमा के अर्थ में तिज् 'सन्' ग्रहण करता है। 'साधनम्' का विशेषण है। नास्ति—अस्+लट् ति

(अस्—अस्ति, आसीत्, अभूत्, बभूव)

व्यतिरेकालंकार—तल्लक्षणं तूक्तं काव्यप्रकाशे—'उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः' अर्थात् जहाँ उपमान से उपमेय का आधिक्य वर्णन हो वहाँ व्यतिरेकालंकार होता है। 'तितिक्षासमं' में अनुक्तोपमेय समासगता आर्थी लुप्तोपमा है तथा आयतेः भृशमुपकारकम् और अनपायि विशेषणों से अन्य साधनों को तितिक्षा, जो उपमान है, से कम बताया गया है अतः 'व्यतिरेक' है ॥४३॥

वाच्यपरिवर्तनः—आयतेः भृशमुपकारकेण, भूरिणः कर्मफलस्य प्रसवेन, अनपायिना, द्विषां निबर्हणेन तितिक्षासमेन साधनेन न हि भूयते।

ननु तितिक्षया कालक्षेपे दुर्योधनः सर्वान् राज्ञो वशीकुर्यादित्याह—

तितिक्षा की नीति के कारण अधिक समय व्यतीत होने से दुर्योधन सब राजाओं को यदि वश में कर ले तो इस पर कहते हैं कि वृष्णि लोग जो सुयोधन के मित्र हैं, वास्तव में हमारे साथ हैं।

प्रणतिप्रवणान्विहाय नः सहजस्नेहनिबद्धचेतसः।
प्रणमन्ति सदा सुयोधनं प्रथमे मानभृतां न वृष्णयः ॥४४॥

अन्वयः—मानभृतां प्रथमे वृष्णयः प्रणतिप्रवणान् सहजस्नेहनिबद्धचेतसः नः विहाय सदा सुयोधनं न प्रणमन्ति। अथवा सहजस्नेहनिबद्धचेतसः मानभृतां प्रथमे वृष्णयः प्रणतिप्रवणान् नः विहाय·····॥४४॥

प्रणतीति । सहजस्नेहेनाकृत्रिमप्रेम्णा निवद्धचेतसोऽस्मासु गाढं लग्न-चित्ताः । सुयोधने तु न तथेति भावः । किं च मानभृतामहङ्कारिणां प्रथमेऽग्रेसराः । सुयोधनस्यापीति भावः । वृष्णयो यादवाः प्रणतिप्रवणान्प्रणामपरान् । सुयोधनस्तु न तथेति भावः । नोऽस्मान् विहाय सुयोधनं सदा न प्रणमन्ति न नमन्ति नानुसरन्ति । किन्तु कार्यकाले त्यक्षान्त्येवेत्यर्थः । सति यादवविग्रहे न किञ्चिदस्माकमसाध्यं भवेदिति भावः । अनेकपदार्थहेतुकं काव्यलिंगम् अलंकारः ।।४४।।

हिन्दी अनुवाद—स्वाभाविक स्नेह से बँधे हुए चित्त वाले तथा स्वाभिमानियों में अग्रणी वृष्णि (यादव) लोग अभिवादनशील हमें छोड़कर सुयोधन को सदा प्रणाम नहीं कर सकते ।।४४।।

English Translation—The Vrishnis, the foremost of those who value self-respect, with their hearts attached to us by natural affection, cannot always bow down to Suyodhana forsaking us who are inclined to bow down to them.

संस्कृतभावार्थः—यदा दुर्योधनेन सहास्माकं समरो भविष्यति तदा तस्य सहायाः अपि अस्मत्पक्षं ग्रहीष्यन्ति । सर्वप्रथमं तु मनस्विनोऽहंकारिणश्च यादवा उद्धतं दुर्योधनं त्यक्त्वा विनयनम्रानस्माननुगमिष्यन्ति ।

व्याख्या—सरल ।

टिप्पणी—**मानभृतां प्रथमे**—मनस्विनामग्रगण्यः; मानं बिभ्रति ये तेषां निर्धारणे षष्ठी 'यतश्च निर्धारणं' सूत्र से अर्थात् अपने समुदाय से किसी वस्तु की जहाँ विशेषता दिखाई जाती है वहाँ षष्ठी अथवा सप्तमी का प्रयोग होता है अतः 'मानभृतां' में षष्ठी हुई है । मान+भृ+क्विप् कर्त्तरि । **वृष्णयः**—वृष्णेः गोत्रापत्यानि पुमांसः वृष्णयः—वृष्णिवंशसमुद्भूताः । वृष्णि कृष्ण और बलराम के पूर्वज थे, लक्षणा शब्दशक्ति द्वारा यहाँ वंशजों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । द्रष्टव्य—'रघुवंशियों' के लिए 'रघु' का प्रयोग । 'रघूणा-

मन्वयं वक्ष्ये' (रघुवंश) तथा 'यदुवंशियों' के लिए 'यदु' का प्रयोग—'निरुध्यमाना यदुभिः कथञ्चित्' (शिशुपालवध)। इन उदाहरणों पर भट्टोजी का कथन है 'रघुयदुशब्दानां तदपत्ये लक्षणया' लक्षणा के अभाव में 'वृष्णिवंशीय' के लिए 'इतश्चानिञः' सूत्र से 'वार्ष्णेय' होगा। सूत्रार्थ—इकारान्त .दो 'अच्' अक्षरों वाले पद से अपत्य के अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय लगता है, किन्तु इञन्त से नहीं होता। **प्रणतिप्रवणान्**—प्रणता—विनम्र। 'प्रवणं क्रमनिम्नोर्व्या प्रह्वेना तु चतुष्पथे' इत्यमरः। प्र+नम्+क्तिन् भावे प्रणतिः, प्रणतौ, प्रवणाः तान् 'नः' का विशेषण है। प्रवण—नम्र के अर्थ में भी आता है यथा—'प्रणय-प्रवणं चेतो विगुणेष्वपि बन्धुषु' इस पद से यादवों का युधिष्ठिर के पक्ष में रहने का कारण लक्षित होता है। **सहजस्नेहनिबद्धचेतसः**—सह जायते असौ सहजः (सह्+जन्+ड कर्त्तरि)—स्वाभाविकः। स्निह्+घञ् भावे—स्नेहः—प्रेम; नि+बन्ध्+क्त कर्मणि—निबद्धम्। सहजश्चासौ स्नेहः (कर्मधारय) तेन निबद्धं चेतो येषां ते तान् वा (बहुव्रीहि) 'वृष्णयः' अथवा 'नः' का विशेषण। 'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः। **नः अस्मान् विहाय**—वि+हा+ल्यप्—त्यक्त्वा 'नः' विहाय का कर्म है। **सदा**—सर्व+डि+दा स्वार्थे अव्यय। सुयोधनं—द्रष्टव्य श्लोक ७, प्र० सर्ग। 'प्रणमन्ति' का कर्म है। **न प्रणमन्ति**—प्र+नम्+लट् अन्ति। 'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य' सूत्र से प्रणमन्ति में 'न' के स्थान पर 'ण' हो गया है। 'सहजस्नेहनिबद्धचेतसः', 'प्रणतिप्रवणान्' तथा 'मानभृतां प्रथमे' कारण है 'सदा न प्रणमन्ति' का। इसलिए अनेक पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है।

(हा—जहाति, जहीतः, जहति, जहतु, अजहात्, जहौ, अहैषीत्, हास्यति। नम्—नमति, नमतु, ननाम, अनंसीत्, नंस्यति) ॥४४॥

वाच्यपरिवर्तनः—मानभृतां प्रथमैः वृष्णिभिः प्रणतिप्रवणान् सहजस्नेहनिबद्धचेतसः नः विहाय सदा सुयोधनो न प्रणम्यते।

किञ्च कारणान्तरमाह—

दूसरा कारण बतलाते हुए कहते हैं कि उनके मित्र अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए दुर्योधन की सहायता करते हैं—

सुहृदः सहजास्तथेतरे मतमेषां न विलङ्घयन्ति ये ।
विनयादिव यापयन्ति ते धृतराष्ट्रात्मजमात्मसिद्धये ।।४५।।

अन्वयः—एषां ये सहजाः सुहृदः तथा इतरे मतं न विलंघयन्ति ते आत्मसिद्धये धृतराष्ट्रात्मजं विनयात् इव यापयन्ति ।

सुहृद इति । किं चैषां वृष्णीनां ये सहजाः । 'सहजाताः मातृपितृपक्षा इत्यथः । "अन्येष्वपि दृश्यते' इति डप्रत्ययः । सुहृदो मित्राणि तथेतरे कृत्रिमसुहृदश्च मतं वृष्णिपक्षं न विलंघयन्ति नातिक्रमन्ति । ते द्वयेऽपि नृपाः दुर्योधनोपजीविनोऽपीति भावः । आत्मसिद्धय आत्मजीवनार्थं धृतराष्ट्रात्मजं दुर्योधनं विनयादानुकूल्यादिव यापयन्ति कालं गमयन्ति । कार्यकाले ते वृष्णिपक्षप्रवेशिन एवेत्यर्थः । यातेर्ण्यन्ताल्लट् । 'अर्त्तिह्री—'.इत्यादिना पुगागमः ।।४५।।

हिन्दी अनुवाद—इन वृष्णियों के जो स्वाभाविक मित्र हैं तथा दूसरे (कृत्रिम मित्र) इनके मत का विरोध नहीं करते वे सब अपना काम बनाने के लिए दुर्योधन को मानो विनय से (निभाते हुए) समय बिता रहे हैं ।।४५।।

English Translation—Those who are the friends of the Vrishnis by nature, also other who do not diverge from their opinion, help Dhritrashtra's son as if through humility to serve their own purpose.

संस्कृतभावार्थः—वृष्णीनां मित्राणि भविष्यन्त्येवास्मत्पक्षे । तेषां ये मित्रभूतास्तथा बान्धवाः एवं तेषां मतमनुसारिणः सन्ति ते सर्वे स्वकार्यसाधनार्थमेव कपटस्नेहमाचरन्तः दुर्योधनस्य साहाय्यं कुर्वन्ति । वस्तुतः कार्यकाले समुपस्थिते तेऽप्यस्माकं पक्षे एवागमिष्यन्तीति भावः ।

व्याख्या—जिनका इन वृष्णियों के साथ सहज संबंध है तथा दूसरे लोग जो इनके मत का विरोध नहीं करते उन सबका दुर्योधन के प्रति विनम्र व्यवहार कृत्रिम तथा स्वार्थसिद्धि के लिए है । अतः समय पड़ने पर वे दुर्योधन का पक्ष छोड़कर हमारे पक्ष में आ सकते हैं ।

टिप्पणी—**एषां**—यादवानां । **ये सहजाः**—सह जाता इति सह्+जन्+ड कर्त्तरि सहजाः 'सुहृदः' का विशेषण । 'अन्येष्वपि दृष्यते' सूत्र से अर्थात् अन्य स्थलों में भी 'ड' प्रत्यय आता है । यहाँ पर 'ड' प्रत्यय प्रयुक्त हुआ है । **सुहृदः**—मित्राणि सुशोभनं हृदयमेषामिति सुहृदः कर्त्ता है 'विलंघयन्ति' का । तथा—'अपि' के अर्थ में अव्यय है । **इतरे**—'सुहृदः' का अर्थ है । कृत्रिम स्वार्थ-साधनार्थ जो मित्र बन जाते हैं । 'विलंघयन्ति' का कर्त्ता है । मित्र तीन प्रकार के कहे गये हैं—सहज, प्राकृत और कृत्रिम । सहज मित्र वे हैं जो रक्त से सम्बद्ध हों; जैसे माता अथवा पिता के वंशज । प्राकृत मित्र वे हैं जिनके राज्य की सीमा मिली हुई न हो । जो अपने स्वार्थ-साधन के लिए मित्र होते हैं, वे कृत्रिम हैं । इसी प्रकार सहज, प्राकृत और कृत्रिम शत्रु भी होते हैं । स्वार्थों के संघर्ष के कारण लोग शत्रु बन जाते हैं । द्रष्टव्य—सखागरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः । स्याताम् अमित्रौ मित्रे च सहजप्राकृतावपि ।।—माघ २।६६. 'कामन्दक' के अनुसार शत्रु दो ही प्रकार के होते हैं, सहज और कृत्रिम । प्राकृत शत्रु को वहाँ कोई स्थान नहीं । **मतं**—अनुशासनं । **न विलंघयन्ति**—वि+लंघ्+णिच्+लट् अन्ति । 'सुहृद' तथा 'इतरे' इसके कर्त्ता हैं । **ते आत्मसिद्धये**—स्वार्थसिद्ध्यर्थं—आत्मनः सिद्धिः (ष० तत्पु०) तस्यै । तादर्थ्ये चतुर्थी । 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' सूत्र से । **धृतराष्ट्रात्मजं**—आत्मनः जातः आत्मन्—जन्+ड कर्त्तरि (भूते) धृतराष्ट्रस्य आत्मजः (षष्ठी तत्पुरुष) तम् । 'आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्र' इत्यमरः । 'वयस्यः स्निग्धः सवया अथ मित्रं सखासुहृत्' इत्यमरः । 'समानोदर्यसोदर्यसगर्भ्यसहजा समा' इत्यमरः । **विनयादिव**—वि+नी+अच् भावे विनयः तस्मात् । यहाँ 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' सूत्र से पंचमी हुई है । इव—उत्प्रेक्षार्थे क्योंकि विनय वास्तविक न होकर 'काल्पनिक' है । **यापयन्ति**—या+ णिच्+लट् अन्ति । 'या' धातु यहाँ प्राप्त्यर्थ में है । गत्यर्थक सभी धातुओं का प्रयोग प्राप्त्यर्थ में हो सकता है । 'अर्तिह्वीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुक् णौ' सूत्र से 'या' धातु से पुक् (प्) का आगम हो गया है । सूत्रार्थ—णिच् के परे रहने पर ऋ, व्ली, ह्री, री, क्नूयी, क्ष्मायी तथा आकारान्त धातुओं से पुक् (प्) का आगम हो जाता

है । यापयन्ति का अर्थ है इष्टार्थं प्रापयन्ति अर्थात् इष्टार्थेन योजयन्तीत्यर्थः । अतः 'त धृतराष्ट्रात्मजं प्रणमन्ति' में अणिकर्त्ता की कर्मसंज्ञा 'गतिबुद्धि-प्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्त्ता स णौ' सूत्र से हो जायगी अर्थात् गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, प्रत्यवसानार्थक शब्द कर्म वाली एवं अकर्मक धातुओं का अणिजन्त दशा में जो कर्त्ता रहता है वह उनकी णिजन्त दशा में कर्म हो जाता है । मल्लिनाथ के अनुसार 'यापयन्ति' का अर्थ 'कालं यापयन्ति' होगा किन्तु इस अर्थ में 'धृतराष्ट्रात्मजं यापयन्ति' का अर्थ युक्तिसंगत नहीं ठहरता । इस श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार है ।।४५।।

वाच्यपरिवर्तनः—एषां सुहृद्भिः सहजैस्तथेतरैर्मतं न विलंघ्यते तैरात्म-सिद्धये धृतराष्ट्रात्मजो याप्यते ।।४५।।

किञ्च नायमभियोगकालः इत्याशयेनाह—

यह युद्ध करने का समय नहीं है यदि अवधि व्यतीत होने के पूर्व युद्ध छिड़ जायगा तो ये राजा लोग अपने विरोधी हो जायँगे—

अभियोग इमान् महीभुजो भवता तस्य कृतः कृतावधेः ।
प्रविघाटयिता समुत्पतन् हरिदश्वः कमलाकरानिव ।।४६।।

अन्वयः—कृतावधेः तस्य भवता कृतः अभियोगः इमान् महीभुजः हरिदश्वः कमलाकरानिव समुत्पतन् प्रविघाटयिता ।

अभियोग इति । कृतावधेः परिभाषितकालस्य । 'अवधिस्त्ववसाने स्यात् सीम्निकाले विलेऽपि च' इति विश्वः । तस्य सुयोधनस्य । कर्मणि षष्ठी । भवता कृतः । अवधित इति शेषः । अभियोगः आर्द्राभिभव इति यावत् । 'अभियोगस्तु शपथे स्यादाद्रे च पराभवे' इति विश्वः । इमान् पूर्वोक्तान् महीभुजो राज्ञो हरिदश्व उष्णरश्मिः कमलाकरानिव समुत्पतन्नुद्यन्नेव प्रविघाटयिता भेत्स्यति । घाटयतेश्चौरादिकाल्लुट् । भौवादिकस्य तु 'मितां ह्रस्वः' इति ह्रस्वत्वं स्यात् ।।४६।।

हिन्दी अनुवाद—(वनवास की) अवधि निर्धारित करने वाले उसके साथ

आपके द्वारा किया गया आक्रमण इन राजाओं को हमारे पक्ष से फोड़ देगा जैसे सूर्य उदय होते हुए कमलसमूह को प्रस्फुटित कर देता है।

English Translation—The attack made by you on him who has appointed a time limit will totally estrange these kings like the rising sun opening the lotus buds.

संस्कृतभावार्थः—दुर्योधनेन समं या समयमर्यादा अस्माभिर्विहिता तद्रक्षणमुचितमेव। समयमनपेक्ष्य यदि विग्रहं कुर्मस्तदा सर्वे राजानोऽस्मान् नीतिप्रतिकूलानवगत्यास्मद्विन्ना भविष्यन्ति। यथा सूर्योदये कमलवनानि स्वयमेव प्रस्फुटन्ति तथैव शत्रुष्वाक्रमणेनस्मत्पाक्षपातिनो नृपतयोऽपि अस्मान्विहायारिपक्षमवलम्बिष्यन्ते। अस्माकं विजयाशा तु पराजये एव परिणता भविष्यतीति तात्पर्यम्।

व्याख्या—यदि वनवास की अवधि पालन करने के पूर्व ही आक्रमण करोगे, तो प्रतिज्ञा-भंग का दोषारोपण होगा। राजा लोग हमीं को दोषी समझकर हमारा परित्याग कर देंगे। हममें नैतिक बल का अभाव होने से पक्ष क्षीण हो जायगा। अतः अभी मौनावलम्बन ही उचित है।

टिप्पणी—कृतावधेः—कृतः अवधिः येन स (बहुव्रीहि) तस्य। (अव+धा+कि अधिकरणे) 'तस्य' का विशेषण है। यहाँ कृत् शब्द 'अभियोग' के योग में होने से कर्म में षष्ठी हुई है 'कृद्योगे कर्मणि षष्ठी'। दुर्योधन से १३ वर्ष के वनवास की प्रतिज्ञा हो चुकी है अतः इस बीच युद्ध नहीं छेड़ा जा सकता। ऐसा करने से दोषारोपण हम पर ही होगा इससे अन्य राजा भी हमारे विरुद्ध हो जायेंगे अतः अवधि की प्रतीक्षा करना उचित है। तस्य—दुर्योधनस्य। भवता—त्वया भीमेन। कृतः—कृ+क्त कर्मणि। 'अभियोगः' का विशेषण। अभियोगः—अभि+युज्+घञ् भावे। नया या तात्कालिक आक्रमण। 'अभियोगः आर्द्राभिनवः'—मल्लिनाथ। 'प्रविघाटयिता' का कर्त्ता। 'अवधिस्त्ववसाने स्यात्सीम्निकाले विलेऽपि च' इत्यमरः। 'अभियोगस्तु शपथे स्यादार्द्रे च पराभवे' इति विश्वः। इमान् महीभुजः—महीं भुङ्क्ते इति मही+भुज्+क्विप् कर्त्तरि—महीभुक्। द्रष्टव्य—'बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम्' रघुवंश। तान्

'प्रविघाटयिता' का कर्म। हरिदश्वः—हरति तमः स्वतेजसा इति हरित् हरितः अश्वाः अस्य बहुव्रीहि हरिदश्व—सूर्य। 'भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः' इत्यमरः। द्रष्टव्य—'हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः' रघुवंश। 'अभियोगः' का उपमान। जैसे उदीयमान सूर्य कमल की पंखुड़ियों को पृथक्-पृथक् कर देता है वैसे ही हमारा नवीन आक्रमण राजाओं को हमसे पृथक् कर देगा। कमलाकरानिव—आकुर्वन्ति अस्मिन् आकर आ+कृ+घ अधिकरणे समूहः। कमलानाम् आकराः (षष्ठी तत्पुरुष) तान्। 'आकरो निवहे खनौ' इति हेमचन्द्रः। कमलाकर—सरोवर अथवा कमलसमूह। कमलसमूह ही यहाँ पर उपयुक्त है, क्योंकि सूर्य कमलों को प्रस्फुटित करता है, सरोवर को नहीं। "सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम्" इत्यमरः। समुत्पतन्—सम्+उद्+पत्+लट् शतृ—हरिदश्वः का विशेषण। प्रविघाटयिता—प्र+वि+घट् (संघाते) चुरादि+णिच्+लुट् ता। लुट् लकार से भविष्य की सूचना होती है जो उसी दिन न होने वाली हो। 'अनद्यतने लुट्' सूत्र इस पर लागू होता है। भ्वादिगण की घट् धातु 'घटादयोमितः' सूत्र से मित् है। मित् होने के कारण 'मितां ह्रस्वः' सूत्र से णिच् परे रहने पर ह्रस्व हो गया जिसका अर्थ है जपादि और घटादि जो मित् संज्ञक धातुएँ हैं उनकी उपधा को णि परे रहते ह्रस्व होता है। चुरादिगण की 'घट संघाते' से लुट् करने पर प्रविघाटयिता रूप बनेगा। "कथं तर्हि.....प्रविघाटयिता समुत्पतन् हरिदश्वः कमलाकरानिव। शृणु—'घट संघाते इति चौरादिकस्य इदम्'—भट्टोजीदीक्षित। उपमालंकार—तल्लक्षणं—'साधर्म्यमुपमाभेदे'—काव्यप्रकाश ॥४६॥

वाच्यपरिवर्तनः—कृतावधेस्तस्य भवता कृतेन अभियोगेन इमे महीभुजः समुत्पतता हरिदश्वेन कमलाकरा इव प्रविघाटयितारः भविष्यन्तीति।

अथ ये वृष्णिपक्षास्तान्प्रत्याह—

अब जो यादवों के पक्षवाले नहीं हैं उनके प्रति कहते हैं—

उपजापसहान् विलंघयन् स विधाता नृपतीन्मदोद्धतः।
सहते न जनोऽप्यधःक्रियां किमु लोकाधिकधाम राजकम् ॥४७॥

अन्वयः—मदोद्धतः स नृपतीन् विलंघयन् उपजापसहान् विधाता। जनः अपि अधःक्रियां न सहते लोकाधिकधाम राजकं किमु।

उपजापेति। मदोद्धतः स दुर्योधनो नृपतीनन्यान्नृपान् विलंघयन् मदादवमानयन्। सहन्त इति सहा पचाद्यच्। उपजापस्य सहान् भेदयोग्यान् "समौ भेदोपजापौ" इत्यमरः। विधाता विधास्यति। दधातेर्लुट्। अवमानितो जनः सुभेद्य इति भावः। न च ते सहिष्णव इत्याह—जनः प्राकृतोऽप्यधः क्रियामपमानं न सहते। लोकाधिकधाम लोकोत्तरप्रतापं राजकं राजसमूहः 'गोत्रोक्षोष्ट्र' इत्यादिना वुञ् प्रत्ययः। किम्। न सहत इति किं वक्तव्यमित्यर्थः। तथा सति कृत्स्नमेव राजमण्डलमस्मानेवावलम्बिष्यते इति भावः ॥४७॥

हिन्दी अनुवाद—मद से उद्दण्ड वह दुर्योधन राजाओं को अपमानित करता हुआ उन्हें भेद के योग्य कर देगा अर्थात् उन राजाओं को वह स्वयं फोड़ेगा। क्योंकि साधारण व्यक्ति भी अपमान नहीं सहता तो फिर लोगों से अधिक तेज वाले राजागण का तो कहना ही क्या।

English Translation—He, puffed up with pride, insulting kings, will make them susceptible to dissension. Even an ordinary man does not tolerate insult, what to speak of the kings whose splendour surpasses that of ordinary man.

संस्कृतभावार्थः—दुर्योधनोद्धतव्यवहारेणान्येऽपि नृपतयोऽसन्तुष्टाः। सामान्योऽपि जनस्तिरस्कारं न सहते तदा लोकातिगतेजस्विनः राजानस्तत्कृतमवमानं कथं सहन्ते यतस्तेऽष्टलोकपालांशाः सन्ति। 'अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः' इत्युक्तं भगवता मनुना। तिरस्कृतास्तु सर्वे राजानस्तस्माद्भिन्ना भूत्वाऽस्मत्पक्षे आगमिष्यन्ति। अतः साम्प्रतमवधिप्रतीक्षणमेव वरमिति-विशदार्थः।

व्याख्या—दुर्योधन राजमदोन्मत्त होने के कारण राजाओं का अपमान करता है। अतः वे लोग हृदय से उसके पक्ष में नहीं हो सकते। जब साधारण व्यक्ति अपमान नहीं सह सकता तो भला राजा लोग कैसे तिरस्कार सहन कर

सकते हैं। भगवान् मनु के कथनानुसार राजा में आठ लोकपालों का अंश है। अवसर आने पर सभी राजा लोग हमारे पक्ष में आ जायेंगे इसलिए शान्ति एवं धैर्यपूर्वक अवधि की प्रतीक्षा करना ही श्रेयस्कर है।

टिप्पणी—मदोद्धतः—उद्+हन्+क्त कर्त्तरि—उद्धतः मदेन उद्धतः तृतीया तत्पुरुष सः। 'मदो रेतसि कस्तूर्यां गर्वे हर्षेभदानयोः' इति मेदिनी। प्रथम सर्ग में दुर्योधन एक न्यायशील राजा कहा गया है, पर अब विस्तृत साम्राज्य पर अधिकार पाने के कारण वह उद्धत हो गया है। **नृपतीन्**—नृणां पतयः षष्ठी तत्पुरुष तान् 'विलंघयन्' तथा 'विधाता' का कर्म है। 'पतिः समास एव' सूत्र से 'नृपति' के रूप 'मुनि' के समान चलेंगे। **विलंघयन्**—वि+लंघ्+णिच् (चुरादि)+लटः, स्थाने शतृ—'सः' का विशेषण है। **उपजापसहान्**—सहन्ते इति सह्+अच् कर्त्तरि सहः—योग्याः। उप+जप्+घञ् भावे—उपजापः। 'समौ भेदोपजापौ' इत्यमरः। उपजापस्य सहाः षष्ठी तत्पुरुष तान्। **विधाता**—वि+धा+लुट् ता। **जनोऽपि**—प्राकृतजनोऽपि अधःक्रियां—अवमाननम् 'अधस्' अव्यय का अर्थ है 'नीचे' अधःक्रिया ताम्। 'अधःक्रिया तिरस्क्रियाऽवमानमित्युदीर्यते' इत्यमरः। **न सहते**—न क्षमते सह+लट् ते। **लोकाधिकधाम**—लोकेभ्यः अधिकम् लोकाधिकं सुप्सुपा; लोकाधिकं धाम अस्य बहुव्रीहि। 'राजकम्' का विशेषण है। राजा में साधारण मनुष्य से अधिक तेज होता है क्योंकि उसमें आठ लोकपालों का अंश विद्यमान है जैसा मनु ने कहा है—"अष्टाभिश्च सुरेन्द्राणां मात्राभिर्निर्मितो नृपः। तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥" मनु सप्तम। अर्थात् आठ सुरेन्द्रों के अंशों से राजा के शरीर का निर्माण होता है इसलिए वह सारे जीवों को अपने तेज से अतिक्रान्त करता है। 'लोकस्तु भुवने जने' 'गृहदेहत्विट्प्रभावा धामानि' इत्यमरः। **राजकम्**—राजन्यकं च नृपतिर्क्षत्रियाणां गणे क्रमात्' इत्यमरः।—राज्ञां समूहः इति राजन्+वुञ् (अक) राजकम्—'गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्स-मनुष्याजाद् वुञ्'—समूहार्थ में गोत्रसूचक, उक्षन्, उष्ट्र, उरभ्र, राजन्, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य और अज से वुञ् प्रत्यय लगता है—सूत्र से 'राजकम्' में वुञ् प्रत्यय लगा है। 'सहते' का कर्त्ता। किमु—

प्रश्नार्थ में अव्यय—द्रष्टव्यः—"सद्यः क्रीडारसच्छेदं प्राकृतोऽपि न मर्षयेत्। किमु लोकाधिकं धाम बिभ्राणः पृथिवीपतिः ।।" मुद्राराक्षस चतुर्थ अंक ।।

(धा—दधाति—दत्ते, दधातु—धत्ताम्, अदधात्—अधत्त, दधौ—दधे, अधात्—अधित्त, धास्यति—धास्यते । हन्—हन्ति, हन्तु, अहन्, जघान्, हनिष्यति । सह्—सहते, असहत, सेहे, असहिष्ट, असोढ) ।।४७।।

वाच्यपरिवर्तनः—मदोद्धतेन तेन नृपतीन् विलंघयता उपजापसहा विधातारः । जनेनाप्यघःक्रिया न सह्यते लोकाधिकधाम्रा राजकेन किमु ।

ननु 'सखीनिव' इत्यादिवनेचरोक्त्या तस्य मदसम्भावनाऽपि कथमित्यत आह—

वनेचर ने प्रथम सर्ग में बताया है कि दुर्योधन आश्रितों से मित्रवत्, मित्रों से बन्धुवत् और बन्धुओं से अधिकारियों की भाँति व्यवहार करता है, तो उसमें मद की सम्भावना कैसे—इस पर कहते हैं—

असमापितकृत्यसम्पदां हतवेगं विनयेन तावता ।
प्रभवन्त्यभिमानशालिनां मदमुत्तम्भयितुं विभूतयः ।।४८।।

अन्वयः—असमापितकृत्यसम्पदाम् अभिमानशालिनां विभूतयः तावता विनयेन हतवेगं मदं उत्तम्भयितुं प्रभवन्ति ।।४८।।

असमापितेति । असमापितकृत्यसम्पदामकृतकृत्यानामतोऽभिमानशालिनामहङ्कारिणां विभूतयः सम्पद एव तावता स्वल्पेन विनयेन । कार्यवशादारोपितेनेति शेषः । हतवेगं प्रतिबद्धवेगं न तु स्वरूपतो हतं मदमुत्तम्भयितुं वर्धयितुं प्रभवन्ति । सर्वथा दुर्जनसम्पदो विकारयन्तीति भावः ।।४८।।

हिन्दी अनुवाद—काम को न समाप्त करने वाले अभिमानियों की सम्पत्ति उतने विनय से अवरुद्ध वेग वाले मद को बनाने में समर्थ होती है ।

English Translation—The riches of the Proud, who have not finished the wealth of work, are capable of exciting pride whose force is checked by that much of humility.

संस्कृतभावार्थः—प्रथमसर्गे वर्णितेन 'सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिरित्यादि वनेचरोक्त्या तस्य मदसंभावनापि कथं स्यादित्याह । दुर्योधनस्तु स्वभावतः अभिमानी वर्तते परञ्च तस्य कृत्यमसमापितमद्यावधि । अतः स्वल्पेन विनयेन स्वाहंकारं गोपितवान् । तस्य विनयस्तु कृत्रिमः । सम्पदः तन्मदमुत्तम्भयितुं प्रभवन्ति । कृत्रिमो विनयश्चिरं न तिष्ठति कार्यत एव अहंकारप्रकाशनं भविष्यतीति विशदार्थः ।

व्याख्या—दुर्योधन स्वभाव ही से अभिमानी है। उसका विनय स्वार्थ के कारण अल्पकालिक है । उसका कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ है अतः कुछ-कुछ विनय का अपने ऊपर आरोप करके अभिमान को कुछ समय के लिए अवरुद्ध कर लिया है । किन्तु हम लोगों से राज्य पा जाने के कारण उसका मद फिर उभड़ेगा । परिणामस्वरूप उसके मित्र राजा लोग उसके व्यवहार से असन्तुष्ट होकर हमारा ही पक्ष ग्रहण करेंगे ।

टिप्पणी—**असमापितकृत्यसम्पदाम्**—सम्+ आप् + णिच् + क्त कर्मणि स्त्रियाम्—समापिताः न समापिताः असमापिताः (नञ् तत्पुरुष) । कृत्यानां सम्पदः (षष्ठी तत्पुरुष) । असमापिताः कृत्यसम्पदः यैः ते बहुव्रीहि तेषाम् । **अभिमानशालिनाम्**—अभिमानेन (अभि+मन्+घञ् भावे) शालन्ते इति अभिमान+शाल+णिनि कर्त्तरि तेषाम् । इसका सम्बन्ध 'विभूतयः' से है । **विभूतयः**—वि+भू+क्तिन् भावे । 'प्रभवन्ति' का कर्त्ता । द्रष्टव्य—'वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम्' रघुवंश । 'विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमणिमादिकमष्टधा' इत्यमरः । **तावता**—तत्परिमाणमस्येति तद्+वतुप् (परिमाणार्थ) तावान् तेन; 'विनयेन' का विशेषण है । **विनयेन**—नम्रतया । **हतवेगं**—हतः वेगः अस्य बहुव्रीहि तम् । अभिप्राय यह है कि थोड़े विनय से मद का नाश नहीं होता केवल उसका वेग कुछ समय तक अवरुद्ध हो जाता है । 'यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे' इत्यमरः । 'मादो मद उद्वेग उद्भ्रमे' इत्यमरः । 'वेगः प्रवाहजवयोरपि' इत्यमरः । **मदं**—मद्+अप् भावे 'उत्तम्भयितुम्' का कर्म । यहाँ 'मदोऽनुपसर्गे'—मद के पहले यदि उपसर्ग न हो तो 'अप्' प्रत्यय लगता है—सूत्र से 'अप्' लगा है

पर यदि पहले उपसर्ग हो तो 'घञ्' प्रत्यय लगता है जैसे प्रमाद, उन्माद। **उत्तम्भयितुम्**—उद्+स्तम्भ्+णिच्+तुमुन्। 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य'—यदि उद् के पश्चात् स्था या स्तम्भ हो तो द् को त् तथा स् को थ् आदेश होगा—इस सूत्र से स्तम्भ के 'स' को 'थ' आदेश हो गया है। फिर यह 'थ' 'झरो झरि सवर्णे' सूत्र से विकल्प से लुप्त हो गया है। **प्रभवन्ति**—प्र+भू+लट् अन्ति। 'विभूतयः' इसका कर्त्ता है ॥४८॥

वाच्यपरिवर्तनः—·····विभूतिभिः·····प्रभूयते।

अथ मदस्य अनर्थहेतुतां युग्मेनाह—

अब मद के अनर्थ के कारण को दो श्लोकों में कहते हैं परिणामतः दुर्योधन के प्रति लोगों की सहानुभूति जाती रहेगी—

मदमानसमुद्धतं नृपं न वियुङ्क्ते नियमेन मूढता।
अतिमूढ उदस्यते नयात् नयहीनादपरज्यते जनः ॥४९॥

अन्वयः—मूढता मदमानसमुद्धतं नृपं नियमेन न वियुङ्क्ते। अतिमूढः नयाद् उदस्यते। नयहीनात् जनः अपरज्यते।

मदेति। मदमानाभ्यां दर्पाहंकाराभ्यां समुद्धतं नृपं मूढता कार्यापरिज्ञानं नियमेनावश्यं न वियुङ्क्ते न विमुञ्चति। अतिमूढो नयान्नीतिमार्गादुदस्यत उत्क्षिप्यते कर्मकर्तरि लट्। नयहीनाज्जनो लोकोऽपरज्यतेऽपरक्तो भवति। 'स्वरितञितः—' इत्यादिनाऽऽत्मनेपदम् ॥४९॥

हिन्दी अनुवाद—अज्ञानता दर्प और अहंकार से समुद्धत राजा का निश्चय ही परित्याग नहीं करती। अत्यन्त मूढ़ नीतिमार्ग से च्युत हो जाता है। नीतिहीन राजा से लोग विरक्त हो जाते हैं ॥४९॥

संस्कृतभावार्थः—दर्पाहंकारयुक्तो नृपोऽवश्यं कर्त्तव्याकर्त्तव्यज्ञानशून्यो भवति। विवेकभ्रष्टो नीतिमार्गं त्यजति। प्रजा नीतिच्युतं राजानं नेच्छति। यत्र राष्ट्रे प्रजा नृपानुरक्ता न भवति तत्र सम्पदो नैवायान्ति।

English Translation—Foolishness surely does not leave the king who is puffed up with pride and conceit. The extremely imprudent is cast away from polity. People become disaffectionate with one devoid of polity.

व्याख्या—सरल है।

टिप्पणी—**मूढता**—विवेकशून्यता—मुह+क्त कर्त्तरि मूढः तस्य भावः इति मूढ+तल् स्त्रियाम् 'वियुङ्क्ते' का कर्त्ता है। **मदमानसमुद्धतम्**—सम्+उद्+हन्+क्त कर्मणि—समुद्धतः मदश्च मानश्च मदमानौ ताभ्यां समुद्धतः (तृतीया तत्पुरुष) तम् 'नृपम्' का विशेषण। **नृपम्**—नृन् पातीति नृ+पा+क कर्त्तरि नृपः तम्, 'वियुङ्क्ते' का कर्म। **नियमेन**—नि+यम्+अप भावे—नियमः तेन। 'यम्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगना चाहिए पर 'यमः समुपनिविषु च'—सम्, उप, नि और वि उपसर्ग रहने पर 'यम्' से विकल्प से अप् प्रत्यय लगता है—सूत्र से 'नि' पहले रहने से यहाँ 'अप्' प्रत्यय लगा है। विकल्प में 'नियाम' भी शुद्ध है। 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' सूत्र से 'नियमेन' में तृतीया प्रयुक्त हुई है। **न वियुङ्क्ते**—वि+युज् (रुधादि)+लट् ते 'मूढता' कर्त्ता है। 'स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम्' वार्त्तिक से स्वरान्त वि उपसर्ग होने से 'युज्'—आत्मनेपद में प्रयुक्त हुआ है। **अतिमूढः**—अतिशयेन मूढः (प्रादितत्पुरुष)। नयाद्—'नयो नाये' इत्यमरः—यहाँ 'ध्रुवमपायेऽपादानम्'—सूत्र से पंचमी प्रयुक्त हुई है। **उदस्यते**—उत्क्षिप्यते—उद्+अस् (क्षेपे) (दिवादि)+लट् ते कर्म कर्त्तरि। कर्मकर्त्ता के प्रयोग से यहाँ व्यापार अनायास होना सूचित होता है। अतिमूढ व्यक्ति स्वयं नीति से विमुख हो जाता है। **जनः**—प्रजागणः। **नयहीनात्**—नयेन हीनः (तृतीया तत्पुरुष) तस्मात्। 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च'—ल्यप् के लोप होने (छिपे रहने) पर कर्म और अधिकरण में पंचमी का प्रयोग होता है—इस वार्त्तिक से यहाँ पंचमी का प्रयोग हुआ है। नयहीनात् अर्थात् नयहीनं प्राप्य। **अपरज्यते**—अप+रञ्ज्+लट् ते। 'जनः' इसका कर्त्ता है। 'रञ्ज्' धातु दिवादि और भ्वादि दोनों

गणों में है। 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' सूत्र से आत्मनेपद में प्रयोग हुआ है। कारणमाला अलंकार। तल्लक्षणं तूक्तं काव्यप्रकाशे—'यथोत्तरंचेत्पूर्वस्य पूर्वस्यार्थस्य हेतुता। तदा कारणमाला स्यात्' अर्थात् जहाँ अगले-अगले अर्थ के प्रति पहले-पहले अर्थ हेतु रूप में कहा गया हो वहाँ 'कारणमाला' होता है। यहाँ उद्दण्डता मूढ़ता का कारण, मूढ़ता नीति भ्रष्ट होने का कारण और नयहीनता जनापराग का कारण होने से 'कारणमाला अलंकार' है।

(युज्—युनक्ति—युङ्क्ते, युनक्तु—युङ्क्ताम् अयुनक्—अयुङ्क्त, युयोज—युयुजे, अयौक्षीत्—अयुजत्, अयुक्त, योक्ष्यति—योक्ष्यते। रञ्ज्—रञ्जति—रञ्जते, अरञ्जत्—अरञ्जत, ररञ्जे, अराङ्क्षीत्—अरङ्क्त, रङ्क्ष्यति—रङ्क्ष्यते) ॥४६॥

वाच्यपरिवर्त्तन—मूढतया मदमानसमुद्धतो नृपः नियमेन न वियुज्यते। अतिमूढेन नयादुदस्यते। जनेन नयहीनादपरज्यते ॥४६॥

लोगों के असन्तुष्ट होते ही अवनति आरंभ हो जाती है—

अपरागसमीरणेरितः क्रमशीर्णाकुलमूलसन्ततिः।
सुकरस्तरुवत् सहिष्णुना रिपुरुन्मूलयितुं महानपि ॥५०॥

अन्वयः—अपरागसमीरणेरितः क्रमशीर्णाकुलमूलसन्ततिरिपुः महानपि तरुवत् सहिष्णुना उन्मूलयितुं सुकरः।

अपरागेति। अपरागोऽप्रीतिः। द्वेष इति यावत्, समीरण इव तेनेरित-श्चोदितः अत एव क्रमेण शीर्णा शीर्णीभूताऽऽकुला चला च मूलसन्ततिः प्रकृत्यादिस्वजनवर्गः शिफासंघातश्च यस्य स तथोक्तः। 'मूलं वशीकृते स्वीये शिफातारऽन्तिकादिषु' इति वैजयन्ती। रिपुः महानपि तरुवत् वृक्ष इव सहिष्णुना क्षमावतोन्मूलयितुमुद्धर्तुं सुकरः सुसाध्यः। सुकरोन्मूलन इत्यर्थः। अत्र मदादेः पूर्वपूर्वस्योत्तरं प्रति कारणत्वात्कारणमाला, तरुवदित्युपमा चेति द्वयोः संसृष्टिः ॥५०॥

हिन्दी अनुवाद—(प्रजा के) असन्तोष रूपी वायु से प्रेरित क्रमशः शीर्ण और हिली हुई जड़ों वाले महान् शत्रु भी (शीर्ण एवं हिले जड़समूहवाले) वृक्ष के समान सहनशील व्यक्ति के द्वारा जड़ से उखाड़ देने के लिए सुगम होता है।

English Translation—An enemy, driven by the windlike discontent and the host of whose fundamentals is gradually withered and disordered, is like a tree, though great, easy to be uprooted by one with patience.

संस्कृतभावार्थः—यथा कश्चिद् वृक्षः झंझावातेन प्रेरितः क्रमशः परितः भ्राम्यता अन्तः प्रविशता च वारिणा विच्छिन्नशिफोऽनायासमेव भूमौ पतति तथैव प्रजानामसन्तोषेण संघट्टितो विच्छिन्नप्रजामूलो शत्रुरवसरप्रतीक्षकेण शान्तिमता जनेनोन्मूलयितुं सुकरः। शान्तिमता प्रतीक्षा कार्या दुर्विनीतस्तु शत्रुः स्वयमेव विनाशमेष्यतीति युधिष्ठिरकथनतात्पर्यम्।

व्याख्या—जैसे कोई विशाल वृक्ष, जिसकी जड़ें वायु द्वारा छिन्न-भिन्न होकर हिल जाती हैं, सुगमता से उखाड़ा जा सकता है वैसे ही राजा महान् होते हुए भी प्रजा के असन्तोष के कारण आन्तरिक विग्रह से संयुक्त होकर सुगमता से उखाड़ा जा सकता है।

टिप्पणी—**अपरागसमीरणेरितः**—अप+रञ्ज्+घञ् भावे अपरागः समीरयति इति सम्+ईर्+णिच्+ल्युट् कर्त्तरि बाहुलकात् समीरणः इर्+णिच् (चुरादि)+क्त कर्मणि ईरितः अपरागः समीरण इव इति अपराग-समीरणः 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्यप्रयोगे' सूत्र से उपमित कर्मधारय है। तेन ईरितः तृतीया तत्पुरुष 'रिपु' का विशेषण है। 'घनि च भावकरणयोः' सूत्र से 'रञ्ज्' धातु के 'न' का लोप हो जाता है क्योंकि 'घञ्' प्रत्यय भावे या करणे प्रयुक्त हुआ है। शत्रु की तुलना एक वृक्ष से की गई है। जैसे वायु के झोंके से वृक्ष गिर जाता है वैसे ही प्रजा के असन्तुष्ट रहने से राजा का उन्मूलन हो जाता है। **क्रमशीर्णकुल मूलसन्ततिः**—क्रम+घञ् भावे—क्रमः; शॄ+क्त कर्त्तरि स्त्रियाम् शीर्णा; सम+तन्+क्तिन् भावे—सन्ततिः, मूलानां

सन्ततिः (षष्ठी तत्पुरुष) शत्रु के पक्ष में 'मूलसन्तति' का अर्थ है 'अमात्यादि' और तरुपक्ष में 'जड़'। यदि 'शीर्ण' का अर्थ शुष्क मानें तो समास होगा क्रमेण शीर्णा (सुप्सुपा) क्रमशीर्णा, मूलानां सन्ततिः (प० तत्पु०) क्रमशीर्णा आकुला च मूलसन्ततिः यस्य सः (बहुव्रीहि—उभयपक्षे) अथवा क्रमशीर्णा आकुला च (कर्मधारय) तादृशी मूल सन्ततिः यस्य सः अथवा आकुला मूलसन्ततिः (कर्मधारय) क्रमशीर्णा आकुला मूलसन्ततिर्यस्य सः (बहुव्रीहि) 'मूलं वशीकृते स्वीये शिफातारान्तिकादिषु' इति वैजयन्ती। यदि 'शीर्णा' का अर्थ छिन्न हो तो समास होगा क्रमेण शीर्णाकुलमूलसन्ततिः (सुप्सुपा) शीर्णा आकुला मूलसन्ततिर्यस्य (त्रिपद बहुव्रीहि) अथवा शीर्णा च आकुला च शीर्णाकुले द्वन्द्व अथवा शीर्णाकुला (कर्मधारय) शीर्णाकुले मूलसन्तती अथवा शीर्णाकुला मूलसन्ततिः यस्य (बहुव्रीहि) द्रष्टव्य—'शीर्णाश्रयः पतति कुलजवृक्षवृत्या' (मुद्राराक्षस ७)।' रिपुः—शत्रुः उक्ते कर्मणि प्रथमा। अन्वय होगा—'सहिष्णुना रिपुः सुकरः। "रिपौ वैरिसपत्ना-रिद्वषद्वेषणदुर्हृदः" इत्यमरः। महानपि—रिपुः या तरुः का विशेषण। तरुवत्—तरूणां तुल्यमिति तरु+वति—तरुवत्—अव्यय है 'उन्मूलयितुम्' में निहित क्रिया की विशेषता बताता है वति प्रत्यय के लिए नियम है 'तेन तुल्यं क्रिया चेत् वतिः' सहिष्णुना सहते इति सहिष्णुः (सह्+इष्णुच् ताच्छील्ये) तेन। अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। अनुक्त कर्त्ता में षष्ठी का निषेध है क्योंकि 'सुकराः' में खल् प्रत्यय है। इसके लिए सूत्र है—'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' अर्थात् लादेश, उक, अव्यय, निष्ठा (क्त, क्तवतु) खलर्थ और तृन् प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी नहीं होती। उन्मूलयितुम्—उद्+मूल+णिच् (चुरादि)+तुमुन्—उत्पाटयितुम्। सुकरः—सुखेन क्रियते इति सु+कृ+खल् कर्मणि। 'रिपुः' का विशेषण। मल्लिनाथ ने इस श्लोक में कारणमाला और उपमा की संसृष्टि बताई है। पर पूर्वश्लोक में 'कारणमाला अलंकार' है। यहाँ केवल 'तरुवत्' में उपमालंकार है। श्लेष के द्वारा 'रिपु' के सब विशेषण 'तरु' पक्ष में भी लागू होते हैं ॥५०॥

वाच्यपरिवर्तनः—अपरागसमीरणेरितेन क्रमशीर्णाकुलमूलसन्ततिना महता रिपुणा तरुवदुन्मूलयितुं सुकरेण (भूयते) ॥५०॥

ननु अन्तर्भेदमात्रेण कथं सुसाध्यः तत्राह—

थोड़े से आन्तरिक भेदमात्र से दुर्योधन पर विजय पाना सरल है इस सम्बन्ध में कहते हैं—

अणुरप्युपहन्ति विग्रहः प्रभुमन्तः प्रकृतिप्रकोपजः ।
अखिलं हि हिनस्ति भूधरं तरुशाखान्तनिघर्षजोऽनलः ।।५१।।

अन्वयः—अणुः अपि अन्तःप्रकृतिप्रकोपजः विग्रहः प्रभुम् उपहन्ति । तरुशाखान्तनिघर्षजः अनलः भूधरम् अखिलं हिनस्ति हि ।।५१।।

अणुरिति । अणुरल्पोऽप्यन्तःप्रकृतिप्रकोपजोऽन्तरङ्गामात्याद्यपरागसमुत्थः । 'प्रकृतिः पञ्चभूतेषु स्वभावे मूलकारणे । छन्दःकारणगुह्येषु जन्त्वमात्यादिकेष्वपि ।।' इति वैजयन्ती । विग्रहो वैरं प्रभुमुपहन्ति नाशयति । अत्र दृष्टान्तमाह—तरुशाखान्तानां निघर्षणो घर्षणं तज्जोऽनलोऽग्निः । भूधरं गिरिमखिलं साकल्येन हिनस्ति हि, दहतीत्यर्थः । अत्रोपमानोपमेयसमानधर्माणां प्रतिविम्बतया निर्देशेन दृष्टान्तालंकारः ।।५१।।

हिन्दी अनुवाद—अणुमात्र भी अन्तरंग अमात्यादि के प्रकोप से उत्पन्न वैर स्वामी को नष्ट कर देता है । क्योंकि वृक्ष की शाखाओं के अग्रभाग की रगड़ से उद्भूत अग्नि सारे पर्वत को जला देती है ।

English Translation—Even a little war, born of the disaffection of the internal members (ministers) destroys the master. The fire, caused by the friction of the ends of the branches of the trees burns the whole mountain.

संस्कृतभावार्थः—यस्य राज्ञः स्वामात्यादिमण्डले परस्परं मैत्री न वर्तते अपि तु कलहो जायते स सत्वरमेव नश्यति । यथा पर्वतोपरि वृक्षशाखातसंघर्षणोद्भूता अग्निकणिकाः सकलमपि पर्वतं दहन्ति तथेव दुर्योधनस्याभिमानेन तस्य मंत्रिवर्गे विरोधो भविष्यति येन स स्वयमेव नंक्ष्यति । अन्ततोगत्वा वयं विजयिनो भविष्यामः अतो धैर्यमेवावलम्बनमधुनेति तात्पर्यम् ।

व्याख्या—सरल है।

टिप्पणी—अणुरपि—स्वल्पोऽपि 'विग्रह:' का विशेषण 'अणुः व्रीह्यल्पयोः' इति हैमः। स्तोकाल्पक्षुल्लकाः सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु। स्त्रियां मात्रा त्रुटिः पुंसि लवलेशकणाणवः ।।" इत्यमरः। अन्तःप्रकृतिप्रकोपजः—प्र + कृ+क्तिन् भावे प्रकृतिः। अन्तःस्थाः प्रकृतयः (शाकपार्थिवादिवत् कर्मधारय समासः)। प्र+कुप्+घञ् भावे—प्रकोपः। अन्तःप्रकृतेः प्रकोपः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मात् जात इति। अन्तःप्रकृतिप्रकोप+जन्+ड कर्त्तरि भूते उपपदतत्पुरुष 'विग्रहः' का विशेषण। अमात्यराष्ट्रदुर्गाणि कोशो दण्डश्च पंचमः। एताः प्रकृतयस्तज्ज्ञैर्विजिगीषोरुदाहृताः। एताः पंच तथा मित्रं सप्तमः पृथिवीपतिः। सप्तप्रकृतिकं राज्यमित्युवाच वृहस्पतिः।। (कामन्दकी नीतिसार)। विग्रहः—विरोधः। वि+ग्रह्+अप् भावे। 'ग्रह्वृह्निश्चिगमश्च' सूत्र से 'ग्रह्' में 'मप्' प्रत्यय लगता है। 'स्त्रियां समरानीकरणाकलहविग्रहौ' इत्यमरः। प्रभुम्—प्रभवतीति प्र+भू+डु कर्त्तरि प्रभुः तम् 'उपहन्ति' का कर्म। 'अधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः' इत्यमरः। उपहन्ति—उप+हन्+लट् ति इसका कर्त्ता है 'विग्रहः'। तरुशाखान्तनिघर्षजः—नि+घृष्+घञ् भावे—निघर्षः। तरूणां शाखाः (षष्ठी तत्पुरुष) तासाम् अन्ताः (प० तत्पु०) तेषां निघर्षः (प०तत्पु०) तस्माज्जातः इति तरुशाखान्तनिघर्षजः (उपपदतत्पुरुष) तरुशाखान्तनिघर्ष+जन्+ड कर्त्तरि भूते। 'अनलः' का विशेषण। अनलः—वह्निः। 'आश्रयाशो वृहद्भानुः कृशानुः पावकोऽनलः' इत्यमरः। भूधरम्—धरतीति धरः पचाद्यच भुवः धरः इति भूधरः तम् 'हिनस्ति' का कर्म। अखिलं—अविद्यमानं खिलं यस्मिन् (वहुव्रीहि) तत् यथा तथा क्रियाविशेषण 'हिनस्ति'—की विशेषता बतलाता है। हिनस्ति—हिंस्+लट् ति 'अनलः' इसका कर्त्ता है। यहाँ दृष्टान्त अलंकार है—तल्लक्षणं तूक्तं साहित्यदर्पणे—'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्' अर्थात् सधर्म वस्तु (उपमानोपमेय) के बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होने पर दृष्टान्तालंकार होता है। इस श्लोक में उपमान 'अनल' और उपमेय 'विग्रह' और साधारण धर्म 'विनाश' का समानता के कारण वाक्यों में ज्ञान होना दृष्टान्तालंकार है।

(ग्रह्—गृह्णाति—गृह्णाते गृह्णातु—गृह्णीताम्, जग्राह—जगृहे,

अग्रहीत्—अग्रहीष्ट, ग्रहीष्यति—ग्रहीष्यते। हन्—हन्ति, हन्तु, अहन्, जघान, अवधीत्, हनिष्यति। हिंस्—हिनस्ति, जिहिंस, अहिंसीत्, हिंसिष्यति)।

रे महाशय के अनुसार इस श्लोक में दृष्टान्तालंकार दोषयुक्त है। उनका कथन है कि प्रभु के पक्ष में 'अन्तःप्रकृतियों' के असन्तोष से प्रकोप उत्पन्न होता है इनका पारस्परिक संघर्ष नहीं होता। प्रत्युत् उनका संगठन असन्तोष के कारणभूत राजा को पदच्युत करना होता है। किन्तु दूसरे पक्ष (भूधर-पक्ष) में शाखाएँ निःसन्देह अवयवभूत हैं पर न तो उनका कोई लक्ष्य है और न पारस्परिक संगठन। इसके विपरीत वे परस्पर टकराती हैं। इस प्रकार (१) प्रभु और भूधर (२) अन्तःप्रकृति प्रकोपज और तरुशाखान्तनिघषज (३) तथा विग्रह और अनल के पारस्परिक समानता का 'बिम्बप्रतिबिम्बभाव' रखा गया है ॥५१॥

वाच्यपरिवर्तनः—अणुनाप्यन्तःप्रकृतिप्रकोपजेन विग्रहेण प्रभुरुपहन्यते। हि तरुशाखान्तनिघर्षजेनानलेनाखिलो भूधरो हिंस्यते ॥५१॥

तथापि कथं वर्द्धमानं शत्रुमुपेक्षेतेत्याशङ्क्य दुर्विनीतत्वादित्याह—

फिर भी बढ़ते हुए शत्रु की कैसे उपेक्षा करनी चाहिए इस शंका को उठाते हुए कहते हैं—

मतिमान्विनयप्रमाथिनः समुपेक्षेत समुन्नतिं द्विषः।
सुजयः खलु तादृगन्तरे विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः ॥५२॥

अन्वयः—मतिमान् विनयप्रमाथिनः द्विषः समुन्नतिं समुपेक्षेत। तादृक् अन्तरे सुजयः खलु। हि अविनीतसम्पदः विपदन्ताः।

मतिमानिति। मतिमान्प्राज्ञः। विनयं प्रमथ्नातीति (प्रमथतीति) विनय-प्रमाथिनो दुर्विनीतस्य द्विषः समुन्नतिं वृद्धिं समुपेक्षेत। उपेक्षायाः फलमाह—तादृगविनीतोऽन्तरे क्वचिद्रन्ध्रे सुजयः सुखेन जेतुं शक्यः खलु। हि यस्माद-विनीतसम्पदो विपदन्ता विपन्मर्यादकाः। अनर्थोदर्का इत्यर्थः ॥५२॥

हिन्दी अनुवाद—बुद्धिमान् को चाहिए कि दुर्विनीत शत्रु की उन्नति की उपेक्षा करे। उस बीच में वह सुगमता से जीतने योग्य होता है। क्योंकि विनय हीन की सम्पत्ति दुःखान्त होती है।

English Translation—The wise should not attach any importance to the prosperity of an enemy who violates humility (modesty). Such an enemy is easily conquerable at interval. For the fortunes of immodest end in misery.

संस्कृतभावार्थः—विचारवान् दुर्विनीतरिपोरुदयमुपेक्षेत। तत्पराजयार्थं चिन्तां न कुर्यात्। उद्धतनृपतिव्यवहारेण तस्यामात्या एवं वैपरीत्यं भजन्ते। तेषां हृदये तु तत्प्रति समादरो न भवति अतः अवसरसमागते तं परित्यजन्ति इत्थमान्तरिकविग्रहेण स नश्यति। उद्धतस्य जनस्य समृद्धयः दुःखान्ता एव भवन्तीत्यस्मिन् न कोऽपि सन्देहावकाशः।

व्याख्या—जो व्यक्ति अविनीत एवं उद्दण्ड है वह किसी का प्रिय नहीं हो सकता। अतः ऐसे शत्रु से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं वह तो स्वयं अपनी उद्दण्डता के कारण नष्ट हो जायगा। दुर्योधन अपनी उद्दण्डता एवं दुर्व्यवहार का फल स्वयं भोगेगा। हमें केवल शान्ति का अवलम्बन करना ही उचित है।

टिप्पणी—**मतिमान्**—मन्+क्तिन् भावे—मति सा प्रशस्ता अस्ति अस्य इति मति। मतुप्+यह शब्द 'मतिमान् जनः' के अर्थ में आया है। 'विशेषणमात्र-प्रयोगो विशेष्यप्रतिपत्तिः' के अनुसार। 'समुपेक्षेत' का कर्त्ता। **विनयप्रमाथिनः**—वि+मी+अच् भावे—विनयः—विनयं प्रमथति इति विनय+प्र+मथ् (भ्वादि)+घिनुण् कर्त्तरि (ताच्छील्ये) 'प्रलपसृद्रुमथवदवसः'—प्र उपसर्गपूर्वक लप्, सृ, द्रु, मथ, वद् और वस् धातुओं से 'घिनुण्' प्रत्यय हो—इस सूत्र द्वारा 'घिनुण्' प्रत्यय हुआ। मल्लिनाथ ने इसे क्र्यादि से व्युत्पन्न मानकर 'प्रमथ्नाति' विग्रह किया है। यहाँ वास्तव में 'मथ् विलोडने' धातु भ्वादिगणी है। **द्विषः**—शेषे षष्ठी, इसका संबंध है 'समुन्नतिम्' से। **समुन्नतिं**—सम्+उद्+नम्+क्तिन् भावे समुन्नतिः ताम्। 'समुपेक्षेत' का कर्म। **समुपेक्षेत**—सम्+उप+ईक्ष्+

लिङ्ग (विधौ) ईत । तादृक्—तमिव एतं पश्यन्ति जनाः स एप स इव दृश्यमानः तमिव आत्मानं पश्यति इति तद्+दृश्+क्विन् कर्मकर्त्तरि तादृक् । त्यादादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च' सूत्र से क्विन् प्रत्यय लगा है । 'कञ्' से 'तादृश' रूप होता है । तादृक्—अविनीतो द्विट् । उक्ते कर्मणि प्रथमा । अन्तरे—भावे सप्तमी अर्थात् जब अवसर आवेगा तो विनयप्रमाथी शत्रु का उन्मूलन सुगमता से हो जायगा ।—द्रष्टव्य "अधिगम्य च रन्ध्रमन्तरा जनयन्मंडलभेदमन्यतः । खनति क्षतसंहतिः क्षणादपि मूलानि महान्ति कस्यचित् ।।" शिशुपालवध । सुजयः—सुखेन जीयते इति सुजयः (सु+जि+खल् कर्मणि) । खलु—नियमार्थेऽव्ययम् । हि—हेतौ अवधारणे वा । अविनीतसम्पदः—वि+नी+क्त कर्मणि—विनीतः; न विनीतः अविनीतः नञ् तत्पुरुष अविनीतानां सम्पदः (षष्ठी तत्पुरुष) 'भवन्ति' का कर्त्ता । विपदन्ताः—विपद् अन्ते आसाम्—इति विपदन्ताः व्यधिकरण बहुव्रीहि । इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है जिसमें कारण से कार्य का समर्थन होता है ।

(मन्—मन्यते, मन्यातम्, अमन्यत, मेने, अमंस्त । ईक्ष्—ईक्षते, ईक्षताम्, ऐक्षत, ईक्षे, ऐक्षिष्ट ।)

वाच्यपरिवर्तनः—मतिमता विनयप्रमाथिनः द्विषः समुन्नतिः समुपेक्ष्येत, तादृशाऽन्तरे सुजयेन भूयते । ह्यविनीतसम्पद्भिर्विपदन्ताभिर्भूयते ।

कथं दुर्विनीतस्य शत्रोः सुजयत्वमित्याशंक्य भेदजर्जरितत्वात् इत्याहः—

दुर्विनीत शत्रु को आसानी से कैसे जीता जा सकता है यह शंका करके कहते हैं । आन्तरिक फूट के कारण वह निकटवर्ती राजा से सुगमता से जीता जा सकता है—

लघुवृत्तितया भिदां गतं बहिरन्तश्च नृपस्य मण्डलम् ।
अभिभूय हरत्यनन्तरः शिथिलं कूलमिवापगारयः ।।५३।।

अन्वयः—अनन्तरः लघुवृत्तितया बहिः अन्तः च भिदां गतं नृपस्य मंडलम् अभिभूय आपगारयः शिथिलम् कूलमिव हरति ।।५३।।

लघ्विति। लघुवृत्तितया त्वस्य दुर्वृत्तिरूपतया बहिर्मित्रादिजनपदेष्वनन्तरमात्यादिषु च भिदां भेदं गतम्। "षिद्भिदादिभ्योऽङ्" इत्यङप्रत्ययः। नृपस्य मण्डलं राष्ट्रमनन्तरः सन्निहितोजिगीषुरापगारयो नदीवेगः शिथिलमन्तर्भेदजर्जरकूलमिवाभिभूयाक्रम्य हरति ॥५३॥

हिन्दी अनुवाद—क्षुद्र व्यवहार वाला होने के कारण बाहर और भीतर (मंत्री आदि में) फूट को प्राप्त हुए राजा के राज्य को पड़ोसी राजा पराजित करके उसी प्रकार हर लेता है जैसे नदी का वेग जर्जर तट को गिरा देता है।

English Translation—As the current of a river washes away the ported bank, so a neighbour, having conquered, takes away the king's dominion that is affected with disunion internally and externally on account of his meanness.

संस्कृतभावार्थः—यथा नदीवेगोऽन्तः बहिश्च भेदं प्राप्य प्रवहन्तं वारिचयमावर्त्तरूपेण परितो भामयित्वा शिथिलं तटं पातयति तथैव राज्ञः नीचाचारतया मित्रादिमण्डलेषु मंत्रिगणेषु च भेदेन योजितं नृपराज्यं सन्निहितो राजा आक्रम्य आत्मसात्करोति।

व्याख्या—अपनी क्षुद्रवृत्ति के कारण मित्रराजा लोग तथा अमात्यगण उससे रुष्ट हो जाते हैं और अवसर पड़ने पर साथ छोड़ देते हैं। निकटवर्त्ती राजा सदैव ऐसे समय की प्रतीक्षा में रहता है अतः ऐसे अवसर का वह पूरा लाभ उठा कर आक्रमण करके उसका राज्य हस्तगत कर लेता है। दुर्योधन का भी ऐसा ही दुर्व्यवहार है जिससे उसके मित्र एवं मंत्रीगण सभी असन्तुष्ट हैं अतएव वह सरलता से जीता जा सकता है।

टिप्पणी—अनन्तरः—अविद्यमानम् अन्तरे अस्मात् इति अनन्तरः इसके लिए वार्त्तिक है "नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपश्च वा वक्तव्य" 'हरति' का कर्त्ता। लघुवृत्तितया—वृत्+क्तिम् भावे वृत्ति—लघुश्चासौ वृत्तिः (कर्मधारय), लघुः लघ्वी वा वृत्तिर्यस्य स लघुवृत्तिः तस्य भावः लघुवृत्तिता तया लघुवृत्तितया हेतौ तृतीया। बहिः—मित्रादिमण्डलं सप्तम्यर्थेऽव्ययम्।

अन्तः—अमात्यादिवर्गसप्तम्यर्थेऽव्ययम् । च—समुच्चयार्थकः । भिदां गतम्—भेदेन योजितम्—भिद्+अङ भावे स्त्रियाम्—भिद्यताम् 'गतम्' का कर्म । यहाँ 'षिद्भिदादिभ्योऽङ—षिद् और भिदादि गण की धातुओं से अङ—प्रत्यय लगता है (भाव अथवा कर्त्ता के अतिरिक्त अन्य कारक व्यक्त करने के लिए)—इस सूत्र से 'अङ' प्रत्यय लगा है । 'विदारः स्फुटनं भिदा' इत्यमरः । नृपस्य—नृन् पातीति नृपः तस्य । मण्डलम्—अमात्यराष्ट्रदुर्गाणि कोशो दण्डश्च पंचमः । एताः प्रकृतयस्तज्ज्ञैर्विजिगीषोरुदाहृताः । एताः पञ्च तथा मित्रं सप्तमः पृथिवीपतिः । सप्तप्रकृतिकं राज्यम् इत्युवाच बृहस्पतिः । (कामन्दकनीति) । अभिभूय—अभि+भू+ल्यप्—पराजित्य । आपगारयः—अपां समूहः इति अप्+(अण्) समूहार्थे आपम्—जलसमूह । आपेन जलराशिना सह गच्छति इति आप+गम्+ड कर्त्तरि स्त्रियाम् आपगा तस्याः रयः (षष्ठी तत्पुरुष) 'हरति' का कर्त्ता । शिथिलम्—क्षीणम् 'कूलम्' का विशेषण । हरति—हृ+लट् ति । 'अनन्तरः' इसका कर्त्ता है । 'स्रोतस्वती द्वीपवती स्रवन्ती निम्नगापगा' इत्यमरः । 'रंहस्तरसी तु रयः स्यदः' इत्यमरः । नदीवेग के पक्ष में—लघुवृत्तितया तीव्रता के कारण, 'जवोऽथ शीघ्रं त्वरितं लघु क्षिप्रतरं द्रुतम्' इत्यमरः । बहिरन्तश्च भिदां गतम्—जहाँ भीतर और बाहर दरारें पड़ गई हों । नृपस्य मण्डलम्—नृभिः पीयते इति नृपं जलम् तस्य मंडलम्—समूहम् । अनन्तरः आपगारयः—तटसन्निकटवर्ती नदीवेगः हरति—गिरा देता है । श्लेषानुप्राणितोषमालंकार ।

(हृ—हरति—हरते, हरतु—हरताम्, जहार जह्रे, अहार्षीत्—अहृत, हरिष्यति—हरिष्यते) ।

वाच्यपरिवर्तनः—अनन्तरेण लघुवृत्तितया भिदां गतं बहिरन्तश्च नृपस्य मण्डलम् अभिभूय आपगारयेण शिथिलं कूलमिव ह्रियते ॥५३॥

इसी समय भगवान् वेदव्यास पधारे—

अनुशासितमित्यनाकुलं नयवर्त्माकुलमर्जुनाग्रजम् ।
स्वयमर्थ इवाभिवाञ्छितस्तमभीयाय पराशरात्मजः ॥५४॥

अन्वयः—इति आकुलं अर्जुनाग्रजम् नयवर्त्म अनाकुलम् अनुशासतं तं पराशरात्मजः स्वयं अभिवाञ्छितः अर्थ इव अभीयाय ।

अन्विति । इतीत्थमाकुलमरिनिकारस्मरणात्क्षुभितमर्जुनाग्रजं भीमसेनं नयवर्त्म नीतिमार्गमनाकुलमसङ्कीर्णं यथा तथा अनुशासतमुपदिशन्तम् । "जक्षित्यादयः षट्" इत्यभ्यस्ताच्छतुर्नुमभावः । तं युधिष्ठिरं पराशरात्मजो वेदव्यासः स्वयमभिवाञ्छितोऽर्थ इव साक्षान्मनोरथ इवेत्युत्प्रेक्षा । अभीयाय प्राप्तः ॥५४॥

हिन्दी अनुवाद—इस प्रकार घबड़ाये हुए अर्जुन के अग्रज भीम को नीतिमार्ग का उपदेश करते हुए पराशर के पुत्र व्यास जी मनोवाञ्छित अर्थ के समान स्वयं पहुँच गये ।

English Translation—While he (Yudhishtira) was thus explaining without confusion the course of policy to the greatly perturbed elder brother of Arjuna (*i. e.* Bhima), the son of Parashara (Vyas) appeared personally before him as if his desired object.

संस्कृतभावार्थः—यदा युधिष्ठिरः गूढचरमुखनिवेदितवचःश्रवणात् क्षोभव्यग्रं भीममेवमनुचितम् त्वन्मतमनुचितमित्युपादिशत् तदैव पराशरपुत्रो व्यासः साक्षान्मनोरथ इव तत्राजगाम । व्यासदर्शनं स्वसिद्धिसूचकमेवामन्यत युधिष्ठिरः इत्यभिप्रायः ।

व्याख्या—सरल है ।

टिप्पणी—इति—अव्यय प्राकारार्थे । "इति प्रकरणे हेतौ प्रकाशादि-समाप्तिषु । निदर्शने प्रकारे स्यादनुकर्षे च सम्मतम् ॥" इति विश्वः । आकुलम्—'व्यग्रो आसक्त आकुले' इत्यमरः । क्षुब्ध—चंचल 'अर्जुनाग्रजम्' का विशेषण । द्रष्टव्य—'इत्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः' (शाकुन्तल ५.) । अर्जुनाग्रजम्—अग्रे जातः अग्रजः; अग्र+जन्+ड कर्त्तरि, अर्जुनस्याग्रजः । (षष्ठी तत्पुरुष) तम् । 'अनुशासतम्' का कर्म । नयवर्त्म—नयस्य वर्त्म (ष० तत्पु०) ।

'सन्धिविग्रहयानानि संस्थाप्यासनमेव च। द्वैधीभावश्च विज्ञेयाः षड्गुणा नीतिवेदिनाम्।' अर्थात् सन्धि, विग्रह (युद्ध), यान (शत्रु पर आक्रमण करना), संस्था (शत्रु से मैत्री), आसन (सेना सुसज्जित करके भी उदासीनता का अवलम्बन करना), द्वैधीभाव (कपटपूर्ण व्यवहार) (मनुस्मृति सप्तम अध्याय)। अनाकुलम्—न आकुलः इति अनाकुलः तद्यथा स्यात्तथा अनाकुलम् (क्रियाविशेषण)। अनुशासतम्—अनु+शास्+लटः स्थाने शतृ अनुशासत् तम्। 'तम्' का विशेषण। 'जक्षित्यादयः षट्' सूत्र से शास् धातु अभ्यस्त में गिनी गई है 'नाभ्यस्ताच्छतुः'—अभ्यस्त से परे शतृ को नुमागम नहीं होता—सूत्र से नुम् का प्रतिषेध हो गया है। पुंल्लिग में अनुशासत् के रूप भूभृत् तथा स्त्रीलिंग में नदी के समान चलते हैं। तम्—युधिष्ठिरम् 'अभीयाय' का कर्म। पराशरात्मजः—आत्मनो जातः इति आत्मजः आत्मन्+जन्+ड कर्त्तरि भूते पराशरस्यात्मजः (षष्ठी तत्पु०)। व्यास पराशर के पुत्र थे तथा अपने पिता से अधिक विख्यात थे। वे वशिष्ठ के प्रपौत्र थे। स्वयं—अव्यय तृतीया के अर्थ में प्रयुक्त। प्रकृत्यादित्वात् तृतीया। अभिवाञ्छितः—अभि+वाञ्छ+क्त कर्मणि। 'अर्थ' का विशेषण। 'अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु' इत्यमरः। 'अर्थो हेतौ प्रयोजने। निवृत्तौ विषये वाच्ये प्रकारद्रव्यवस्तुषु' इति हेमचन्द्रः। अभीयाय—संप्राप्तः। अभि+इण् गतौ+लिट् (णल) अ। इसका कर्त्ता है 'पराशरात्मजः'। द्रष्टव्य—तयोः संवदतोरेवं तदा पाण्डवयोर्द्वयोः। आजगाम महायोगी व्यासः सत्यवतीसुतः। (महाभारत, वनपर्व अ० ३६ श्लो० २२) इस श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार है तल्लक्षणं तूक्तं काव्यप्रकाशे—'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्' अर्थात् उपमेय की उपमान के साथ सम्भावना उत्प्रेक्षा कहलाती है। यहाँ 'पराशरात्मज' उपमेय की संभावना उपमान 'अर्थ' के रूप में की गई है अतः उत्पेक्षा है ॥५४॥

वाच्यपरिवर्तनः—अनुशासत् सः पराशरात्मजेन स्वयमभिवाञ्छितेनार्थेनैव अभीये।

अथ युग्मेनाह :—

मधुरैरवशानि लम्भयन्नपि तिर्यञ्चि शमं निरीक्षितैः।
परितः पटुबिभ्रदेनसां दहनं धाम विलोकनक्षमम् ॥५५॥

अन्वयः—मधुरैः निरीक्षितैः अवशानि अपि तिर्यञ्चि शमं लम्भयन् परितः पटु एनसां दहनं विलोकनक्षमं धाम बिभ्रत् (ददृशे) ।।५५।।

मधुरैरिति । मधुरैः शान्तैर्निरीक्षितैरवलोकनैः । नपुंसके भावे क्तः । न विद्यते वशमायत्तत्त्व येषां तान्यवशानि । 'वशमायत्ततायां च' इति विश्वः । तिर्यञ्चि मृगपक्ष्यादीनि शमं शान्ति लम्भयन् प्रापयन् । लभेश्च इति नुमागमः । 'गत्यर्थ—' इत्यादिना द्विकर्मकत्वम् । परितः पटूज्वलमेनसां दह्यतेऽनेनेति दहनं निवर्तकं तथापि विलोकनक्षमं दर्शनीयम् । वह्न्यादिविलक्षणमिति भावः । धाम तेजो बिभ्रत् ।।५५।।

हिन्दी अनुवाद—मधुर अवलोकनों से वश में न रहनेवाले (स्वतंत्र) पशु-पक्षिओं को भी शान्ति प्राप्त कराते हुए चारों ओर से उज्ज्वल, पापों के नाशक दर्शनयोग्य तेज को धारण करते हुए (व्यास जी देखे गये) ।

English Translation—With his sweet looks drawing to quietude even the uncontrollable animal (*i. e.* beasts, birds) possessing all round a halo of bright light, the consumer of sins but worthy to be hold (Vyas was seen).

संस्कृतभावार्थः—अथ युग्मेन कविर्भगवन्तं व्यासं वर्णयति । स्वप्रेम-पूर्णैरवलोकनैः परस्परविरोधिनोऽपि पशुपक्षिणः शान्तिं गमयन् समन्तात् उज्ज्वलं पापज्वालकम् दर्शनीयं तेजः धारयन् तत्र द्वैतवने मुनिः समागतः । भगवतो व्यासस्य तपसार्जिततेजः सर्वजनाह्लादकारि पापनाशकं चासीदित्यभिप्रायः ।

व्याख्या—सरल है ।

टिप्पणी—जब अन्वय एक श्लोक में समाप्त न होकर दो, तीन, चार, पाँच या छः श्लोकों में चला जाता है तो क्रमशः उन्हें युग्म, विशेषक, कलापक और कुलक कहते हैं यथा—"द्वाभ्यां युग्ममिति प्रोक्त त्रिभिः श्लोकैः विशेषकम् । कलापकं चतुर्भिः स्यात्तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम् ।।" **मधुरैः**—हृद्यैः । 'निरीक्षितैः' का विशेषण । **निरीक्षितैः**—निर्+ईक्ष्+क्त नपुंसके भावे निरीक्षितानि तैः करणे तृतीया अवलोकनैः । **अवशान्यपि**—अनायत्तान्यपि स्वतन्त्राण्यपि

इति भावः। 'वशमायत्ततायां च' इति विश्वः। अविद्यमानं वशं एषामिति अवशानि (बहुव्रीहि) तानि 'तिर्यञ्चि' का विशेषण। तिर्यञ्चि—तिरस् अव्यय 'तिरछे' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। तिरः अञ्चन्तीति तिरस्+अञ्च्+क्तिन् कर्त्तरि—तिर्यञ्चि तानि। 'लम्भयन्' का कर्म। 'सामान्ये नपुंसकम्'—पुंल्लिग और स्त्रीलिग दोनों का बोध कराने के लिए सामान्य अर्थ में नपुंसक लिग प्रयुक्त होता है। 'स तिर्यङ्यस्तिरोऽञ्चति' इत्यमरः। 'स्वादुप्रियौ तु मधुरौ' इत्यमरः। शमं—शान्ति। लम्भयन्—प्रापयन्—लभ्+णिच्+लटः स्थाने शतृ। यहाँ 'लभेश्च' सूत्र से 'लभ्' धातु में नुम् का आगम हो गया है। सूत्रार्थ—अजादि प्रत्यय परे रहने पर 'लभ्' में नुमागम हो जाता है। अतः ल—नुम्—न्—म्—भ—लम्भ हुआ। 'लभ्' का अर्थ है 'पाना'। पर 'णिच्' लगाने पर इसके दो अर्थ हो जाते हैं—(१) प्राप्त्युपसर्जना गतिः (२) गत्युपसर्जनाप्राप्तिः। 'लम्भयन्' में प्राप्त्युपसर्जना गतिः है क्योंकि यहाँ 'गत्यर्थ' पहुँचाना प्रधान है और 'प्राप्त्यर्थ' गौण है। 'लभ्' धातु के गत्यर्थक होने से 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ'—गत्यर्थक, बुद्धचर्थक, भक्षणार्थक, शब्दकर्मक और अकर्मक धातुओं का अण्यन्त का कर्त्ता ण्यन्त में कर्म होता है। इस सूत्र से कर्म हो जायगा। अणिजन्त 'लम्' से वाक्य होगा—"तिर्यञ्चि शमं लभन्ते' किन्तु णिजन्त होने पर 'मुनिः तिर्यञ्चि शमं लम्भयति'। द्रष्टव्य—'सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिऽवाय लम्भयन्।' (शिशुपाल १)। परितः—परि+तस् (सर्वार्थे) चारों ओर—यह अव्यय है तथा 'विभ्रत्' की विशेषता बतलाता है। 'सर्वोभयार्थाभ्यामेव' से 'तसिल्' प्रत्यय लगा है। मुनियों का तेज चारों ओर फैलने वाला होता है। द्रष्टव्य—'पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः'—(शिशुपालवध १)। पटु—उज्ज्वल। एनसां दहनं—पापानां दाहकम्। दह्यते अनेनेति दह्+ल्युट् करणे दहनं 'धाम' का विशेषण। 'एनः पापापराघयोः' इति मेदिनी। तेषां कृद्योगे कर्मणि षष्ठी। विलोकनक्षमं—क्षमते इति क्षम्+अच् क्षमम्—योग्यम्। वि+लोक्+णिच्+ल्युट् भावे—विलोकनं विलोकनस्य क्षमम् (षष्ठी तत्पुरुष) 'धाम' का विशेषण। धाम—'गृहदेहत्विट्प्रभावाधामानि' इत्यमरः। 'युक्ते क्षमं शक्ते हिते त्रिषु' इत्यमरः। बिभ्रत्—दधत्। भृ—लटः स्थाने शतृ 'मुनिः' का विशेषण। 'भृ' अभ्यस्त धातु के अन्तर्गत है अतः इसमें नुमागम नहीं हुआ।

(भृ—बिभर्त्ति, बिभर्तु, अबिभ्रत्, बभार) ।

वाच्यपरिवर्तनः—मधुरैर्निरीक्षितैरवशान्यपि तिर्यंचि शमं लम्भयन्तं धाम बिभ्रतं व्यासं (ददर्श) ।

सहसोपगतः सविस्मयं तपसां सूतिरसूतिरापदाम् ।
ददृशे जगतीभुजा मुनिः स वपुष्मानिव पुण्यसंचय ।।५६।।

अन्वयः—सहसा उपगतः तपसां सूतिः आपदामसूतिः स मुनिः वपुष्मान् पुण्यसंचय इव जगतीभुजा सविस्मयं ददृशे ।

सहसेति । पुनः सहसोपगतोऽकस्मादागतस्तपसां सूतिः प्रभवः आपदामसूतिरप्रभवः । निवर्तक इति यावत् । स मुनिर्व्यासो वपुष्मान् देहधारी पुण्यसञ्चयः पुण्यराशिरिवेत्युत्प्रेक्षा जगतीभुजा राज्ञा सविस्मयं ददृशे ।।५६।।

हिन्दी अनुवाद—अकस्मात् आये हुए, तपों के उत्पत्ति स्थान, विपत्तियों के नाशक वे मुनि (वेदव्यास) देहधारी पुण्यराशि के समान राजा (युधिष्ठिर) द्वारा विस्मयपूर्वक देखे गये ।

English Translation—The sage, suddenly arrived, the birth place of penances, the averter of calamities, was seen by the enjoyer of the earth with wonder as if the store of merits personified.

संस्कृतभावार्थः—यदा युधिष्ठिरः भीममुपदिशति स्म तदानीं तपःप्रभवो दुःखविनाशको भगवान् वेदव्यासः देहधारी पुण्यनिचय इव तत्रोपस्थितो बभूव । महाराजयुधिष्ठिरस्तं दृष्ट्वा विस्मितोऽभवत् स्वाभीप्सितप्राप्तिमेव तमन्यत् सम्प्रति भगवतो व्यासस्य दर्शनेन अस्माकं दुःखं नाशमेष्यतीति हर्षो बभूव ।

व्याख्या—सरल है ।

टिप्पणी—**सहसा**—अकस्मात् 'आकस्मिकार्थे सहसा तत्काले च निगद्यते' इति हैमः । **उपगतः**—उप+गम्+क्त _ कर्त्तरि । 'गत्यर्थत्वात् कर्त्तरि क्तः'

'मुनिः' का विशेषण अथवा 'सहसोपगतः' में सुप्सुपा समास हो सकता है। सहसोपगतः 'पुण्यसंचयः' के साथ भी लगाया जा सकता है। तपसां—तपस् तेषाम् कर्मणि षष्ठी। सूतिः—सूयते अनया इति सू+क्तिन् करणे सूतिः। 'मुनिः' का विशेषण। आपदाम्—कृद्योगे कर्मणि षष्ठी। आपदः न सूते कृद्योगे—आपदामसूतिः। स मुनिः—उक्ते कर्मणि प्रथमा। 'तद्' 'प्रसिद्धार्थक' होने के कारण 'यत्' शब्द की अपेक्षा नहीं रह जाती। वपुष्मान्—वपुः अस्ति अस्य इति वपुस्+मतुप् 'पुण्यसंचयः' का विशेषण। यहाँ 'वपुर्मान्' नहीं होगा 'तसौ मत्वर्थे' सूत्र से—मत्वर्थ प्रत्यय परे रहने पर तकारान्त और सकारान्त की भ संज्ञा होती है। पुण्यसंचयः—पुनातीति पुण्यम् (पू+यत् कर्त्तरि) औणादिक। सम्+चि+अच् भावे—संचयः पुण्यानां संचयः (षष्ठी तत्पुरुष)। 'पुत्रो यत् णुक् ह्रस्वश्च' सूत्र से पुण्य में णुक् और ह्रस्व है। 'भावानयने द्रव्यानयनम्' के अनुसार पुण्यसंचयः—सञ्चित-पुण्यः। जगतीभुजा—भूभुजा, जगतीं भुङ्क्ते जगती+भुज्+क्विप् कर्त्तरि जगतीभुक्। अनुक्त कर्त्तरि तृतीया। सविस्मयम्—वि+स्मि+अच्+भावे विस्मयः। तेन सह वर्तमानः तत् यथा स्यात्तथा। 'ददृशे' की विशेषता बताता है। ददृशे—दृश्+लिट्+ए कर्मणि। यहाँ प्रस्तुत (मुनि) की अप्रस्तुत (वपुष्मान् पुण्यसंचय) के रूप में संभावना की गई है अतएव उत्प्रेक्षालंकार है। वियोगिनी छन्द—तल्लक्षणम् 'विषमे ससजा' गुरुः समे सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी।

(दृश्—पश्यति, पश्यतु, अपश्यत्, ददर्श, अद्राक्षीत्—अदर्शत्, द्रक्ष्यति)।

वाच्यपरिवर्तनः—जगतीभुव् सहसोपगतं तपसां सूतिम् आपदामसूतिम् मुनिम् वपुष्मन्तं पुण्यसंचयमिव ददर्श ॥५६॥

तत्पश्चात् महाराज युधिष्ठिर भगवान् वेदव्यास का स्वागत करने के लिए श्रेष्ठ आसन से उठ खड़े हुए—

अथोच्चकैरासनतः परार्ध्यादुद्यन्स धूतारुणवल्कलाग्रः।
रराज कीर्णाकपिशांशुजालः शृंगात्सुमेरोरिव तिग्मरश्मिः
॥५७॥

अन्वयः—अथ उच्चकैः परार्ध्यात् आसनतः उद्यन् धूतारुणबल्कलाग्रः सः कीर्णकपिशांशुजालः सुमेरोः शृंगात् तिग्मरश्मिरिव रराज ।

अथेति । अथ दर्शनानन्तरम् । उच्चकैरुन्नतात् परार्ध्याच्छ्रेष्ठात् । 'अर्घाद्यत्' 'परावराधमोत्तमपूर्वाच्च' इति यत्प्रत्ययः । आसनतः सिंहासनात् उद्यन्नुत्तिष्ठन्नत एव धूतानि कम्पितान्यरुणानि बल्कलाग्राणि यस्य तथोक्तः । स नृपः कीर्णं विस्तृतमाकपिशमंशुजालं यस्य स तथोक्तः सुमेरोः शृंगादुद्यंस्तिमिरश्मिरिव रराज । उपजातिच्छन्दः ॥५७॥

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद ऊँचे अमूल्य आसन से उठते हुए, हिलते हुए रक्त बल्कलों के किनारों वाले वे युधिष्ठिर कपिशवर्ण का किरण-समूह विकीर्ण करते हुए सुमेरु के शिखर से (उदित होते हुए) सूर्य के समान सुशोभित हुए ।

English Translation—Just then, he rising from his lofty and precious throne with the red tips of bark-garments trembling, shone like the hot rayed sun, shooting up from the peak of sumer and with the slightly pink away of scattered rays.

संस्कृतभावार्थः—व्यासदर्शनानन्तरं स युधिष्ठिरः उच्चकैः श्रेष्ठादासनात् स्वागतार्थमुदतिष्ठत् । यथा सूर्यः कपिशांशुजालं विकीर्णयन् सुमेरुशृंगादुदितः शोभते तथैव महार्ध्यादासनादुत्तिष्ठन् अरुणबल्कलप्रान्तान् कम्पयन् युधिष्ठिरोऽपि शुशुभे ।

व्याख्या—सरल है ।

टिप्पणी—अथ—दर्शनानन्तरम् । 'मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्येष्वथो अथ' इत्यमरः । उच्चकैः—उन्नतात् 'आसनतः' का विशेषण । परार्ध्यात्—परः अर्घः परार्घः 'अर्घं' यहाँ वास्तव में पुंल्लिग है पर जब इसका अर्थ 'समांश' होता है तो यह यह नपुंसक में प्रयुक्त होता है 'अर्घः खण्डे समांशे अर्धम्' इति विश्वः । अथवा परम् अर्घम् परार्घम् (कर्मधारय) परार्घे भवम्

इति परार्घ्यम् (परार्घ+यत्) तस्मात् 'आसनतः' का विशेषण। द्रष्टव्य—'परस्परस्पर्धि परार्घ्यरूपाः पौरस्त्रियो यत्र विधाय वेधाः' शिशुपालवध ३·५८। 'परार्घ्यवर्णास्तरणोपपन्नमासेदिवान् रत्नवदासनं सः' रघुवंश ६·४। 'मुख्यवर्यवरेण्याश्च प्रवर्होऽनवरार्घ्यवत्। परार्घ्याग्रप्राग्रहरप्राग्र्याग्र्यामग्रियम्।' इत्यमरः। आसनतः—आस्यते अस्मिन्निति आस्+ल्युट् अधिकरणे। आसन्+ङसि (पं०)—तसिल् स्वार्थे—आसनतः अपादाने पंचमी 'पीठमासनम्' इत्यमरः। उद्यन्—उद्+इ+लटः स्थाने शतृ 'सः' का विशेषण। धूतारुणवल्कलाग्रः—धू+क्त कर्त्तरि धूतानि वल्कलस्याग्राणि (ष० तत्पु०) अरुणानि च तानि वल्कलाग्राणि (कर्मधारय) धूतानि वल्कलाग्राणि यस्य सः (बहुव्रीहि) 'सः' का विशेषण। कीर्णाकपिशांशुजालः—ईषत्कपिशानि इत्याकपिशानि (प्रादितत्पुरुष) कृ+क्त कर्मणि कीर्णानि। अंशूनां जालानि (ष० तत्पु०) आकपिशानि च तानि अंशुजालानि (कर्मधारय) कीर्णानि आकपिशांशुजालानि येन (बहुव्रीहि) 'तिग्मरश्मिः' का विशेषण। 'हरितांशेऽधिकेऽसौ तु पिशंगः पद्मधूलिवत्' इति शब्दार्णवे। सुमेरोः शृंगात्—अपादाने पंचमी 'कूटोऽस्त्री शिखरं शृंगम्' 'मेरुः सुमेरुर्हेमाद्री रत्नसानुः सुरालयः' इत्यमरः। तिग्मरश्मिरिव—उष्णरश्मिः सूर्यः इव तिग्माः रश्मयः अस्येति (बहुव्रीहि) 'किरणोऽस्रमयूखांशुगभस्तिधृणिरश्मयः' इत्यमरः। रराज-शुशुभे—राज्+लिट् णल् (अ)।

(राज्—राजति—राजते, अराजत्—अराजत, रराज—रेजे, अराजीत्—अराजिष्ट, राजिष्यति—राजिष्यते)।

उपमालंकार—यहाँ पर युधिष्ठिर और सूर्य, आसन और सुमेरु, अरुणवल्कल और कपिशकिरणजाल में सादृश्य दिखाया गया है तथा वाचक पद 'इव' भी आया है। इस श्लोक में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के सम्मिश्रण से उपजाति छन्द है ॥५७॥

वाच्यपरिवर्तनः—अथ उच्चकैः परार्घ्यादासनतः उद्यता धूतारुणवल्कलाग्रेण तेन सुमेरोः शृंगात् कीर्णाकपिशांशुजालेन तिग्मरश्मिना इव रेजे ॥५७॥

महाराज युधिष्ठिर ने भगवान् वेदव्यास की पूजा के पश्चात् उनसे आज्ञा पाकर आसन ग्रहण किया।

अवहित हृदयो विधाय सोऽर्हा-
मृषिवदृषिप्रवरे गुरूपदिष्टाम् ।
तदनुमतमलञ्चकार पश्चात्
प्रशम इव श्रुतमासनं नरेन्द्रः ।।५८।।

अन्वयः—स नरेन्द्रः अवहितहृदयः ऋषिप्रवरे ऋषिवत् गुरूपदिष्टाम् अर्हां विधाय पश्चात् तदनुमतम् आसनं प्रशमः श्रुतमिव अलंचकार।

अवहितेति। स नरेन्द्रोऽवहितहृदयोऽप्रमत्तचित्तः सन् 'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः। ऋषिप्रवरे मुनिश्रेष्ठे। ऋषिवदृष्यर्हाम्। अर्हार्थे वतिप्रत्ययः। गुरूपदिष्टाम्। शास्त्रीयामित्यर्थः। अर्हां पूजाम्। 'गुरोश्च हलः' इत्यकारप्रत्ययः। विधाय पश्चादनन्तरं तदनुमतं तेनानुज्ञातमासनम्। प्रशमः शन्तिः श्रुतं शास्त्रश्रवणमिव अलंचकार। उक्तञ्च—'प्रशमस्तस्य भवत्यलङ्क्रिया' इति। मुन्याज्ञयोपविष्टवानित्यर्थः ।।५८।।

हिन्दी अनुवाद—उन महाराज युधिष्ठिर ने सावधान चित्त होकर भगवान् वेदव्यास की ऋषि के समान गुरूपदिष्ट विधान से पूजा करके बाद में उनके द्वारा आदिष्ट आसन को सुशोभित किया जैसे शान्ति शास्त्र को (सुशोभित करता है) ।।५८।।

English Translation—That lord of men, having offered reception to the best of sages, befitting a sage as (enjoined by the shastras) taught by the precepter, afterwards graced the seat permitted by him (sage Vyas) as self control adorus (the knowledge of) the shastras.

संस्कृतभावार्थः—भगवन्तं व्यासं समागतमवलोक्याचनाकृत्याय शास्त्रविहितां

तस्य सपर्यां विधाय तदादिष्टमासनमलंकार । तदा तदासनस्य शोभा तथैव जाता यथा प्रशमेन शास्त्रज्ञानं शोभते ।

व्याख्या—सरल ।

टिप्पणी—**स नरेन्द्रः**—नराणां नरेषु वा इन्द्रः अथवा नरः इन्द्रः इव (ष० तत्पु० सुप्सुपा अथवा उपमितकर्मधारय) 'अलंचकार' का कर्त्ता । **अवहित-हृदयः**—अव+धा+क्त कर्त्तरि—अवहितं हृदयमस्य (बहुव्रीहि) 'नरेन्द्रः' का विशेषण । **ऋषिप्रवरे**—ऋषीणां प्रवरः (ष० तत्पु०) तस्मिन् विषयाधिकरणे सप्तमी । षष्ठी 'शेषे' है निर्धारणे नहीं । 'प्रवरं सन्ततौ गोत्रि श्रेष्ठे च' इति हेमचन्द्रः । **ऋषिवत्**—ऋषिमर्हतीति ऋषिवत् (ऋषि+वति) 'तदर्हम्' सूत्र से 'वति' प्रत्यय लगा है । यह 'विधाय' की विशेषता बताता है । 'वति' प्रत्यय किसी क्रिया के ही योग में लगता है । द्रष्टव्य—'क्रियाग्रहणं मण्डूकप्लुत्या अनुवर्तते, तेन इह न—'राजानमर्हति छत्रम्'—भट्टोजीदीक्षित । **गुरूपदिष्टाम्**—उप+दिश्+क्त कर्मणि; गुरुणा उपदिष्टा ताम् (षष्ठी तत्पुरुष) 'अर्हाम्' का विशेषण । **अर्हाम्**—पूजाम्—अर्ह्+अ भावे स्त्रियाम्, ताम्, 'विधाय' का कर्म । यहाँ 'गुरोश्च हलः' सूत्र से 'अ' लगा है । 'पूजा नमस्यापचितिः सपर्या चार्हणाः समाः' इत्यमरः । **विधाय**—वि+धा+ल्यप् । **पश्चात्**—अव्यय । **तदनुमतम्**—तेनानुमतम् (तृतीया तत्पुरुष) (अनु+मन्+क्त कर्मणि भूते) 'आसनम्' का विशेषण । 'अनुमतम्' में क्त भूते है वर्तमाने नहीं । **आसनम्**—'अलंचकार' का कर्म । **प्रशमः**—शान्तिः । **श्रुतमिव**—'श्रुतं शास्त्रावधृतयोः' इत्यमरः । **अलंचकार**—अलम्+कृ+लिट् णल् (अ) 'नरेन्द्रः' इसका कर्ता है । 'प्रशमः श्रुतमिव' में उपमालंकार है । युधिष्ठिर ने आसन को अलंकृत क्रिया जैसे शान्ति शास्त्र को विभूषित करती है । यहाँ पर उपमेय की क्रिया भूतकाल में है तथा उपमान की वर्तमान के अर्थ में । इस दशा में काल दोष आ जाता है । इसी प्रकार रे महोदय ने सदोष उपमा का उदाहरण रघुवंश के पन्द्रहवें सर्ग से उद्धृत किया है :—

अतिथिं नाम काकुत्स्थात्पुत्रमाप कुमुद्वती ।
पश्चिमाद् यामिनीयामात् प्रसादमिव चेतना ।।

किन्तु वे स्वयं इसे Hypercritical कहते हैं। तुलना की संगति इस प्रकार बैठ सकती है कि जैसे शास्त्र स्वतः श्रेष्ठ एवं श्लाघ्य है पर यदि उससे इन्द्रियनिग्रह की शिक्षा नहीं मिलती तो वह व्यर्थ है। वास्तव में शम ही शास्त्र का आभूषण है। इसी प्रकार आसन तो श्रेष्ठ है ही। पर युधिष्ठिर के उस पर आसीन होने से सुशोभित हो जाता है और युधिष्ठिर के न बैठने पर आसन व्यर्थ सिद्ध होता है। युधिष्ठिर ही आसन के शोभावर्धक हैं। इस श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द है तल्लक्षणं वृत्तरत्नाकरे—'अयुजि नयुगरेफतो वकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।'

वाच्यपरिवर्तनः—तेन नरेन्द्रेण अवहितहृदयेन ऋषिप्रवरे ऋषिवत् गुरूपदिष्टामर्हां विधाय तदनुमतमासनं प्रशमेन श्रुतमिवालंचक्रे।

महाराज युधिष्ठिर भगवान् वेदव्यास के सम्मुख आसीन हुए और इस प्रकार सुशोभित हुए जैसे गुरु बृहस्पति के सम्मुख पूर्णचन्द्रमा—

व्यक्तोदितस्मितमयूखविभासितोष्ठ-
स्तिष्ठन् मुनेरभिमुखं स विकीर्णधाम्नः।
तन्वन्तमिद्धमभितो गुरुमंशुजालं
लक्ष्मीमुवाह सकलस्य शशाङ्कमूर्त्तेः ॥५६॥

अन्वयः—व्यक्तोदितस्मितमयूखविभासितोष्ठः विकीर्णधाम्नः मुनेः अभिमुखं तिष्ठन् सः इद्धम् अंशुजालं तन्वन्तं गुरुम् अभितः सकलस्य शशाङ्कमूर्त्तेः लक्ष्मीम् उवाह ॥५६॥

व्यक्तेति। व्यक्तोदितैः स्फुटोद्गतैः स्मितमयूखैर्विभासितोष्ठो यस्य तथोक्तः। विकीर्णधाम्नो विस्तीर्णतेजसो मुनेरभिमुखं तिष्ठन् स नृपः इद्धं दीप्तमंशुजालं तन्वन्तं गुरुम् गीष्पतिम् 'गुरुर्गीष्पतिपित्रादौ' इत्यमरः। 'अभितः परितः—' इत्यादिना द्वितीया। अभितोऽभिमुखं। तिष्ठत इति शेषः। सकलस्य सम्पूर्णस्य शशाङ्का मूर्त्तिर्यस्य तस्येन्दोर्लक्ष्मीमुवाह वहति स्म। अत्रोपमेयस्य राज्ञ

उपमानेन्दुधर्मेण लक्ष्याः साक्षात्संबंधासम्भवात्तत्सदृशीं लक्ष्मीमिवेति प्रतिबिम्बकरणाक्षेपादसम्भववस्तुसम्बन्धात्पदार्थवृत्तिनिदर्शनालंकारः । तदुक्तम्—'प्रतिबिम्बस्याकरणं सम्भवता यत्र योगेन । तत्साम्यसम्भवता निदर्शना सा द्विधाऽभिमता' इति ।।५६।।

हिन्दी अनुवाद—उन महाराज युधिष्ठिर ने जिनके ओठ मन्द हास्य की स्पष्टतः उद्भूत किरणों से चमक रहे थे चारों ओर फैले हुए तेजवाले (व्यास) के सम्मुख बैठे हुए, प्रदीप्त किरण जाल को फैलाते हुए बृहस्पति के सामने (स्थित) कलाओं से युक्त चन्द्रमा की शोभा धारण की ।।५६।।

English Translation—He, whose lips were shining by the rays of his smile that was clearly to be seen, standing in front of the sage with the lustre spreading all round, assumed the beauty of the full moon that stood facing Jupiter casting bright mass of rays.

संस्कृतभावार्थः—कविः मुनिव्यासस्याभिमुखं स्थितस्य राज्ञो युधिष्ठिरस्य शोभां वर्णयति । यथा देवगुरोर्बृहस्पतेः समक्षं दीपांशुजालस्य पूर्णचन्द्रस्य शोभा जायते तथैव विकीर्णतेजसो महर्षेर्व्यासस्याभिमुखोपविष्टस्य युधिष्ठिरस्य शोभा बभूवेति विशदार्थः ।।५६।।

व्याख्या—महाराज युधिष्ठिर का मुखमण्डल भगवान् वेदव्यास के आगमन से हर्षोद्रेक के कारण खिल उठा था । ऐसी दशा में वे पूर्ण चन्द्र के समान भासित हो रहे थे । महर्षि व्यास तप के तेज के कारण देदीप्यमान बृहस्पति के समान लग रहे थे । अतः कवि की यह उपमा अत्यन्त उपयुक्त है कि महर्षि व्यास के सामने स्थित युधिष्ठिर बृहस्पति के सम्मुख स्थित पूर्णचन्द्र के समान थे ।

टिप्पणी—**व्यक्तोदितस्मितमयूखविभासितोष्ठः**—वि+अञ्ज्+क्त कर्त्तरि, सु—व्यक्तः उद्+इ+क्त कर्त्तरि—उदित; स्मि+क्त+नपुंसक भावे स्मितम् वि+भास्+णिच् क्त कर्मणि—विभासितौ व्यक्तं यथा तथा उदिताः व्यक्तोदिताः

सहसुपा स्मितस्य मयूखाः (षष्ठी तत्पुरुष) व्यक्तोदिताः स्मितमयूखाः (कर्मधारय) । व्यक्तोदितस्मितमयूखैः विभासितौ ओष्ठौ अस्येति व्यधिकरण बहुव्रीहि, व्यक्तोदितस्मितमयूखैः विभासितौ तृतीया तत्पुरुष तादृशौ ओष्ठौ यस्य बहुव्रीहि 'सः' का विशेषण । द्रष्टव्य—'रामोष्ठबिम्बचुबनचुञ्चुना' (शिशुपालवध २) । इस समस्त पद का विग्रह यों भी हो सकता है—व्यक्तोदितं यत् स्मितं तस्य मयूखैः विभासितोष्ठः । 'स मनाक् स्मितम्' इत्यमरः । किरणोऽसमयूखांशुगभस्तिर्घृणिघृण्यः ।' इत्यमरः । ओष्ठाधरौ तु रदच्छदौ दशनवाससी' इत्यमरः । विकीर्णधाम्नः—वि+कृ+क्त कर्मणि विकीर्णं धाम अनेन सः बहुव्रीहि तस्य । मुनेः—व्यासस्य शेषे षष्ठी । अभिमुखं—अभिगतं मुखमस्य तद्यथा तथा । तिष्ठन्—स्था+लटः स्थाने शतृ—तिष्ठन् 'सः' का विशेषण । इद्धम्—इन्ध् (दीप्तौ+क्त कर्त्तरि) इतीद्धम् दीप्तं 'अंशुजालं' का विशेषण । अंशुजालं—अंशूनां जालम् षष्ठी तत्पुरुष 'तन्वन्तम्' का कर्म । तन्वन्तम्—तन्+लटः स्थाने शतृ—तन्वत् 'गुरुम्' का विशेषण । अभितः—'अभितः परितः समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि' सूत्र से अभितः के योग 'गुरु' में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है । 'वृहस्पतिः सुराचार्यो गीष्पतिर्धिषणो गुरुः' इत्यमरः । 'समीपोभयतः शीघ्रसाकल्याभिमुखेऽभितः' इत्यमरः । सकलस्य—पूर्णकलायुक्तस्य । कलाभिः सह वर्तमानः सकलः बहुव्रीहि तस्य—शशाङ्कमूर्त्तेः—मूर्च्छ+क्तिन् भावे—मूर्त्तिः अंक्यते इति अंक+घञ् कर्मणि स्त्रियाम् । शशेन अंका शशांका तृतीया तत्पुरुष तादृशी मूर्त्तिर्यस्य तस्य बहुव्रीहि शेषे षष्ठी इसका सम्बन्ध 'लक्ष्मीम्' से है । उबाह—वहति स्म । 'लक्ष्मीः श्रीशोभासम्पत्प्रियंगुषु' इति हैमचन्द्रः । 'धाम शक्तौ प्रभावे च तेजोमन्दिरजन्मसु' इति विश्वः । यहाँ पर निदर्शनालंकार है । तल्लक्षणं तूक्तं काव्यप्रकाशे—'अभवन्वस्तुसम्बन्ध उपमा परिकल्पकः' यहाँ उपमेय सः (युधिष्ठिर) का उपमान 'शशांकमूर्ति' चन्द्रमा के धर्म लक्ष्मी से सीधा संबंध असंभव है। युधिष्ठिर की लक्ष्मी के साथ चन्द्रमा की लक्ष्मी का सादृश्य दिखाना अनिवार्य है अतः असंभव वस्तु के साथ सम्बन्ध होने से निदर्शनालंकार है। इस श्लोक में 'वसन्ततिलका' छंद है । तल्लक्षणं तूक्तं वृत्तरत्नाकरे—'उक्ता वसन्ततिलकातभजा जगौ गः' ।

(वह्, धातु—वहति—वहते, वहतु—वहताम्, अवहत्—अवहत, उवाह—ऊहे, अवाक्षीत्—अवोढ, वक्ष्यति—वक्ष्यते)

वाच्यपरिवर्तनः—व्यक्तोदितस्मितमयूखविभासितोष्ठेन विकीर्णधाम्नो मुनरभिमुखं तिष्ठता तेनेद्धमंशुजालं तन्वन्तं गुरुमभितः सकलस्य शशाङ्कमूर्त्तेर्लक्ष्मीरूहे ॥५६॥

इति किरातार्जुनीये महाकाव्ये द्वितीयः सर्गः समाप्तः ।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. भीम के वक्तव्य का सारांश लिखिए।
(उत्तर—१·२४ श्लोक तथा भूमिका)

२. युधिष्ठिर के अभिमत को संक्षेपतः लिखिए।
(उत्तर—श्लोक २६—५३ तक का भावार्थ, भूमिका)

३. युधिष्ठिर के समक्ष भगवान् वेदव्यास के आगमन का वर्णन कीजिए।
(उत्तर—५४—५९ श्लोक का भावार्थ, भूमिका)

४. 'भारवेरर्थगौरवम्' उक्ति की समीक्षा द्वितीय सर्ग के उद्धरणों सहित कीजिए।

५. भारवि के चरित्रचित्रण और काव्यशैली पर टिप्पणी लिखिए।

६. द्वितीय सर्ग के आधार पर भीम और युधिष्ठिर के चरित्र पर प्रकाश डालिए। (उत्तर भीम तथा युधिष्ठिर की उक्तियों में मिलेगा।)

७. मल्लिनाथ ने द्वितीय सर्ग का नाम 'व्यासागमनः' रक्खा है यह कहाँ तक युक्ति संगत है? अपने विचार व्यक्त कीजिए।

८. द्वितीय सर्ग का सारांश अपनी भाषा में दीजिए।

९. निम्नाङ्कित श्लोकों की विशद व्याख्या भावार्थ सहित लिखिए :—

३, १४, २१, २६, २७, २८, ३०, ३१, ३२, ३७, ३८, ५०, ५३, ५७, ५८, ५९

१०. 'किरात' का मूलस्रोत क्या है तथा कवि ने क्या-क्या परिवर्तन किए हैं और क्यों? (उत्तर भूमिका)।

११. 'किरातार्जुनीयम्' के द्वितीय सर्ग की तुलना 'शिशुपालवध महाकाव्य' से कीजिए।

१२. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :—

वचनमूचे (१), वागविपस्य दुर्वचम् (२), गुणगृह्याः (५) सुमेधसा, अस्वन्तरः, फलसम्पत्प्रवणः (८) अचिरेण, कृती, कुरुते (९) उदेष्यतीम् (१०), कृतपंचांगविनिर्णयो नयः (१२) वर्त्तयते (१८), रिपुनारी, शिवेतर (२४), विनयन्ते (४१), लम्भयन् (५५)

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya ★ Bharatiya Vidya
560

Chandrakal Yadav.

I.N.I. INDIA,
DALHOUSIE ROAD,
NEW DELHI - 110011
Tele: 372045

33, Diplomatic Enclave,
Chanakyapuri,
New Delhi - 110022.
Tele:- 672948.

6

Page - 18 - 64 - 121. Pse.
L.